एहसानुल्लाह

जमाते-पंजाब का दाना मेमार

एहसानुल्लाह

जमाते-पंजाब का दाना मेमार

बरकत-उल्लाह

चश्मा मीडिया

बार _____ अव्वल

ihsānullāh. jamā'at-e-panjāb kā dānā memār
by Barkatullāh

(An edited version of:
klīsiya-e-panjāb kā dānā memār.
ārch ḍīkan ehsānullāh)

© 2018 Chashma Media. This work is licensed
under a Creative Commons Attribution-
NoDerivatives 4.0 International License.

Bible quotations are from UGV.
Editing, design and layout (2018) by
Chashma Media, www.chashmamedia.org

फ़हरिस्त-ए-मज़ामीन

1 नारोवाल की जमात **8**

नारोवाल का क़स्बा 8

ख़्वाजगान की क़ौम 8

इक़्तिसादी हालत 9

मसीह की जमात की इबतिदा 10

मिशन स्कूल का असर 12

जमात की तरक़्क़ी 14

शेख़ एहसान अली की तबदीली 16

2 बटाला और बन्नूँ के अय्याम **34**

बटाला 34

स्कूल में दुबारा दाख़िला 35

गुनाह से नजात का एहसास 36

बटाला में उस्ताद 38

बन्नूँ में उस्ताद 41

बैरिंग स्कूल में दुबारा ख़िदमत 45

ख़ादिम बनने की ख़ाहिश 46

बटाला में तबलीग़ी ख़िदमत का आग़ाज़ 48

शादी 50

3 नारोवाल को वापसी **53**

नारोवाल आने की दावत 53

नारोवाल में ख़िदमत का आग़ाज़ 53

नारोवाल में मुनादी की राहनुमाई 55

पूरे पंजाब में ख़िदमत का आग़ाज़. 56

4 अछूतों की तबदीली 58
तहरीक की जड़ें 58
अछूत लोगों को तालीम देने का चैलेंज 59
5 दबे हुओं की तरबियत 64
उस्तादों की तरबियत 64
हर गाँव में स्कूल का इंतज़ाम 66
नारोवाल में बोर्डिंग का इंतज़ाम 66
मिल कर मेलों में इंजील का परचार 68
हदिया देने पर ज़ोर 69
मुफ़्त में ख़िदमत करने पर ज़ोर 70
6 नारोवाल में तबलीग़ 72
डीकन का ओहदा 72
भाई रहमत अली को शक आता है 73
वबाई बीमारी के दौरान ख़िदमत 84
देहात में रूहानी तबदीली 86
तालीम और सोह्बत से शागिरदियत 93
अहलिया की स्कूलों में ख़िदमत 96
नारोवाल में नई इबादतगाह की तामीर 98
7 पूरे पंजाब की ख़िदमत 100
मुंबई की कान्फ़्रेंस (1893) 100
मिरज़ाए-क़ादियानी के साथ मुबाहसा 101
प्रीस्ट के ओहदे पर तक़र्रर 103
जनरल बूथ के हमराह 104
8 बेदारी 111
ख़िदमत करने का नया वलवला 111
अंग्रेज़ियत से जिहाद 112

9 सियालकोट कंवेंशन : आग़ाज़ 131
नारोवाल 131
सियालकोट 135
ज़फ़रवाल 137
नडाला 141
शक्करगढ़ 144
दिल्ली तक का दौरा 150
बूबक मिराली 155
वायज़ के साथ ख़िदमत 157
काँगड़ 158
राजा शाम सिंह के हाँ ताजपुरा में 159
चेतराम का असर 164
पेशावर 166
आगरा 167
इलाहाबाद 169
पसरूर 170
बारह पत्थर स्कूल 173
यू.पी. मिशन में अपनी मदद आप की तहरीक 175
चर्च मिशन का इख़्तिलाफ़ 176
रावलपिंडी 178
अहलिया में जुनून के पहले निशान 180
दिल्ली तक का दुबारा दौरा 182
10 यूरोप और अमरीका का दौरा 185
अमरीका आने की दावत 185
इंगलैंड का दौरा 186
अमरीका का दौरा 190
अहलिया पर दीवानगी का ग़लबा 192

कनाडा और यूरोप से हो कर वापसी 193

11 झंगबार की ख़िदमत 196

बेटमन की दावत 196

झंगबार में ख़िदमत का आग़ाज़. 198

झंगबार का इंतज़ाम ठोस करने के अक़्दाम 205

फ़िक्का-बंद के ख़िलाफ़ कोशिशें 206

सरगोधा का इंतज़ाम ठोस करने के अक़्दाम 207

चर्च मिशन की राहनुमाई में तबदीलियाँ 208

12 शेख़ रहमत अली की तबदीली 211

ज़ाज़ा और वबा 211

ईसाई होने का अलानिया इकरार 212

बपतिस्मा और यगानों का दबाव 224

बेटे बरकतुल्लाह की ईमान तक राह 227

रहमतुल्लाह की गवाही 234

रहमतुल्लाह की मुहब्बत का ग़लबा 235

13 झंगबार : मिशनरी इंचार्ज 243

झंगबार पर तक़र्रुर 243

मुलतान में जलसे 245

देहरादून में जलसे 245

ग़ैर-मसीहियों से मुनाज़रे 246

झंग में तुलबा के प्रैक्टीकल 249

14 अपनी मदद आप की तहरीक 252

15 आर्च डीकन आफ़ दिल्ली 257

आर्च डीकन का ओहदा 257

लखनऊ की कान्फ़्रेंस (1911) 260

अपनी मदद आप पर ज़ोर 261

होली ट्रिनिटी पर तक़र्रुर 264

16 ख़िमत के आख़िरी अय्याम **268**
कैनन का ओहदा 268
कैनन के दौरे 269
17 ज़िंगी के आख़िरी अय्याम **278**

1 नारोवाल की जमात का आग़ाज़

नारोवाल का क़स्बा

उन्नीसवीं सदी के वुस्त में नारोवाल एक छोटा सा क़स्बा था जो तहसील रइय्या ज़िला सियालकोट में वाक़े था। यह क़स्बा दरयाए-रावी के शिमाल की जानिब चंद मील पर वाक़े है। उस ज़माने में न कोई रेल थी और न पक्की सड़क थी।

कहते हैं कि साढ़े पाँच सौ साल हुए ज़िला मुलतान के चंद अरोड़ हिंदू ख़ानदान सय्यिद जनीबुल्लाह के ज़रीए मुसलमान हो कर मशरिक़ की जानिब चल पड़े और इस जगह रिहाइश-पज़ीर हो गए। एक जाट नार सिंह नाम भी उन के साथ हो लिया जिस की वजह से इस मक़ाम का नाम नारोवाल पड़ गया। सय्यिद जनीबुल्लाह की ख़ानक़ाह शहर के बाहर मौजूद है।

ख़्वाजगान की क़ौम

यह मुसलमान ताजिर थे। वह ख़्वाजगान कहलाते थे और जम्मू के राजाओं के ज़ेरे-हुकूमत थे। वह मज़हब के शिया थे और इस मज़हब के दिल-दादा। वह नमाज़, रोज़ा और दीगर रुसूम के सख़्त पाबंद थे। अय्यामे-मुहर्रम में ताज़िया निकालना, मातम करना और मरसिए पढ़ना उन का मामूल था।

जिस ज़माने का हम ज़िक्र करते हैं नारोवाल की आबादी दो तीन हज़ार से ज़ायद न थी। क़स्बे का बड़ा बाज़ार उस को दो हिस्सों में तक़्सीम करता था। एक हिस्से में क़ौमे-ख़्वाजगान आबाद थी और दूसरे हिस्से में हिंदू, सिक्ख और अहले-सुन्नत बस्ते थे। लेकिन दोनों

हिस्सों में किसी क़िस्म की दुश्मनी या अदावत न थी। इस के बर-अक्स हिंदुओं, सिक्खों और शियों में बरादराना ताल्लुक़ात थे, क्योंकि शिया तवह्हुम-परस्ती और क़ब्र-परस्ती में मुब्तला थे और हिंदू शिया एक दूसरे के मज़्हब में गोया शरीक थे। शिया देवियों को पूजते, चुटया रखते, तीर्थों को जाते थे जबकि हिंदू शिया मिल कर पीरों-पैग़म्बरों को मानते, जनीबुल्लाह शाह की ख़ानक़ाह की परस्तिश करते, ताज़िया-परस्ती में हिस्सा लेते और ताज़ियों के सामने मन्नतें मानते थे। दोनों मज़्हबों के छोटे बच्चे बड़ों को ख़्वाह वह हिंदू हों या मुसलमान "चचा" और "ताया" कहते थे। हिंदू मस्जिदों में जा कर मुसलमानों की मश्वरतों में शामिल होते थे। शादी ब्याह के मौक़ों पर या बीमारी और मौत के मौक़ों पर हिंदू मुसलमान बराबर के शरीक होते थे।

इक़्तिसादी हालत

उस ज़माने में क़स्बे में रुपए-पैसे के सिक्के आम नहीं थे। लोग अनाज ही से तिजारत करते थे। धोबी की धुलाई, दर्ज़ी की सिलाई, जूलाहे की उजरत वग़ैरा अनाज ही से अदा की जाती थी। सर्राफों की दुकानों पर कोड़ियों का ढेर लगा रहता था, और एक आने में 24 कौड़ियाँ मिलती थीं। बाज़औक़ात इन कोड़ियों से माल मोल लिया जाता था।

ख़्वाजगान की क़ौम तिजारत-पेशा थी, और सब व्यपार थे—कोई छोटा, कोई बड़ा। नारोवाल एक दूर-उफ़्तादा क़स्बा था। वहाँ तक जाने की सब सड़कें कच्ची थीं, और वह हर तरफ़ से नदी-नालों और रावी दरिया से घिरा हुआ था। लिहाज़ा उन दिनों में सफ़र करना अज़ाब था। लोग क़स्बे के बाहर जाना नहीं चाहते थे, और रफ़्ता रफ़्ता क़ौम का अक्सर हिस्सा ग़रीब और नादार हो गया। लेकिन किसी ने इस क़ौम में कभी किसी को भीक माँगते नहीं देखा। बाज़ख़ानदान तंग आ कर लाहौर, अमृतसर, बटाला वग़ैरा शहरों में जा बसे जहाँ वह मालदार हो

गए। बाज़ ख़ानदानों ने इर्दगिर्द के गाँव में डेरा जमा लिया और व्यपार करके ख़ुश-हाल हो गए। किफ़ायत-शिआरी उस क़ौम की ख़ुसूसियत थी जिस का क़ुदरती नतीजा यह हुआ कि उस के अफ़राद उमूमन ख़ुश-हाल रहे।

मसीह की जमात की इबतिदा

एक दिन क़ौमे-ख़्वाजगान का चौधरी शेख़ हुसैन बख़्श हुकूमत के लालच से तंग आ कर सियालकोट गया। वहाँ उस की मुलाक़ात एक परदेसी बनाम फ़िट्ज़पैट्रिक [1] से हुई जिस ने उसे इंजील जलील की ख़ुश-ख़बरी सुनाई। इस नजात-बख़्श पैग़ाम में कुछ ऐसा जादू था कि उस ने अल-मसीह के क़दमों में आने का फ़ैसला कर लिया और अमृतसर जा कर 1854 में बपतिस्मा पा लिया। जब वह नारोवाल वापस आया तो उस के अपने अजनबी हो गए। उसे तरह-तरह की तकलीफ़ों का सामना करना पड़ा, पर वह ज़रा न घबराया बल्कि मर्दानावार तमाम मुशकिलात पर ग़ालिब आया। उस की रात दिन यही दुआ थी कि उस के तीनों बेटे भी अल-मसीह के फ़रमाँ-बरदार हो जाएँ। उस का मसीही नाम पौलुस रखा गया था, और ग़ैरत के लिहाज़ से यह नाम मौज़ूँ था। ख़ुदा ने उस की दुआ सुन ली और उस की वफ़ात (1870) से पहले उस का दूसरा बेटा सादिक़ मसीह फ़रवरी 1859 में और पहला बेटा नुसरतुल्लाह उसी साल के दिसंबर में अपनी बीवियों समेत ख़ुदावंद मसीह के क़दमों में आ गए।

तीसरा बेटा 1876 में अल-मसीह का पैरोकार हो गया। उस का नाम अली मुहम्मद था। उस की आदत लड़ाई-झगड़े की थी जिस की वजह से लोग उसे “कुपत्ता” बुलाया करते थे। मसीह का पैरोकार हो कर उस

[1]T.H. Fitzpatrick

की तबीअत ऐसी बदल गई कि उस का नाम “सुपत्ता” पड़ गया। मियाँ पौलुस का चौथा बेटा निक्कू शाह सब के बाद ईमान लाया।

नारोवाल में पहले-पहल दो परदेसियों[1] को इंजील जलील का पैग़ाम सुनाने का शरफ़ हासिल हुआ। जिस मक़ाम पर आजकल इबादतगाह खड़ी है उस के सामने बड़का एक बड़ दरख़्त होता था। इन मुनादों ने इस के साय में नारोवाल के बाशिंदों को आरामे-जान की ख़ुश-ख़बरी सुनाई।

1870 में बेटमन[2] पहली दफ़ और फिर 1872 में नारोवाल आया। बेटमन बड़ ज़बरदस्त मुबश्शिर था। वह नारोवाल की रूहों का प्यासा था। उसे दिन रात एक ही धुन लगी थी कि किस तरह उन हज़ारों रूहों को उन के नजात-दहिंदे के क़दमों में लाए। उस ने ख़्वाजगान के मुहल्ले में रिहाइश इख़्तियार कर ली और अंग्रेज़ी लिबास को ख़ैरबाद कह कर कुरता पाजामा पहन लिया। जिस मकान में वह रहता था वह कच्चा था। उस के घर का यह हाल था कि

> ہر کہ خواہد گو بیا و ہر کہ خواہد گو برو
> گیر و دار و حاجب و درباں دریں درگاہ نیست
>
> जो भी बात करना चाहे अपनी मरज़ी से आए और अपनी मरज़ी से जाए।
> हाकिम, ड्योढ़ी का मुहाफ़िज़ या दरबान इस दरगाह में नहीं है।

उस की बाज़ारी मुनादी और अनथक कोशिशों का नतीजा यह हुआ कि मिशन स्कूल के तुलबा यके-बाद-दीगरे अल-मसीह के क़दमों में आने लगे। यों मुंसिफ़ शेर सिंह बाजवा, रहमत मसीह वायज़ और उन के भाई अह्मद मसीह, हमीद उद-दीन सालिक, दीना नाथ, विधावा मल, वारिस उद-दीन, सुन्नत शाह, डाक्टर मीरान बख़्श अत्तारू, डाक्टर दीना नाथ

[1] फ़िसपैट्रिक और स्ट्रॉब्रिज (Strawbridge)
[2] Rowland Bateman

प्रेतू दित्ता जैसे लोग दुनिया और अपने रिश्तेदारों की मुहब्बत से मुँह मोड़ कर आख़िरत को दुनिया पर तरजीह दे कर अल-मसीह के पैरोकार हो गए।

हर तरफ़ शोर मच गया। लेकिन फ़साद और ग़ौग़ा के बावुजूद ख़ुदावंद का यह जोशीला मुबल्लिग़ निहायत दलेराना काम करता गया और जवान हिंदुओं, मुसलमानों और सिक्खों को नारोवाल और इर्दगिर्द के इलाक़ों में इंजील का नजात-बख़्श पैग़ाम सुनाता रहा।

मिशन स्कूल का असर

ख़ुदा का करना ऐसा हुआ कि बेटमन की आमद से पहले ही मिशन स्कूल के हेड-मास्टर भोला नाथ घोष थे जो ख़ुदावंद मसीह के इश्क़ में डूबे हुए थे। वह सलीब के जाँ-निसार सिपाही और इंजील के पैग़ाम को हर अदनाो-आला तक पहुँचाने में हर वक़्त कोशाँ रहते थे। उन की मसीही ज़िंदगी का असर नारोवाल पर उमूमन और मिशन स्कूल के तुलबा पर ख़ुसूसन बहुत गहरा था। तालिबाने-हक़ के लिए उन के घर के दरवाज़े चौबीस घंटे खुले रहते थे। और उन की भोली-भाली मुहब्बत भरी ज़िंदगी ने छोटों और बड़ों सब को मोह लिया था।

इधर परदेसी मुबल्लिग़ जोश से भरपूर, उधर स्कूल का बंगाली हेड-मास्टर इश्क़े-मसीह में सरशार तो जमात क्यों न सरसब्ज़ो-शादाब होती? इंजील की तालीम सोसायटी के हुक्म के मुताबिक़ तमाम मिशन स्कूलों में लाज़िमी क़रार दी गई थी। हेड-मास्टर साहब दीनी गुफ़्तगू करने का मौक़ा हर वक़्त ढूँडते थे। उन का एक शागिर्द रशीद लिखता है,

> सब से पहले घंटे में वह हम को अंग्रेज़ी पढ़ाते थे। जब कभी सबक़ याद न होता—मार कौन खाए, क्योंकि वह बुरी तरह मारते थे—बस जाते ही दीन का कोई मसला छेड़ देना, इंजील पर कोई एतराज़ कर देना। फिर गया एक घंटा, दो घंटे, तीन घंटे, लगातार जमात की तबदीली के बग़ैर

> मुबाहसा होता रहता। हफ़्ते में एक दो दफ़ा ज़रूर ऐसा हो जाता, मगर हमारे बुज़ुर्ग बाबू साहब हमारी शरारत को मुतलक़न समझते। वह अपने दीनी मसायल में ही ग़र्क़ रहते थे। जिस का नतीजा यह हुआ कि अंग्रेज़ी तो हम को ख़ाक न आई, लेकिन ईसाई तालीम और इस्लाम और हिंदू मज़्हब की हम को बहुत अच्छी वाक़फ़ियत हासिल हो गई।

तुलबा स्कूल के बाहर अपने वालिदैन से क़ुरआन, हज़रत मुहम्मद, पुराणों और वेदों की तालीम और कृष्ण महाराज की ज़िंदगी की निस्बत पूछते थे। हेड-मास्टर के तरीके-कार का असर स्कूल के असातिज़ा पर क़ुदरती तौर पर होना था और हुआ। चुनाँचे फ़ार्सी के उस्ताद मौलवी अह्मद बख़्श जो तबीअत के लिहाज़ से सूफ़ी थे उन्हों ने किसी को इंजील पढ़ने से या मसीह का पैरोकार हो जाने से कभी न रोका। और न उन्हों ने इंजील के ख़िलाफ़ कभी कोई कलिमा मुँह से निकाला। बेटमन 20 नवंबर 1873 के रोज़नामचे में लिखते हैं,

> मैं शहर में सादिक़ के घर था। स्कूल में पढ़ाया। बाज़ार में मुनादी की। लड़कों को फ़ुटबॉल खेलने के लिए इकट्ठा किया। वारिस आया और उस ने साफ़ तौर पर इकरार किया कि मैं मसीह पर ईमान लाया हूँ और बपतिस्मा पाने को तैयार हूँ। रफ़्ता रफ़्ता बहुत लड़के जमा हो गए। जब मीराँ बख़्श ने अपने ईमान की पुख़्तगी का इकरार किया तो मेरी ख़ुशी की इंतहा न रही। उस का बाप अह्मद बख़्श कुछ तो इंजील की तालीम से, कुछ भोला नाथ घोष के मसीही अख़्लाक़ और बेरिया ज़िंदगी से और कुछ अपने बेटे के ख़यालात से मुतअस्सिर हो गया है।

ग़रज़ स्कूल के लड़कों का हर वक़्त जमघटा लगा रहता। इन लड़कों में मुसलमान थे, हिंदू थे और सिक्ख भी थे। लेकिन सिर्फ़ चंद एक को ही यह तौफ़ीक़ हुई कि वह जुरअत करके अलानिया अपने नजात-दहिंदे मसीह का इकरार करके बपतिस्मा पाएँ। ईसा मसीह ने सच कहा कि बुलाए हुए तो बहुत हैं, लेकिन चुने हुए कम।[1] इन चुने हुओं ने अपने

[1] मत्ती 22:14

नजात-दहिंदे की दावत को क़बूल किया और उस का वादा सच्चा पाया कि दुनिया के ताक़तवर

> लेले से जंग करेंगे, लेकिन लेला अपने बुलाए गए, चुने हुए और वफ़ादार पैरोकारों के साथ उन पर ग़ालिब आएगा, क्योंकि वह रब्बों का रब और बादशाहों का बादशाह है। (मुकाशफ़ा 17:13-14)

जिन लोगों ने नजात की दावत क़बूल करने की सआदत पाई उन्हों ने ख़ुदा को पा लिया और जो "रोज़मर्रा की परेशानियों और दौलत के फ़रेब" [1] में आ कर रह गए वह ज़िंदगी भर दस्ते-तअस्सूफ़ मलते रहे।

यह वह इबतिदाई ज़माना था जब नारोवाल में कोई इबादतगाह न थी। इबादत स्कूल में होती थी, और लोगों को बपतिस्मा भी स्कूल में ही दिया जाता था। मिशन स्कूल रूहानी ज़िंदगी का मर्कज़ था जहाँ से आफ़ताबे-सदाक़त की शुआएँ चारों तरफ़ फैली हुई थीं। जब कोई बपतिस्मा पाता तो स्कूल में तुलबा की तादाद फ़क़त पाँच दस रह जाती, लेकिन चूँकि उस्ताद अपने मज़मून जाँ-फ़िशानी से पढ़ाते थे और लड़कों से ख़ूब मेहनत करवाते थे यह हालत सिर्फ़ चंद रोज़ होती और रफ़्ता रफ़्ता तुलबा वापस स्कूल में बाक़ायदा हाज़िर हो जाते थे।

जमात की तरक़्क़ी

1874 में नारोवाल की पहली इबादतगाह उस मक़ाम पर तामीर की गई जो सादिक़ साहब ने दी थी। यह जगह मुहल्लाए-ख़्वाजगान के अंदर उस मक़ाम पर वोह थी जहाँ "छोटी मस्जिद" की तरफ़ से बाज़ार को मशरिक़ जानिब को जाने के लिए मुड़ते हैं। इस मस्जिद और नई इबादतगाह के दरमियान कोई पचास गज़ का फ़ासिला था। इबादतगाह

[1] मत्ती 13:22

सड़क के किनारे पर ही वाक़े थी। उस के दरवाज़े और मेहराबें वग़ैरा मस्जिदों के दरवाज़ों और मेहराबों की मानिंद थीं। सड़क की जानिब के तीनों दरवाज़ों पर किताबे-मुक़द्दस की आयात बड़ी ख़ूबसूरती से लिखी थीं जिन को हर शख़्स आते जाते पढ़ता था।

अप्रैल 1905 में ऐसा ज़बरदस्त ज़लज़ला आया कि काँगड़ा की वादी तबाह हो गई। उस के झटकों ने शिमाल हिंदुस्तान के तमाम मक़ामात को तहो-बाला कर दिया। नारोवाल में मुश्किल से कोई मकान होगा जो शिकस्ता न हुआ। यह इबादतगाह भी मुख़्तलिफ़ जगहों से शिकस्ता हो गई और इबादत के काम की न रही। उस के मीनारों को मिस्मार करना पड़ा ताकि इर्दगिर्द के मुसलमान क़स्साबों और ख़्वाजगान के घरों पर न गिर पड़ें। 1922 में इस मक़ाम पर एक दोमनज़िला मकान बनाया गया जिस को चंद साल बाद किसी मुसलमान ने ख़रीद लिया।

जिस ज़माने में बेटमन ने यह इबादतगाह तामीर की थी उन दिनों में नारोवाल और इर्दगिर्द के इलाक़े से मुतअद्दिद हिंदू, मुसलमान और सिक्ख मसीह पर ईमान लाए। तादाद का अंदाज़ा इस अम्र से हो सकता है कि रोज़नामचा ख़ुशी और शुक्र-गुज़ारी से मामूर है।

1888 के आख़िर में बेटमन ने सरकार से वह जगह ख़रीदी जो अब “झंडा” के नाम से मशहूर है। यह मक़ाम पुराने वक़्तों में पुलिस का थाना था जो शहर के अंदर था। मंट्गुमरी उस को फ़रोख़्त करना चाहता था। बेटमन ने यह ख़बर पा कर उसे लिखा कि जो शख़्स सब से ज़्यादा क़ीमत अदा करे मैं इस से पचास रुपए ज़्यादा देने को तैयार हूँ। बेटमन ने इस जगह अपनी रिहाइश इख़्तियार कर ली। वह इस बँगले में जो शहर के बाहर था रहना नहीं चाहता था, क्योंकि शहर के ग़ैर-मसीही उस के पास यहाँ हर वक़्त दिन या रात को आ जा सकते थे। उस के घर के दरवाज़े हक़ के मुतलाशियों के लिए दिन रात खुले रहते थे। बेटमन ने इस घर को क़दरे तबदील करने से अपने रहने के क़ाबिल बना लिया।

शेख़ एहसान अली की तबदीली

घर की कट्टर शिया हालत

हम ने क़दरे तवालत के साथ नारोवाल में जमात के आग़ाज़े-क़ियाम का ज़िक्र किया है ताकि नाज़िरीन को उस ज़माने के माहौल का पता लग जाए जब क़ौमे-ख़्वाजगान में से मुतअद्दिद ख़ुश-हाल और आसूदा ख़ानदान और अफ़राद अपने मज़हब और रिश्तेदारों को ख़ैरबाद कह कर मसीह के फ़रमाँ-बरदार हो गए थे। शेख़ एहसान अली भी इस क़ौम के एक ऐसे फ़र्द थे।

शेख़ एहसान अली के वालिद शेख़ बनिया थे जो चमड़े का कारोबार करते थे। वह बड़े ज़ाहिद, मुत्तक़ी और पार्सा थे। इन ही वुजूहात के बाइस वह ख़्वाजगान की बरादरी में मुम्ताज़ और वाजिबुल-इज़्ज़त समझे जाते थे। बमुशकिल कोई शख़्स था जो उन का नाम ले कर उन्हें पुकारता था बल्कि ख़िताब करते वक़्त लोग उन्हें “जनाब” कहते और जब उन का ज़िक्र करना होता तो “जनाब बनिया” या सिर्फ़ “जनाब” कहते। उन का वक़्त बेशतर मस्जिद में कटता। जब लोग उन्हें दुकान पर न पाते तो सीधे मस्जिद में मिलने को चले जाते थे। हुस्ने-इत्तफ़ाक़ से उन की शादी भी एक ऐसी शरीफ़ुन-नफ़्स बीबी से हुई जो उन की तरह नमाज़, रोज़ा और शरियत की सख़्त पाबंद थीं। उन का घर इस्लामी शरअ का आइनादार था। ख़ुदा ने उन्हें तीन बेटे अता किए। पहलौठे का नाम एहसान अली रखा गया जो 1858 में पैदा हुआ। मँझला बेटा रहमत अली 1860 में पैदा हुआ, और सब से छोटा बेटा मुहसिन अली था।

शेख़ बनिया का घर “बड़ी मस्जिद” से कोई बीस गज़ के फ़ासिले पर था। जब उन के बेटे चार एक साल के हुए तो उन्हें मस्जिद के मक्तब में डाल दिया गया जहाँ अरबी, फ़ारसी और उर्दू ज़बानें सिखाई जाती थीं। क़ुरान का दर्स दिया जाता था और शिया मज़हब के उसूल की तालीम दी जाती थी। उस्ताद भी उन्हें ऐसे मिले जो पढ़ाने में माहिर थे और

तादीबो-सरज़निश में भी कमी नहीं करते थे। चुनाँचे मुझे याद है कि जब मैं ने एक दफ़ा अपने वालिद रहमत अली से एक उस्ताद के बुरी तरह मारने की शिकायत की तो उन्हों ने एक न सुनी। उन्हों ने तो शेख़ सादी की गुलिस्तान हिफ़्ज़ कर रखी थी और शेख़ का मूक़ला याद था कि अच्छे उस्ताद की सख़्ती बाप की मुहब्बत है। फ़रमाने लगे, "तुम सज़ा को क्या जानो? हमारे मियाँ जी हम को सुनने का हुक्म दे कर हमारी पीठ पर आग की अँगीठी रख दिया करते थे!"

इस क़िस्म के उस्ताद की तालीमो-तलक़ीन का यह नतीजा हुआ कि "जनाब बनिया" के बेटे जब सयाने हुए तो क़ुरान के हाफ़िज़ और शिया मज़हब में पक्के हो गए। इधर माँ-बाप दोनों सौमो-सलात के पाबंद, शिया मज़हब के उसूलो-रुसूम के दिलदादा, घर में दीनी मसायल का हमेशा ज़िक्र रहता। आस-पास की औरतें बीबी मर्यम (एहसान अली की माँ) से क़ुरान सीखने आतीं और दीनी उमूर से वाक़िफ़ियत हासिल करतीं, उधर मस्जिदो-मक्तब की तालीम ने सोने पर सुहागे का काम दे दिया। क़िबला रहमत मसीह वायज़ इस ख़ानदान की निस्बत लिखते हैं,

> एहसान मुसलमानों के घर में पैदा हुआ। मुसलमान भी शिया, और शिया भी मुतअस्सिब। उन के ख़ानदान को असूलिए कहा जाता था। गोया अपनी क़ौम में मज़हब के लिहाज़ से दीनदारी का नमूना था। यह लोग अपने सिवा किसी को भी ख़ुदा का बंदा नहीं समझते थे। हिंदुओं के हाथ का खाना उन के वास्ते नापाको-हराम था। तबर्रा-बाज़ी [1] तो उन का मज़हबी उसूल था। इसी वजह से यह उसूलिए भी कहलाते थे। अगरचे अपने मज़हब के पैरोकारों के सिवा सब उन की नज़र में मर्दूद थे, लेकिन सब से ज़्यादा नफ़रत उन्हें ईसाइयों से थी। जहाँ कोई ईसाई उन के सामने आया उन्हों ने अपने उसूल पर फ़ौरन अमल किया और थूक दिया। यही हाल शिया एहसान अली का था।[2]

---

[1]किसी गुनाह से बरअत यानी छुटकारा चाहना
[2]मसीही बाबत नोवंबर 1929

स्कूल में ईसाइयों की मुख़ालिफ़त

एहसान अली को इल्म हासिल करने का अज़्हद शौक़ था। हुस्ने-इत्तफ़ाक़ से नारोवाल में मिशन स्कूल मौजूद था जिस में नारोवाल के हिंदू, मुसलमान, सुन्नी, शिया और सिक्ख लड़के पढ़ते थे। इर्दगिर्द के गाँव के लड़के भी पैदल चल कर स्कूल आया करते थे। एहसान अली को पढ़ने का शौक़ था, लेकिन स्कूल ईसाइयों का था जिस में इंजील की तालीम लाज़िमी थी। पहले तो वह हिचकिचाया, लेकिन चूँकि वह कट्टर शिया था उस ने दाख़िल होने में कोई हर्ज न समझा।

एहसान स्कूल के औक़ात में अपने हम-जमातों के साथ पढ़ता और इस के बाद अपने वालिद बुज़ुर्गवार के कारोबार में मदद देता था। हम बता चुके हैं कि स्कूल के तुलबा को इंजील की तालीम लाज़िमी तौर पर दी जाती थी और साथ साथ हिंदू मज़्हब और इस्लाम के उसूल पर भी बह्स हुआ करती थी। एहसान अली ने इंजील का मुतालआ करके एतराज़ात तैयार किए। मियाँ नुसरतुल्लाह किताबे-मुक़द्दस पढ़ाया करता था। एहसान अली निहायत गुस्ताख़ी से सख़्त दिल-आज़ार अल्फ़ाज़ में अपने एतराज़ात को पेश करता। डाक्टर दीना नाथ प्रेतू दित्ता जो उन के हम-जमात थे लिखते हैं,

> एहसान इंजील का जानी दुश्मन था, क्योंकि वह कट्टर शिया था। वह अपने एतराज़ों से मियाँ नुसरतुल्लाह का नाक में दम कर देता, लेकिन मियाँ साहब उस के गुस्ताख़ाना रवय्ये का ख़्याल मुतलक़न करते और निहायत ख़ंदा-पेशानी से उसे जवाब देते थे।

एहसान अली बेटमन तक किसी को नहीं छोड़ता था। स्कूल के अंदर और बाहर बाज़ारी मुनादी के मौक़े पर वह उन पर एतराज़ात की बौछाड़ कर देता था। उन अय्याम में एक मिस्टर ब्यूटल[1] नारोवाल के बाज़ार में मुनादी करने के काम पर मामूर हुआ। वह जहाँ कहीं जाता एहसान

[1] Beutel

अली उस का पीछा करता और पंजे झाड़कर उस के पीछे पड़ जाता। क़बिला वायज़ लिखते हैं,

> बाज़ार में मुनादी के वक़्त तो वह इस तरह मसीही मुनाद की जान के पीछे पड़ जाता था कि अब उसे कच्चा ही निगल जाएगा। लेकिन वाह वाह—जहाँ ऐसे मुख़ालिफ़ थे वहाँ साबिर भी मौजूद थे। बेटमन साहब ही ऐसे थे जो इस सौलुस को बरदाश्त करते थे। यह गुस्ताख़ी करता था, सख़्त-ज़बानी करता था, मगर आगे जवाब नर्मी और मुहब्बत से मिलता था। जब हम लोग ईमान लाए और वारिस जमात में दाख़िल हुआ, उस वक़्त एहसान का दाँतों का पीसना क़ाबिले-दीद था मगर उस का बस न चलता था।

बेटमन भी अपने रोज़नामचे में लिखता है,

> एहसान अली ईसाई ईमान का सख़्ततरीन मुख़ालिफ़ है। हत्ता कि उस ने दीनी तआस्सुब की वजह से स्कूल को भी छोड़ दिया है ताकि उस की नजासत से बचा रहे।

बेटमन के साथ सफ़र

अवायल उम्र में ही एहसान अली की बीनाई में कमी वाक़े हो गई थी, और वह क़ुदरतन इस का इलाज करना चाहता था। तबीबों के इलाज से कुछ फ़ायदा न हुआ। उन दिनों में नारोवाल में कोई हस्पताल न था, और लोगों ने "डाक्टर" का नाम भी न सुना था। चुनाँचे जब चर्च मिशन ने मर्दाना हस्पताल और ज़नाना मिशन ने ज़नाना हस्पताल खोला और डाक्टर आए तो नारोवाल के बाशिंदे लफ़्ज़ डाक्टर की वजह से उन हस्पतालों को "मर्दाना डाकख़ाना" और "मिसों का डाकख़ाना" कहते थे।

बेटमन अपने पास चंद अंग्रेज़ी दवाइयाँ रखता था जिन से वह मामूली अमराज़ का इलाज किया करता था। इस वजह से एहसान अली कभी कभी आँखों के इलाज के लिए उस के पास जाया करता था। एक रोज़

बेटमन ने उसे कहा, “मैं डाक्टर नहीं हूँ, लेकिन अगर तुम मेरे साथ लाहौर चलो तो वहाँ तुम्हारा इलाज ख़ातिर-ख़्वाह तौर पर हो सकता है। चुनाँचे लाहौर को रवानगी का दिन मुक़र्रर करके वह चला गया।

मुक़र्ररा रोज़ से एक रात पहले वह अपने एक नज़दीकी रिश्तेदार बनाम क़ुर्बान को साथ ले कर बेटमन के पास पहुँच गया। उन अय्याम में बेटमन एक छोटे से ख़ेमे में रहा करता था। जब उस ने देखा कि एक की बजाए दो आ गए हैं तो उस ने पूछा कि यह दूसरा लड़का कौन है?

एहसान ने जवाब दिया, “यह मेरी बरादरी का एक लड़का है और चूँकि यह सच बोलने का आदी है मैं उसे अपने साथ ले आया हूँ ताकि लोगों में गवाही दे कि मैं आप के साथ सिर्फ़ आँखों के इलाज के लिए जा रहा हूँ और ईसाई होना नहीं चाहता।”

बेटमन अपने रोज़नामचे में लिखते हैं, [1]

> मैं ने हैरान हो कर कहा, “क्या तुम जैसे जोशीले मुसलमान के लिए भी गवाही की कोई ज़रूरत है?” बहर हाल मैं दोनों लड़कों को अपने छोटे से ख़ेमे में ले गया, और वह मेरी चारपाई के नीचे ज़मीन पर सो गए।
>
> आधी रात के क़रीब एहसान ने क़ुर्बान को झनजोड़कर जगाया और कहा, “उठ क़ुर्बान! उठ! नमाज़ पढ़ना नींद से हज़ार दर्जा बेहतर है। मुर्ग़ ने बाँग दे दी है।” लेकिन नींद का ग़लबा दोनों पर तारी था और वह दोनों सो गए। जब सुब्हे-काज़िब नमूदार हुई और मुर्ग़ चारों तरफ़ बाँग देने लगे तो एहसान ने क़ुर्बान को फिर झनजोड़ा और कहा, “क़ुर्बान, अब तो उठ। अब तो सूरज नेज़ा भर ऊँचा हो गया है।”
>
> वह दोनों तो नमाज़ पढ़ने चले गए लेकिन मैं सोता रहा। जब सुब्हे-सादिक़ नमूदार हुई तो में भी उठ खड़ा हुआ। बाहर जा कर देखा कि दोनों लड़के कुएँ पर बैठे हैं। सलाम दुआ के बाद मैं ने उन से पूछा, “क्या तुम ने नमाज़ पढ़ ली है?”

[1] 10 दिसंबर 1873

एहसान ने जवाब दिया, “हाँ, हम ने तो पढ़ली है” और लफ़्ज़ “हम” पर ज़ोर दिया ताकि इस्लामी वक़्ते-नमाज़ और ईसाइयों की इबादत के वक़्त की तमीज़ ज़ाहिर हो जाए और इस्लामी वक़्त की बरतरी साबित हो जाए।

मैं ने पूछा, “क्या तुम ने ख़ुदा से उस झूट के लिए जो तुम ने सुब्ह-सवेरे क़ुर्बान से बोला था मग़फ़िरत माँगी है?”

उस ने कहा, “मैं ने कब झूट बोला है?”

मैं ने जवाब दिया, “क्या तुम ने नहीं कहा था कि अब तो सूरज एक नेज़ा ऊँचा हो गया है हालाँकि अभी मुर्ग़े ने बाँग दी थी?”

उस का इस से कोई जवाब न बन आया। क़ुर्बान मुझे नहीफ़ और बीमार नज़र आता था। चुनाँचे जब चलने का वक़्त आया तो मैं ने एहसान को कहा, “तुम्हारी आँखें कमज़ोर हैं, लेकिन तुम्हारी टाँगें मज़बूत हैं। बेहतर है कि क़ुर्बान मेरे पीछे ऊँट पर सवार हो जाए और तुम पैदल चलो।” हम तीनों अमृतसर के रास्ते लाहौर की जानिब चल पड़े। मैं और क़ुर्बान ऊँट पर सवार हो कर आगे निकल गए और एहसान लम्बी छलाँगें मारता पैदल चला आया।

दिसंबर का वुस्त था। सर्दी बड़ी शिद्दत की थी। राह में एक नदी थी जिस को पार करते वक़्त बेटमन और क़ुर्बान दोनों पानी में जा पड़े। बेटमन ने पहले क़ुर्बान को पानी में से निकाल कर उस के कपड़े रेत पर सुखाए। फिर ही उस ने अपने कपड़ों को उतार कर उन्हें सुखाया। इस मामूली सी मसीही ईसारे-नफ़्सी का असर एहसान और क़ुर्बान दोनों पर बहुत गहरा हुआ। जब बेटमन और क़ुर्बान के कपड़े सूख गए तो वह दुबारा ऊँट पर सवार हो कर अमृतसर की जानिब चल पड़े। बेटमन लिखते हैं,

> हम दोनों ऊँट पर एहसान से बहुत आगे चले गए थे। और यों हम दो दिन तक इकट्ठे ऊँट पर रहे। क़ुर्बान बेचारा बीमार था, और मुझे उस पर बहुत तरस आता था। मैं ने उस से हमदर्दी ज़ाहिर की, और फिर मैं ने उसे ख़ुदावंद मसीह का नजात-बख़्श पैग़ाम सुनाया जो उस के लिए बिलकुल

नया था। मैं ने उसे बताया कि ख़ुदावंद मौत पर ग़ालिब आया है और यों उस ने मौत का डंक तोड़ दिया है। जब तक हम लाहौर पहुँचे क़ुर्बान हक़ का मुतलाशी बन चुका था। हम दोनों ने एहसान को कुछ न बताया, क्योंकि हम दोनों जानते थे कि अगर उसे इन बातों का कहीं इल्म हो गया तो वह क़ुर्बान को ज़बरदस्ती अपने हमराह वापस नारोवाल ले जाएगा।

जब हम लाहौर पहुँचे तो मैं इन दोनों को अपने एक दोस्त के हाँ ले गया जो बड़ा क़ाबिल डाक्टर था। एहसान की आँखों को दिखाने के बाद मैं ने उस से क़ुर्बान के लिए दवा माँगी। उस ने दवा तो दे दी लेकिन साथ ही यह कह दिया कि वह इस मूज़ी मर्ज़ से नहीं बचेगा।

जब हम वापस अमृतसर पहुँचे तो मैं एक दोस्त के हाँ ठहरा जिस ने एक कमरा मुझे दिया जबकि दूसरे कमरे में उस ने दोनों लड़कों को उतारा। मैं चाहता था कि अमृतसर में चंद दिन रह कर मौक़ा पा कर क़ुर्बान को इंजील जलील का जाँफ़िज़ा पैग़ाम सुनाऊँ और एहसान को इस बात का पता तक न लगे। इस मक़्सद के तहत मैं एहसान को किसी न किसी बहाने से बाहर भेजता रहता था। बद-क़िस्मती से मुझे दूसरे रोज़ ही नारोवाल से पैग़ाम मिला कि मेरा फ़ौरन वहाँ जाना लाज़िमी है। मेरे और नारोवाल के दरमियान तीस मील का फ़ासिला और दो दरिया हाइल थे, और मुझे वापस फ़ौरन चल पड़ना था। मैं ने एहसान को किसी काम पर बाहर भेज दिया और फिर क़ुर्बान को कहा, "मैं दो दिन के बाद वापस आ जाऊँगा। तुम यहीं रहना।"

उस ने मुझ से पहला सवाल यह किया कि अगर आप चले गए तो मुझे कौन तालीम देगा?

मैं ने उसे पढ़ने के लिए किताबे-मुक़द्दस की एक जिल्द दी। उस ने किताब को ख़ुशी से ले कर अपने तकिया के नीचे रख लिया। लेकिन कहने लगा, "यह किताब तो बड़ी है, और भाई एहसान इस को देख लेगा। फिर मैं क्या करूँगा?"

इस पर मैं ने उसे ज़बूर शरीफ़ की एक जिल्द दी। इस को पा कर वह कहने लगा, “यह किताब तकिए के अंदर तो छुप सकती है, लेकिन क्या इस में हज़रत मसीह रूहुल्लाह का भी ज़िक्र है?” किताब दे कर मैं नारोवाल चला गया।

क़ुर्बान ज़बूरों को पढ़ रहा था कि उसे लेटे लेटे नींद आ गई, और किताब खुली की खुली रह गई। जब एहसान वापस कमरे में आया तो उस की नज़र किताब पर पड़ी। उस ने क़ुर्बान को जगा कर दुरुश्ती से पूछा, “यह क्या है? तुम को यह किताब कहाँ से मिली और तुम ने इस को क्यों लिया?”

उस ने जवाब दिया, “बेटमन ने मुझे दी है, क्योंकि मैं ने उस से माँगी थी, और मैं मसीही होना चाहता हूँ।”

उस का यह कहना था कि एहसान ने उसे बिस्तर में से निकाल घसीटा और अपने हमराह नारोवाल ले गया। इस वाक़िए के तक़रीबन एक माह बाद मैं शियों के क़ब्रिस्तान में से जा रहा था कि मैं ने देखा कि लोग क़ुर्बान का जनाज़ा लिए आ रहे थे।

सच्चाई की तलाश

एहसान अली न सिर्फ़ कट्टर शिया था जिस को इल्म हासिल करने का शौक़ था बल्कि वह एक हस्सास दिल और रोशन ज़मीर रखने वाला इनसान भी था। यह ना-मुमकिन अम्र था कि मियाँ नुसरतुल्लाह के मुलायम और बेटमन के मुहब्बत भरे जवाबात जो वह उस के तुरश एतराज़ात और सख़्त कलाम के वक़्त देते थे उस के ज़मीर को मलामत न करते और तरैफ़ेन के रवय्ये का फ़र्क़ उस के हस्सास दिल पर चोट न लगाता। जहाँ उस का रवय्या गुस्ताख़ी और बदज़बानी की जानिब मायल था वहाँ उन का रवय्या नर्मी, सब्र और मुहब्बत-आमेज़ अलफ़ाज़ का था। वह अपने दिल को बहुतेरा समझाता, लेकिन उस का ज़मीर उसे हमेशा क़ायल कर देता था। जब बेटमन ने क़ुर्बान को नदी से निकाल कर

उस की ख़बरगीरी को ज़्यादा ज़रूरी तसव्वुर किया तो वह चौंक पड़ा और सोचने लगा कि एक अंग्रेज़ ने क्यों क़ुर्बान की जान को सख़्त सर्दी के मौसम में अपने आरामो-आसायश पर तर्जीह दी और ख़ुद तक्लीफ़ उठा कर एक मुसलमान बीमार लड़के का पहले ख़्याल किया, हालाँकि उस ने क़ुर्बान को पहले कभी देखा भी न था। उस का हस्सास दिल उसे क़ुर्बान की मौत का भी किसी हद तक ज़िम्मेदार क़रार देता था कि अगर वह उसे अमृतसर से घसीट कर ज़बरदस्ती नारोवाल न ले जाता तो वह शायद न मरता। फिर वह अपने दिल को समझाता कि उस ने अपने तर्ज़े-अमल से क़ुर्बान को जहन्नुम जाने से बचा लिया। लेकिन उस का दिल इस क़िस्म की तिफ़्लाना तसल्लियों को न मानता और उसे क़ुर्बान की मौत का ज़िम्मेदार ठहराता। फिर वह यह सोचता कि बेटमन ने सिर्फ़ उस की आँखें दिखाने के लिए नारोवाल से राहे-अमृतसर लाहौर तक सख़्त सर्दियों के दिनों में क्यों साठ-सत्तर मील आने और साठ-सत्तर मील जाने की मुसीबत उठाई हालाँकि वह हमेशा उस से सख़्त-कलामी और गुस्ताख़ी से पेश आता रहा था। ग़रज़ उस के दिल में रूहानी कश-म-कश और ज़ेहनी कोफ़्तगी शुरू हो गई जो उसे किसी हालत में भी चैन न लेने देती थी। सौलुस की तरह वह “आँकुस के ख़िलाफ़ पाँओ” मारता था।

एहसान अली ने स्कूल छोड़ दिया था और अब वह अपने वालिद के कारोबार में मदद देता था और साथ ही अज्नासे-ख़ुर्दनी चावल और गेहूँ वग़ैरा की थोक-तिजारत करता था। नारोवाल से क़रीब तीन मील के फ़ासिले पर मंदराँ वाला गाँव आला क़िस्म के चावल के लिए मश्हूर था। चुनाँचे वहाँ से और दूसरे देहात से वह अज्नासे-ख़ुर्दनी ख़रीद कर लाता और मुनासिब नफ़ा पर फ़रोख़्त करता था। नतीजे में उस का ख़ानदान पहले से भी ज़्यादा ख़ुश-हाल हो गया। गाँव आते जाते वक़्त यह 17, 18 साला नौजवान राह में दीनी मसायल पर ग़ौर किया करता था। उसे यह तालीम दी गई थी कि हज़रत मसीह पर जो इंजील नाज़िल

हुई थी वह मुहर्रफ़हो गई है। इसी वजह से उस में तसलीस, उलूहियते-मसीह, कफ़्फ़ारा और इब्नुल्लाह जैसी तालीम मौजूद हो गई है और इस के मुख़्तलिफ़मक़ामात में तज़ादो-तनाक़ुज़ पाया जाता है, हालाँकि कलामे-ख़ुदा में किसी क़िस्म का तनाक़ुज़ जायज़नहीं। फिर उसे रह-रह कर किताबे-मुक़द्दस के उस्ताद नुसरतुल्लाह और बेटमन की नर्मी, तहम्मुल, सब्र और मुहब्बत का रवय्या याद आता, और यह सवाल उस के दिल में पैदा होता कि इस क़िस्म की तालीम से ऐसे औसाफ़किस तरह पैदा हो सकते हैं? ख़ुद-फ़रामोशी, ईसार और प्यार जैसी नेकियाँ क्योंकर ईसाइयों का शेवा हो जाती हैं? अगर उन की तालीम बिगड़ी हुई है और अगर यह सच है कि गंदुम से गंदुम और जै से जौ निकलता है तो इस क़िस्म के औसाफ़उन में कहाँ से आ गए? चुनाँचे उस ने मुसम्मम इरादा कर लिया कि वह क़ुरानो-इंजील और शिया मज़्हब के उसूल और ईसाई दीन की तालीम का अज़्सरे-नौ मुवाज़ना करके सिराते-मुस्तक़ीम की पैरवी करेगा।

मसीह की तरफ़रुजू

1876 के मौसमे-गर्मा का ज़िक्र है कि एहसान अली ऐन दोपहर के वक़्त मिशन स्कूल के हेड-मास्टर भोला नाथ घोष के घर गया। उन के बेटे ऐस.ए.सी. घोष लिखते हैं,

> मेरी उम्र क़रीबन 6 साल की थी। मैं अपने बाप के पास कमरे के अंदर बैठा हुआ था। बाहर सख़्त धूप थी। कड़कती गर्मी के दिन थे। मैं ने देखा कि एक अठारह साला जवान कमरे के दरवाज़ेकी चिक उठा कर शीशों में से अंदर झांक रहा है। मैं ने अपने बाप को जगाया और उठ कर लड़के के लिए दरवाज़ाखोला। लड़का अंदर आया और मेरे बाप के पास बैठ गया। दोनों एक दूसरे से बात करने लगे। रफ़्ता रफ़्ता लड़के की आवाज़ ऊँची और दुरुश्त होती गई। लेकिन मेरे बाप की आवाज़नर्म और धीमी रही। ऐसा मालूम होता था कि वह लड़के को मुलायमत से कुछ समझा

रहे हैं। उन की आँखों से मुहब्बत टपक रही थी, लेकिन लड़के की आँखों से ग़ुस्से के शरारे निकल रहे थे। यह गुफ़्तगु कोई चार-पाँच घंटे जारी रही जिस के बाद लड़का चला गया।

उस के जाने के बाद मैं ने अपने बाप से पूछा, "यह कौन था और क्या कहता था?"

मेरे वालिद ने मुझे बताया, "यह लड़का एहसान है जो ईसाई मज़हब का सख़्ततरीन दुश्मन था लेकिन ना-मालूम क्यों। अब वह हक़ का तालिब हो गया है और इस्लामी और मसीही मसायल का मुक़ाबला करने के लिए मुझ से मदद लेने आया था।"

मेरी उम्र छोटी थी और नासमझ की हालत थी। मुझे उन की आपस की बातों का ज़रा भी पता न लगा। बस इतना समझ गया कि यह मुसलमान लड़का अब ईसाई हो जाएगा।

एहसान अली बेटमन और मियाँ नुसरतुल्लाह के पास और अपने मौलवी सय्यिद हुसैन अली शाह के पास अक्सर जाने लगा। वह दीनी मसायल छेड़ देता था ताकि राहे-हक़ को इख़्तियार करे। कभी कभी वह हिचकिचा कर अपने बाप और माँ से भी दीनी मसायल की निस्बत सवाल करता, क्योंकि उस के दिल में उन की बड़ी इज़्ज़त थी।

इधर उस का हम-जमात दीना नाथ प्रेतू दित्ता मसीह का पैरोकार हो चुका था। मियाँ सुपत्ता और उस के बेटे रहमत और अह्मद मसीह पर ईमान लाए थे। वारिसुद-दीन को भी बपतिस्मा मिला था। उस के हम-मक्तब हमीदुद-दीन, वधावा मल और सुन्नत शाह भी ख़ुदावंद मसीह के क़दमों में आ चुके थे। एहसान अली इन लड़कों से भी मज़हबी गुफ़्तगु करता था। सब से बड़ा मसला जो उस के दरपेश था वह तहरीफ़-ए-इंजील का मसला था जो बुनियादी मसला था। अगर इंजील मुहर्रफ़ और मन्सूख़ नहीं हुई और इस की सेहत पर कोई एतराज़ नहीं हो सकता तो इब्नियते-मसीह, उलूहियते-मसीह, कफ़्फ़ारा और तसलीस वग़ैरा के मसले ईमान की रू से मानने होंगे, ख़ह इनसानी अक़्ल इन उक़्दों को हल कर सके

या न कर सके। क्योंकि ज़ाते-बारी तआला इनसानी इद्राक से बुलंदो-बाला है।

इस के पेशे-नज़र एहसान अली की तमामतर कोशिश इसी जुस्तजू में लगी रही कि क्या मौजूदा इंजील वही है जो हज़रत मसीह लाए थे। उन दिनों में फ़ंडर की किताब मीज़ानुल-हक़ का उर्दू में तर्जुमा हो गया था जिस के मुतालए से उस पर यह ज़ाहिर हो गया कि जिस इंजील की क़ुरान बार बार और जा-बह-जा तस्दीक़ करता है वह वही इंजील है जो ज़मानाए-रसूल में ईसाई अरबों के हाथों में थी और जिस की हज़ारों नक़लें ज़मानाए-मसीह से ज़मानाए-मुहम्मद तक मुख़्तलिफ़ ममालिके-मशरिक़ो-मग़रिब में मौजूद थीं और जिस के तर्जुमे इन छः सदियों के दौरान बीसियों ज़बानों में हर मुल्क में मुरव्वज थे। चुनाँचे ज़मानाए-रसूल से पहले इंजील की सेहत में फ़ुतूर का वोक़ुअ होना एक ना-मुमकिन अम्र था और ज़मानाए-मुहम्मद के बाद तो यह अम्र मुहाल था। यों रफ़्ता रफ़्ता उस पर मुंकशिफ़ हो गया कि इंजील की निस्बत मौलवियों के ख़यालात बेबुनियाद हैं।

अब उस ने अज़-सरे-नौ इंजीलो-क़ुरान का गहरा मुतालआ शुरू कर दिया। वह ख़ुदा से सच्चे दिल से दुआ करता था कि ऐ ख़ुदा, मुझे अपनी राह दिखा और सिराते-मुस्तक़ीम पर चलने की तौफ़ीक़ अता कर। उस ने शिया कुतुबे-तफ़्सीरो-सियर का बग़ौर मुतालआ किया, क्योंकि अहले-सुन्नत की अहादीस उसे क़ाबिले-एतराज़ नज़र आती थीं जिन पर ईसाइयों के एतराज़ात मबनी होते थे।

क़ुरान की आयात से उसे यह इल्म हो गया कि ख़ुदा रसूले-अरबी को कई मक़ामात पर हुक्म देता है कि वह अपने गुनाहों के लिए मग़फ़िरत के तालिब हों और कि क़ियामत के दिन आँहज़रत गुनाहगारों की शफ़ाअत करा नहीं देंगे। इस के बर-अक्स हज़रत मसीह की इस्मत पर क़ुरानो-इंजील दोनों गवाह हैं, और मसीह की निस्बत सब नबी गवाही देते हैं

कि जो कोई उस पर ईमान लाएगा वह उस के नाम से गुनाहों की मग़फ़िरत पाएगा।

घोष साहब और बेटमन ने एहसान अली को तसलीस की निस्बत बताया कि इंजील तीन ख़ुदाओं पर ईमान रखने की तालीम नहीं देती बल्कि तसलीस फ़िल-तौहीद और तौहीद फ़िल-तसलीस पर ईमान लाने की तलक़ीन करती है। मसीह ख़ुदावंद ने निहायत वाज़ेह अलफ़ाज़ में फ़रमाया है कि ईमानदार ख़ुदाए-वाहिद और बर-हक़ को मानें। और पौलुस रसूल भी कहता है कि एक के सिवा कोई ख़ुदा नहीं। ख़ुदा एक ही है यानी बाप जिस की तरफ़ से सब चीज़ें हैं और एक ही ख़ुदावंद है यानी ईसा मसीह जिस के वसीले से सब चीज़ें वुजूद में आईं। इब्नियते-मसीह के बारे में उन्हों ने बताया कि इंजील की रू से बीबी मर्यम ख़ुदा की मआज़ुल्लाह ज़ौजा न थीं बल्कि इस ख़िताब से रूहानी रिश्ते का ज़ाहिर करना मुराद है।

कफ़्फ़ारे के मुताल्लिक़ उन्हों ने कहा कि अगर गाय, बकरी, ऊँट वग़ैरा हैवानात गुनाहों का कफ़्फ़ारा हो सकते हैं तो मसीह जो "ख़ुदा का लेला" है दुनिया के गुनाह क्यों नहीं उठा सकता?

ग़रज़ दोनों ने मज़बूत दलायल से एहसान अली की मुख़्तलिफ़ दीनी मसायल के मुताल्लिक़ हत्ता-ल-मक़्दूर तसल्ली देने की कोशिश की।

ज्यों-ज्यों एहसान अली मसीह और इंजीले-मसीह के क़रीब आता गया उस का इज़्तिराब बढ़ता गया, क्योंकि मसीह पर ईमान लाने के नतीजे उस से छुपे न थे। वह अपने माँ-बाप का पहलौठा बेटा था जिस से उन की उम्मीदें वाबस्ता थीं। उस का ख़ानदान दीनी उमूर में पेश पेश और सब के लिए नमूना था। ऐसे मुम्ताज़ ख़ानदान का वह चशमो-चराग़ था। अगर उस ने शिया मज़्हब को तर्क कर दिया तो दुनिया क्या कहेगी? उस के बाप की नाक कट जाएगी। उस की माँ जिस को वह अज़्हद प्यार करता था मारे ग़म के मर जाएगी। दोनों किसी को मुँह दिखाने के

क़ाबिल न रहेंगे। उस के दोनों भाइयों और बहनों का क्या हशर होगा? ख़ानदान के मुख़्तलिफ़ अफ़राद के दिल जल जाएँगे।

> दिल के फफोले जल उठे दिल के ही दाग़ से
> इस घर को आग लगी घर के चराग़ से।

कभी वह अपने मुताल्लिक़ सोचता कि मेरा मुस्तक़बिल क्या होगा? बरादरी से ख़ारिज कर दिया जाऊँगा। ख़ानदान और घर से निकाल दिया जाऊँगा। मैं सब की तरफ़ से मर जाऊँगा, और सब मेरी तरफ़ से मर जाएँगे। कोई मेरे साथ किसी तरह का सरोकार न रखेगा। मेरा कारोबार तबाह हो जाएगा, और मैं ख़ुद तबाह-हाल, ख़ाना-ख़राब और ज़मीन पर आवारा फिरूँगा। इस क़िस्म के ख़यालात उसे शहर के बाहर वीराने में ले जाते जहाँ वह बड़ी आजिज़ी के साथ ख़ुदा से दुआ करता कि ऐ ख़ुदा मुझ पर रहम कर! मुझे इस घटाटोप अंधेरे से निकाल कर अपने नूर में ले चल। मेरी बेक़रारी और बेचैनी को दूर कर, और मुझे ताक़त और क़ुव्वत अता कर ताकि मैं राहे-रास्त पर चलने की तौफ़ीक़ पाऊँ, कि मैं तानो-तश्नी की तरफ़ से बेपर्वा हो कर ख़ालिस नीयत से तेरी पैरवी करूँ। मेरा दिल हर तरफ़ से ख़ाइफ़ है, लेकिन तू मेरे दिल में से हर क़िस्म का ख़ौफ़ और इज़्तिराब निकाल दे, मुझे क़ल्बी इत्मीनान और आरामे-जान अता कर। ऐ मसीह, तू सब को जो बोझ से दबे हुए हैं दावत देता है कि मेरे पास आओ। मैं तुम को आराम दूँगा और तुम्हारी जानें आराम पाएँगी। अपना इत्मीनान मुझे अता कर।

ख़ुदा ने आख़िरकार उस की दिली दुआ सुन ली और यशूअ की तरह उसे फ़रमाया,

> मैं तुझे कभी नहीं छोड़ूँगा, न तुझे तर्क करूँगा ...लेकिन ख़बरदार, मज़बूत और बहुत दिलेर हो ...मैं फिर कहता हूँ कि मज़बूत और दिलेर हो। न घबरा और न हौसला हार,

> क्योंकि जहाँ भी तू जाएगा वहाँ रब तेरा ख़ुदा तेरे साथ रहेगा। (यशूअ 1:5,7,9)

आख़िर लोगों को पता लगा कि एहसान अली इस्लाम को तर्क करके मसीह का पैरोकार होना चाहता है। हर तरफ़ शोर मच गया। क़ियामते-सुग़रा बरपा हो गई। हर तरफ़ से लानत और फटकार का बौछाड़ शुरू हो गया। बेचारा एहसान उन्हें बहुतेरा कहता कि मेरे साथ बह्स कर लो। मेरी अक़्ल मुझे कहती है कि मसीही मज़्हब ही अकेला सच्चा देन है। लेकिन ऐसे शख़्स से बह्स कौन करे जो बाज़ारी मुनादी में हर ईसाई वायज़ का नाक में दम कर दिया करता था। एक मन चले ने उसे जवाब में कहा,

> صد لعنت و پھٹکار چنیں ذہن رسا را
> सदहा लानत और फटकार ऐसे तेज़ ज़ेहन को।

एहसान इस क़िस्म के पंजाबी-फ़ार्सी अशआर पर हँस देता और जवाब में कहता,

> خدا دارم چہ غم دارم۔ خدا دارم چہ غم دارم
> मुझे ख़ुदा हासिल है, मुझे क्या ग़म?
> मुझे ख़ुदा हासिल है, मुझे क्या ग़म?

जब उस के ख़ानदान को उस के ख़यालात की तबदीली का इल्म हुआ तो बाप ने बहुत समझाया। लेकिन वह एक न माना। आख़िर बाप ने कहा, “जा। गया गुज़रा हुआ। नामुराद।”

माँ ने अपना सर पीट लिया और कहा, “तू उस शैतान (बेटमन) के पास करने क्या जाता है जो तुझ को वरग़ला कर जहन्नुम की तरफ़ ले जा रहा है? मुहल्ले की औरतें कहती हैं कि वह शैतान जो है सो है, पर उस ने एहसान पर जादू पढ़ दिया है। तावीज़ गंडे से इलाज करो।

मँझला भाई रहमत अली सख़्त मुश्तइल हुआ और तैश में आ कर लठ उठा कर चला कि ऐसे भाई को जान से मार देना बेहतर है जो ख़ानदान

की इज़्ज़त-आबरू का ख़याल नहीं करता। बरादरी के लोग उस से किनारा करने लगे। बाप को कहा, “जनाब, उसे घर से निकाल दें। वह उल्लू-मुअत्तल है। किसी ने यह हवाई उड़ा दी कि एहसान को कारोबार में घाटा पड़ा है और इस सहारे की वजह से ईसाई होना चाहता है। किसी ने कहा, “लालच बुरी बला है। अक़्लमंदों को अंधा कर देता है।” किसी ने कहा, “मेम से ब्याह करना चाहता है।”

ग़रज़ जितने मुँह इतनी बातें। लेकिन एहसान अब वह एहसान न था जो तैश में आ कर लोगों को गालियाँ दिया करता था। वह हर शख़्स से तहम्मुल, सब्र और मुलायमत से बात करता और लान-तान का जवाब ख़ामिज़ाजी से दे कर हर एक के सामने इंजील की सदाक़त पेश करता था। जो लोग उस से बहस करना चाहते वह उन्हें खुला चैलेंज दे कर कहता कि अगर तुम दलायल से मुझे क़ायल कर लो तो मैं मसीह का पैरोकार नहीं रहूँगा, लेकिन अगर तुम मेरी दलीलों का जवाब न दे सको तो तुम भी मेरे साथ मसीह पर ईमान लाओ। ख़्वाजगान की बरादरी उस का हाल देख कर हैरान थी कि क्या यही वह एहसान है जो बाज़ार और स्कूल में किसी ईसाई को खड़ा नहीं होने देता था और हर जगह उन्हें परेशान कर देता था।

बरादरी का क़ाए-ताल्लुक़

यह हालात देर तक नहीं रह सकते थे और न रहे। बरादरी के सरबराह एहसान अली के बाप के पास गए और कहा, “जनाब, आप इस लड़के को समझाएँ। उस ने एक फ़ित्ना बरपा कर रखा है, और अब हालात हमारी बरदाश्त से बाहर हो गए हैं। आप की ख़ातिर हम को मंज़ूर थी, इस वास्ते हम ने अभी तक उसे कुछ नहीं कहा। लेकिन उस की ज़बान बढ़ती चली जा रही है। हर छोटे बड़े को चैलेंज देता फिरता है। पहले हुसैन बख़्श ईसाई हो गया, फिर उस के बेटे-पोते ईसाई हो गए। वारिस ईसाई हो गया। इर्दगिर्द के गाँव के लड़के ईसाई हो गए हैं और हो रहे

हैं, और अब जनाब के लड़के ने हर जगह ऊधम मचा रखा है। आप ही बताएँ,

> क्योंकर बुझेगी आग यह घर-घर लगी हुई?

अगर हमें जनाब का लिहाज़न होता तो हम उसे दो दिन में सीधा कर लेते और पैग़न बरादरी से ख़ारिज कर देते। उसे भी होश आ जाती।"

एहसान के बाप ने जवाब दिया, "मैं ने उसे बहुतेरा समझाया है, लेकिन वह अपने इरादे का पक्का है। वह नहीं माना और न कभी मानेगा।"

उन्हों ने कहा, "फिर बेहतर है कि आप उसे छोड़दें।"

"जनाब" के सीने से एक आह निकली, और उन्हों ने कहा, "मैं आख़िरत को इस दुनिया पर और अपने पहलौठे की मुहब्बत पर तर्जीह देता हूँ।" उन्हों ने एहसान को इन बातों की ख़बर दी।

उस ने जवाब में कहा, "जनाब, मैं भी आख़िरत को इस दुनिया पर तर्जीह देता हूँ और इसी वास्ते सब कुछ छोड़कर और आप की, माँ की और भाइयों, रिश्तेदारों और अज़ीज़-अक़रिब की मुहब्बत से मुँह मोड़ कर मसीह का पैरोकार हो गया हूँ। लेकिन आप इस बात का यक़ीन रखें कि मैं आप का वही ताबेदार बेटा हूँ और ता-उम्र आप का और माँ का फ़रमाँ-बरदार रहूँगा।"

बाप की आँखों से आँसू जारी हो गए। माँ दहाड़ेंमार कर रोने लगी और एहसान से लिपट गई। आहो-नाला की आवाज़ेंबुलंद हुईं। वह भी रोने लगा। बहनें, रहमत अली और मुहसिन अली सब के सब ज़ार ज़ार रोने लगे। आख़िर बाप ने कहा, "जब तू हमारी बात नहीं मानता तो जो तेरी मरज़ी है कर। लेकिन ईसाई हो कर तू घर में नहीं रह सकता। बरादरी तुझ को ख़ारिज कर देगी और तू कहीं का न रहेगा।"

एहसान ने एक आह भर कर कहा,

> ما خدا داریم و ما را ناخدا درکار نیست
> हमें ख़ुदा हासिल है, और हमें नाख़ुदा दरकार नहीं

वह घर से निकल कर सीधा बेटमन साहब के पास गया और उन्हें तमाम हालात बताए और कहा कि अब मैं बपतिस्मा पाने को तैयार हूँ। चुनाँचे 21 अप्रैल 1878 के रोज़बेटमन ने एहसान अली को नारोवाल की इबादतगाह में बपतिस्मा दिया। उस का मसीही नाम एहसानुल्लाह रखा गया।

2 बटाला और बन्नूँ के अय्याम

बटाला

बपतिस्मा पाने के बाद एहसानुल्लाह नारोवाल से बराहे-जस्सड़ कक्केकी, मियादी, डेरा बाबा नानक पैदल से बटाला को ख़ुदा का नाम ले कर चल पड़ा। उस की क़ैम ने हुक़्क़ा-पानी बंद कर दिया था। माँ-बाप, भाई-बहन और अज़ीज़ सब बेगाने हो गए थे, लेकिन उस का दिल इत्मीनान से पुर और ख़ुशी से मामूर था। उस का मुस्तक़बिल तारीक था, लेकिन उस के ईमान का नूर उस के पाँओ का चराग़ और उस की राह की रोशनी था। अब वह बीस-साला नौजवान था, और उसे ऐसा मालूम होता था कि जिस तरह ख़ुदा ने हज़रत इबराहीम को कहा था,

> अपने वतन, अपने रिश्तेदारों और अपने बाप के घर को छोड़कर उस मुल्क में चला जा जो मैं तुझे दिखाऊँगा। मैं ...तुझे बरकत दूँगा। (पैदाइश 12:1-12)

इसी तरह ख़ुदा ने उसे भी अपने वतन और रिश्तेदारों और अपने बाप के घर से निकाला है, और वह ज़रूर बरकत पाएगा। बटाला पहुँच कर वह मसीहियों के घर गया और उन्हें बताया कि ख़ुदा ने उसे ईमान लाने की तौफ़ीक़ बख़्शी है। क़ैला रहमत मसीह वायज़ लिखते हैं,

> जब एहसान ने नारोवाल को ख़ैरबाद कह कर बटाला में जा सर निकाला तो उस ने गोश्त और ख़ून से सलाह लिए बग़ैर ऐसा किया। ऐसे मुख़लिफ़ का इस तरह मसीह का इकरार करना न सिर्फ़ हैरत-अंगेज़ था बल्कि क़ाबिले-यक़ीन भी न था। लोग उसे शक की निगाह से देखते थे जैसा पौलुस रसूल की निस्बत लिखा है कि भाइयों ने उस के ईमान को शक की निगाह से देखा। मगर दिखावे और असल जल्दी ज़ाहिर हो जाते हैं। एहसानुल्लाह ने बहुत जल्दी वहाँ अपना एतबार जमा लिया।

स्कूल में दुबारा दाख़िला

उन अय्याम में बटाला की जमात में चंद एक बर्गुज़ीदा हस्तियाँ थीं। ऐफ़.एच. बैरिंग, एच.यू. वायटब्रेख़्ट, मिस टकर और बाबू ईशन चंद्र सिंघा वग़ैरा इस जमात के गौहरे-शाहवार थे। अप्रैल 1878 में एहसानुल्लाह का बपतिस्मा हुआ था, और उसी अप्रैल को बैरिंग ने अपना स्कूल खोला जिस का पहला हेड-मास्टर बाबू ईशन चंद्र सिंघा मुक़र्रर हुए।

एहसानुल्लाह की उम्र बड़ी थी, क्योंकि वह अब बीस साल का नौजवान था। तो भी उसे तहसीले-इल्म का बेहद शौक़ था, इस लिए बैरिंग ने उसे अपने स्कूल में दाख़िला कर लिया। स्कूल में वह बड़ी मेहनत से काम करता और हमेशा जमात में अव्वल रहने की कोशिश किया करता था। अगर किसी रोज़ वह किसी मज़मून में अव्वल न रहता तो वह एक बेद ले कर स्कूल की बालाई मनज़िल पर चला जाता और अपने आप को बेद से पीट कर लहू-लुहान कर लिया करता था। उस के साथी दीना नाथ प्रेतू दित्ता और रहमत मसीह वग़ैरा इसी स्कूल में तालीम पाते थे। डाक्टर दीना नाथ प्रेतू दित्ता लिखते हैं,

> एहसान मेरे साथ नारोवाल मिशन स्कूल में पढ़ता था और मेरा हम-जमात भी था। जब वह मसीही हो कर बटाला आया और स्कूल में दाख़िला हुआ तो हम दोनों ने अपने पुराने ताल्लुक़ात को अज़सरे-नौ ताज़ा किया। उस का ईमान ईज़ा की आग में ताया गया था और ख़ालिस सोने की मानिंद चमकता था। मैं मॉनीटर था, और वह हर बात में मेरा दहना हाथ था। हम दोनों को यह एहसास था कि स्कूल के हर लड़के की ज़िंदगी के लिए हम दोनों खास तौर पर ख़ुदा के हुज़ूर ज़िम्मेदार हैं। हम समझते थे कि हम तमाम तुलबा के बड़े भाई हैं जिन के सपुर्द ख़ुदा ने यह ख़ास ख़िदमत की है कि उन की रूहानी ज़िंदगी की निगहदाशत करें और उन के मुतालए वग़ैरा की तरफ़ तवज्जुह दें। हर इतवार को हम संडे-स्कूल की जमात के

> बाद लड़कों को बाज़ार ले जाते थे और अहालियाने-बटाला को इंजील का जाँफ़िज़ा पैग़ाम सुनाते थे।

वायज़ साहब भी लिखते हैं,

> स्कूल में एहसानुल्लाह की मसीही ज़िंदगी की तासीर अजीब काम करती रही। एक तरफ़ बाबू सिंघा की ख़ामोश ज़िंदगी, दूसरी तरफ़ एहसानुल्लाह की पुर-जोश ज़िंदगी ने तुलबा की ज़िंदगियों पर असर कर रखा था। एक दिन का ज़िक्र है कि बाबू सिंघा साहब की कोठी पर संडे-स्कूल के वास्ते आला क्लास के लड़के जमा हुए। बाबू जी कहीं बाहर गए हुए थे और अभी वापस घर नहीं लौटे थे। एहसानुल्लाह ने संडे-स्कूल लेना शुरू कर दिया। चंद मिनटों में ही लड़कों की हालत उलट-पुलट हो गई। उन्हों ने रोना पीटना शुरू कर दिया। कोई रोता है, कोई तौबा करता है। लड़के बिलकुल हवास खो बैठे। यह हालत हो रही थी कि बाबू जी आ गए। आते ही वह असलियत को समझ गए और मुशकिल से लड़कों को ख़ामोश किया।

गुनाह से नजात का एहसास

जिस वाक़िए का क़िस्सा वायज़ ने ऊपर ज़िक्र किया है वह 1880 का है जब एहसानुल्लाह मेहनत-मशक़्क़त करके कोलकाता यूनीवर्सिटी के एंट्रंस का इमतहान देने की तैयारी में हमा-तन मशग़ूल था। यह साल उस की ज़िंदगी में एक निहायत अहम साल था, क्योंकि इस साल उसे इस बात का ज़ाती एहसास हुआ था कि ख़ुदावंद मसीह उसे और कुल बनी-आदम को गुनाह की ताक़त और ग़ुलामी से नजात देता है। अब तक वह दलायलो-बुर्हान के ज़ोर से मसीही ईमान के उसूल का क़ायल था और हर एक को यही कहता था कि मेरे साथ बह्स कर लो और अक़्ल के ज़ोर से मुझे क़ायल कर लो। अगर तुम मेरी दलीलों से आजिज़ हो जाओ तो मेरी तरह इस्लाम को तर्क करके मसीही ईमान के उसूल पर ईमान ले आओ। लेकिन इस साल उसे यह एहसास हुआ कि दलायल

और बुर्हान से किसी शख़्स को गुनाह के पंजे से रिहाई हासिल नहीं हो सकती। ख़ुदावंद मसीह न सिर्फ़ अक़्ल का मालिक है बल्कि दिल और जज़्बात पर भी सिर्फ़ वही क़ाबू कर सकता है। वही गुनाहगार को यह फ़ज़्ल अता करता है कि वह अपने गुनाहों पर ग़ालिब आए।

अब ख़ुद उस की जवानी का ज़माना था और स्कूल के जवान लड़के भी तरह-तरह की आज़माइशों में गिर रहे थे। बटाला शहर का माहौल ही ऐसा था कि यह जवान लड़के इर्दगिर्द के हालात से मुतअस्सिर हो कर आज़माइशों में मुब्तला हो रहे थे। एहसानुल्लाह ख़ुद इन आज़माइशों के ज़ेर और क़ुव्वत से वाक़िफ़ हो रहा था और साथ ही लड़कों की रूहानी फ़लाहो-बहबूदी का ख़याल हमेशा उस के ज़ेर-नज़र था। चुनाँचे उस पर अब यह हक़ीक़त रोज़-रोशन की तरह मुंकशिफ़ हो गई कि मेरा आक़ा जिस पर मैं ईमान लाया हूँ न सिर्फ़ राह और हक़ है बल्कि ज़िंदगी और नजात भी है जिस की सलीब पर से एक ऐसा चशमा निकलता है जिस में नहा कर हर गुनाहगार पाक हो जाता है। यह एहसास एहसानुल्लाह की ज़िंदगी में ज़िंदगी भर कारफ़रमा रहा।

चुनाँचे जब वह सी.ऐम.उस की सद-साला बरसी पर 1899 में इंगलैंड गया तो उस ने कहा,

> मैं शर्म के साथ इकरार करता हूँ कि बपतिस्मे के वक़्त मैं इंजील जलील के उसूल का सिर्फ़ अक़्ली तौर पर ही क़ायल हुआ था। मुझे इस हक़ीक़त का ज़ाती तजरिबा न था कि मसीही दीन की तालीम हर इनसान की रूहानी ज़िंदगी को तबदील कर देती है। यह हक़ीक़त जो मुझ पर दो साल बाद खुली चराग़े-हक़ की तरह रोशन है, और कोई इस्तिदलाल उस को बुझा नहीं सकता। तब ख़ुदा ने मेरे दिल को पकड़ा। उस का पाक नाम मुबारक हो जिस ने मुझे अपना फ़रज़ंद बना कर मुझे गुनाहों से नजात बख़्शी और मेरे क़दमों को अपने फ़रज़ंद के हैरत-अंगेज़ नूर में चलाया। उस साल से यह एहसास मुझ में रोज़-ब-रोज़ बढ़ता ही जा रहा है और मैं हर छोटे बड़े इनसान को यही ख़ुश-ख़बरी सुनाता आया हूँ और सुनाता रहूँगा।

बटाला में उस्ताद

जब एहसानुल्लाह ने कोलकाता यूनीवर्सिटी के मैट्रिक्यूलेशन का इमतहान पास कर लिया तो बैरिंग साहब ने उस की फ़ार्सी, उर्दू की क़ाबिलियत, जोशे-ईमान, बेरिया ज़िंदगी और इख़्लासे-अक़ीदत देख कर उसे स्कूल में उस्ताद मुक़र्रर कर दिया। वह बड़ी मेहनत और काविश से पढ़ाने से पहले सबक़ तैयार किया करता था। जहाँ वह लड़कों को बहुत प्यार करता था वहाँ वह उन्हें सज़ा देने में भी दरेग़ न करता था। चुनाँचे ऐस.ए.सी. घोष लिखते हैं,

> जब मेरी उम्र दस साल के क़रीब हुई तो मुझे नारोवाल से बैरिंग स्कूल भेजा गया। वहाँ एहसानुल्लाह उस्ताद था। वह लड़कों को बड़ी अरकरेज़ी से मेहनत करके पढ़ाता था और जो लड़का मेहनत करने से गुरेज़ करता या अपना सबक़ याद करके जमात में न आता वह उसे सख़्त सज़ा देता था। लेकिन तमाम लड़के उस के ख़ैरख़्वाह थे और उस से कोसों दूर भागने की बजाए उस के ग़ुलाम थे। क्योंकि वह लड़कों को अपना छोटा भाई तसव्वुर करता था। वह हर वक़्त जोश से भरा रहता था और लड़के उस के इशारे पर चलने को हर दम तैयार रहते थे।

एहसानुल्लाह को अब घर से निकले तीन चार साल हो गए थे। उस के माँ-बाप, भाइयों और रिश्तेदारों की तरफ़ से नामा और पैग़ाम सब बंद थे गोया वह उन की तरफ़ से मर गया है। उस ने बीस साल नारोवाल में काटे थे जिस की हर गली-कूचे से उस की गुज़श्ता ज़िंदगी वाबस्ता थी। बटाला में उस के रिश्तेदार थे, लेकिन ज्यों ही उन्हें मालूम हुआ कि वह "बेदीन" हो गया है उन्हों ने उस की तरफ़ रुख़ भी न किया। इस हालत में उसे ग़ालिब का शेर याद आता था,

> करते किस मुँह से हो ग़ुर्बत की शिकायत ग़ालिब
> तुम को बेमिहरीए-यारानेवतन याद नहीं?

सब से ज़्यादा उसे माँ की याद सताती थी जिस को वह अज़हद प्यार करता था।वह उसे फ़रिश्ते से कम न समझता था और ता-हयात उस की ज़िंदगी और नमूने के लिए ख़ुदा का शुक्र करता रहा। उसे ऐसी फ़रिश्ता-सीरत माँ याद करके जहाँ ख़ुशी होती थी वहाँ उस का यह भी जी करता था कि माँ का मुँह भी देखे। उसे अब तजरिबे से मालूम हो गया कि ख़ुदावंद ने सच फ़रमाया था,

> यह मत समझो कि मैं दुनिया में सुलह-सलामती क़ायम करने आया हूँ। मैं सुलह-सलामती नहीं बल्कि तलवार चलवाने आया हूँ। मैं बेटे को उस के बाप के ख़िलाफ़ खड़ा करने आया हूँ, बेटी को उस की माँ के ख़िलाफ़ और बहू को उस की सास के ख़िलाफ़। इनसान के दुश्मन उस के अपने घर वाले होंगे। जो अपने बाप या माँ को मुझ से ज़्यादा प्यार करे वह मेरे लायक़ नहीं। जो अपने बेटे या बेटी को मुझ से ज़्यादा प्यार करे वह मेरे लायक़ नहीं। जो अपनी सलीब उठा कर मेरे पीछे न हो ले वह मेरे लायक़ नहीं। जो भी अपनी जान को बचाए वह उसे खो देगा, लेकिन जो अपनी जान को मेरी ख़ातिर खो दे वह उसे पाएगा। (मत्ती 10:34-39)

लेकिन ख़ुदावंद ने यह भी फ़रमाया था,

> जिस ने भी मेरी और अल्लाह की ख़ुशख़बरी की ख़ातिर अपने घर, भाइयों, बहनों, माँ, बाप, बच्चों या खेतों को छोड़ दिया है उसे इस ज़माने में ईज़ारसानी के साथ साथ सौ गुना ज़्यादा घर, भाई, बहनें, माएँ, बच्चे और खेत मिल जाएंगे। और आने वाले ज़माने में उसे अबदी ज़िंदगी मिलेगी। (मुक़ा 10:29-30)

एहसानुल्लाह ने इस वादे को अपने हक़में सच पाया। बटाला में सब मसीहियों के घर उस के लिए खुले थे। वह जहाँ जाता उस की आओ-भगत होती। खासकर बाबू सिंघा की कोठी उस का घर हो गया था जहाँ वह जिस वक़्त चाहता बेखटके चला जाता था। बाबू साहब एहसानुल्लाह के बाप थे, और उन की अहलिया मुह्तरमा उस की माँ जो उस की हर तरह से ख़बरगीरी करती थीं। बाबू साहब के बेटे राजू और जूती एहसानुल्लाह को अपना भाई समझते थे, और उन की बेटियाँ एहसानुल्लाह की बहनें थीं। बैरिंग साहब बाप की तरह उस पर शफ़क़त का हाथ रखते और वायटब्रेख़्त साहब उस से भाई की तरह बरताओ करते थे। मिस टकर मादरे-मुशफ़िक़की तरह उस से सुलूक करती थी, और हर छोटा बड़ा उस की इज़्ज़त और क़दर करता था। बेटमन भी उसे मिलने की ख़ातिर आ जाते और उस के हौसले और तसल्ली का बाइस होते थे। स्कूल के तुलबा में वह हर-दिल-अज़ीज़था, और हर लड़का उस के लिए अपनी जान देने को तैयार था। ग़रज़एहसानुल्लाह की ज़िंदगी चारों तरफ़मुहब्बत की फ़िज़ामें साँस ले रही थी। हर शख़्स उसे प्यार करता था। वह हर एक को प्यार करता था। नारोवाल के बजाए अब बटाला उस का वतन हो गया था जिस के दरो-दीवार से उसे बेलाग मुहब्बत हो गई थी।

एहसानुल्लाह को अक्सर औक़ात बटाला से अमृतसर जाने का इत्तफ़ाक़होता था। अमृतसर उन अय्याम में मसीही ईमान का गढ़था जहाँ मिस ह्यूलट, राबर्ट क्लार्क, डाक्टर हैनरी मार्टिन क्लार्क, पंडित खड़क सिंह, मौलवी इमादुद-दीन लाहज़बाबू रुलिया राम, रजब अली जैसी हस्तियाँ जमात की ज़ीनत थीं। यह सब अस्हाब उस की ख़ूब मेहमान-नवाज़ीमें कोई कोताही नहीं करते थे। वह उन के पास बैठ कर इंजील जलील के रुमूज़सीखता, उन की नसीहतों सेफ़ैज़याब होता और उन की सोह्बत से अपने मसीही ईमान में तरक़्क़ीकरता गया। वह लोग भी उस के मसीही जोश और बेरिया ईमान से मुतअस्सिर हुए

बग़ैर न रह सके। यों इन सब में बाहमी रिश्ताए-मुहब्बत बढ़ता गया। चुनाँचे एहसानुल्लाह ने मसीह की जमात की बरादरी में अपने लिए एक मुस्तक़िल जगह बना ली। ज्यों-ज्यों महीने और साल गुज़रते गए मुहब्बत के यह रिश्ते बढ़ते और मज़बूत होते गए।

जब एहसानुल्लाह ने बैरिंग स्कूल में पढ़ना शुरू किया तो चूँकि वह क़ौमे-ख़्वाजगान से मसीही हुआ था, लड़कों और उस्तादों ने उसे “शेख़ साहब” बुलाना शुरू कर दिया। लेकिन उस ने इस बात को बुरा मनाया। वह कहता था कि यह ख़िताब क़ौमी और नसली इमतियाज़ात को बरक़रार रखता है और इनसान के दिल में शेख़ी, तकब्बुर और ग़रूर पैदा कर देता है। चुनाँचे बैरिंग साहब और बाबू सिंघा ने यह मुनासिब समझा कि उसे मियाँ एहसानुल्लाह के नाम से पुकारा जाए। तब से तमाम मसीही, उस्ताद और लड़के उसे “मियाँ साहब” कहने लगे। बटाला और अमृतसर के लोग उसे “मियाँ एहसानुल्लाह” बुलाया करते थे जिस तरह शेख़ हुसैन बख़्श और उस के बेटों को “मियाँ” के ख़िताब से “मियाँ पौलुस,” “मियाँ सादिक़” वग़ैरा बुलाते थे।

बन्नूँ में उस्ताद

जब राबर्ट क्लार्क 1855 के अवायल में दरयाए-अटक के पार सूबाए-सरहद में पहली बार गया तो वह एक ऐसे मुल्क में पहुँचा जहाँ सदियों से मुनज्जीए-आलमीन का नाम और इंजील जलील का जाँफ़िज़ा पैग़ाम सुनाई नहीं दिया था। पेशावर जाते ही उस ने अपने रुफ़क़ा के साथ सलाह करके यह फ़ैसला किया कि सरहद का “मिशन महज़ मुदाफ़अत के लिए ही नहीं बल्कि हमला करने के लिए भी होगा। सरहद्दी मिशन का यह काम होगा कि मसीही ईमान का इल्म मुख़ालिफ़ीन के मुल्क में गाढ़ा जाए और इंजील जलील का पैग़ाम ईरान और मर्कज़ी एशिया में पहुँचाया जाए।”

इन बेचारों को क्या मालूम था कि अंग्रेज़अफ़्सर बर्तानवी हुकूमत के क़ियाम को हर बात पर तर्जीह देते हैं। अगर इंजील की इशाअत से उन की सल्तनत की जड़ेंमज़बूत हों तो उन्हें इंजील को आलाए-कार बनाने में कोई एतराज़न होगा, लेकिन अगर इंजील का परचार सल्तनत के क़ियाम और इशाअत की राह में हाइल हो तो बग़ैर किसी तअम्मुल के इंजील को क़ुर्बान कर देंगे। चुनाँचे ऐसा ही हुआ। सूबे के चीफ़कमिशनर करनैल मैकीसन ने लिख भेजा, “मैं आप को सरकारी तौर पर ख़बर देता हूँ कि सयासी वुजूहात की बिना पर मैं इस बात के ख़िलाफ़हूँ कि कोई मिशनरी दरयाए-सिंध को पार करे।”

इस के चंद हफ़्ते बाद करनैल मैकीसन मारा गया और सर हरबर्ट ऐडवर्डज़चीफ़कमिशनर मुक़र्रर हुआ। उस ने एलान किया, “सरहद में मिशन क़ायम करने में किसी क़िस्म की रुकावट नहीं होगी।” इस एलान की वजह से मिशन तो क़ायम हो गया, लेकिन सिविल और मिल्ट्री अफ़्सरों की ज़हनियत में फ़र्क़न आया। कोलकाता से अह्काम सादिर हो गए जो इस क़िस्म के थे कि क्लार्क लिखता है, “अगर गवर्नमेंट के ख़िलाफ़कोई साज़िश होती तो वह इस से ज़्यादा सख़्त अह्काम सादिर नहीं कर सकती थी!”

दर्राए-टोची के सिरे पर बन्नूँ वोक़ह है। क्लार्क ने उसे एक नुक्कड़का मक़ाम तसव्वुर करके सरहदी मिशन का एक सदर-मक़ाम बना दिया। वहाँ के स्कूल के लिए एक ऐसे उस्ताद की ज़रूरत हुई जो क़ानो-अहादीस से भी ख़ूब वाक़िफ़हो और मसीही उसूल को मुसलमान तुलबा और उन के वालिदैन के सामने पेश करने की अहलियत रखता हो। क्लार्क की मरदुम-शनास नज़र मियाँ एहसानुल्लाह पर पड़ी जो अपने इल्म और जोशे-तबलीग़के सबब से जमात में मुम्ताज़थे। उस ने स्कूल के प्रिंसिपल से उस का ज़िक्र किया, जिस ने सोच-बिचार करके इस तज्वीज़को मंज़ूर कर लिया।

जब उस ने मियाँ एहसानुल्लाह से इस का ज़िक्र किया तो उस ने जवाब दिया, “बेहतर है कि हम इस मुआमले में दुआ करके ख़ुदा की राहनुमाई माँगें।” चुनाँचे दोनों ने घुटने टेके और बड़े दिल-सोज़ी से दुआ की। दुआ के बाद प्रिंसिपल साहब ने कहा, “एहसान, मेरा जी तो नहीं करता कि तुम मेरे स्कूल से जाओ। लेकिन ख़ुदा हमारे बुज़ुर्गों के ज़रीए हम को बुलाता है। क्लार्क साहब चर्च मिशन के सेक्रेटरी हैं, और यह दावत उन की तरफ़ से है। मेरा मश्वरा यह है कि तुम बन्नूँ जा कर वहाँ के पठान मुसलमान लड़कों को नजात-दहिंदे के पास लाने की ख़िदमत सरअन्जाम दो। लेकिन याद रखो कि अगर तुम पूरी कोशिश करने के बावुजूद यह महसूस करो कि तुम वहाँ तबलीग़ का काम और अपने फ़राइज़ कामयाबी से नहीं कर सकते और तुम वहाँ से वापस आना चाहो तो तुम वापस मेरे स्कूल में सीधे चले आना। बटाला तुम्हारा घर है।”

बाबू सिंघा ने भी कहा, “एहसान, सूबाए-सरहद पंजाब नहीं है, और न बन्नूँ बटाला है। तुम जोशीले लड़के हो। मुहतात हो कर रहना। कोई तुम्हारे पेट में छुरा न घोंप दे।”

जब मियाँ एहसानुल्लाह बन्नूँ पहुँचे तो उन्हें मालूम हुआ कि वाक़ई पठानों और पंजाबियों में आसमानो-ज़मीन का फ़र्क़ है। उन्हों ने सुकून से काम शुरू कर दिया। वह स्कूल के बाद अपने मख़्सूस जोश के साथ बर-सरे-बाज़ार इंजील का जाँफ़िज़ा पैग़ाम सुनाया करते थे। जिन अस्हाब ने मेरी किताब “सलीब के अलमबरदार” में फ़ंडर, बिशप फ़्रेंच, राबर्ट क्लार्क और डाक्टर पैनल के हालाते-ज़िंदगी का मुतालआ किया है वह इन दुश्वारियों से ख़ूब वाक़िफ़ हैं जो उस ज़माने में सरहद के इलाक़े में पठानों की तरफ़ से और बर्तानवी हुकूमत के कारकुनों की तरफ़ से मसीही मुबल्लिग़ को पेश आती थीं।

मियाँ साहब को कई दफ़ा ज़दो-कोब किया गया, क़त्ल की धमकियाँ दी गईं। उन पर हमले भी किए गए जिन से वह बाल बाल बच गए।

मुल्लाओं ने अलानिया कह दिया कि चूँकि वह इस्लाम से मुर्तद हो गए हैं वह अज़रूए-शरियत वाजिबुल-क़त्ल हैं। लेकिन मियाँ साहब अपनी धुन के पक्के थे। उन की तबीअत इबतिदा ही से निडर थी। वह इन धमकियों को ख़ातिर में भी न लाते थे। पठानों की तरह वह भी क़द के लम्बे थे। उन का चेहरा सुर्ख़ था, और वह ख़ूबसूरत जिस्म रखते थे, ऐसा जिस्म जो न सिर्फ़ वजीहा, मज़बूत, मुतनासिब और शह-ज़ोर था बल्कि हर क़िस्म की तकालीफ़ को झेलने का आदी हो चुका था। स्कूल के लड़के उन के जाँ-निसार मददगार थे, वह हर वक़्त उन की हिफ़ाज़त करते थे।

मियाँ साहब की उम्र उस वक़्त अट्ठाईस साल के क़रीब थी, और ऐन शबाब का आलम था। मुल्ला बार बार पठानों को उकसा कर फ़साद शुरू करवा देते, अनाजील के हिस्से और किताबें फाड़देते। अक्सर हाथा-पाई की नौबत आ जाती। पुलिस को हर वक़्त मुदाख़िलत करनी पड़ी थी।

बार बार की मुदाख़िलत से पुलिस के मुसलमान अफ़्सर तंग आ गए। उन्हों ने अफ़्सराने-आला को मियाँ साहब के ख़िलाफ़ उकसाना शुरू कर दिया। मियाँ साहब कोई अंग्रेज़ मिशनरी तो थे नहीं कि अफ़्सराने-बाला उन की हिफ़ाज़त का बार अपने कंधों पर उठाते रहते। आख़िर में उन्हों ने मियाँ साहब को साफ़ कह दिया कि तुम बाज़ार की मुनादी छोड़दो।

मियाँ साहब ने जवाब दिया कि मैं अपने ख़ुदा का हुक्म मानूँगा। तुम मुझे इंजील की तबलीग़ से क़ानूनन रोक नहीं सकते।

जब हुक्काम ने देखा कि यह शख़्स अपने इरादे का पक्का है तो उन्हों ने एक हुक्म सादिर करवाया कि इस शख़्स का बन्नूँ में रहना अंग्रेज़ों के लिए ख़तरे का बाइस है। इस क़िस्म का फैसलाए-नादिरी! और सूबा भी सूबा सरहद, जहाँ हर ज़िले का अफ़्सर मुतलुक़-इनान सा हुक्मरान था। न दाद,[1] न फ़रियाद। बस हुक्म सादिर हो गया कि यहाँ से निकल

[1] यानी इन्साफ़

जाओ और अपने पंजाब देस को वापस चले जाओ। यों मियाँ साहब जबरन बन्नूँ से बटाला वापस आ गए।

बैरिंग स्कूल में दुबारा ख़िदमत

जब मियाँ एहसानुल्लाह बन्नूँ से बटाला को वापस आए तो बैरिंग स्कूल में फिर उस्ताद मुक़र्रर हो गए। उन ही अय्याम में उन का क़रीम हम-जमात डाक्टर दीना नाथ प्रेतू दित्ता बर्तानिया से डाकटरी के इमतहानात एज़ाज़ के साथ पास करके वापस लौट आए थे, और उन्हों ने सरकारी नौकरी के लिए दरख़्वास्त दे रखी थी। क्लार्क ने उन से कहा कि जब तक आप को नौकरी नहीं मिलती और स्कूल के प्रिंसिपल कौरफ़ील्ड [1] इंगलैंड से नहीं आते आप बैरिंग स्कूल को चिलाऐं। डाक्टर दित्ता लिखते हैं,

> उन अय्याम में एहसानुल्लाह फिर मेरा दस्ते-रास्त था। वह मेरा भाई था जिस की हम सब इज़्ज़त करते थे। हम पहले की तरह संडे-स्कूल के बाद इतवार के रोज़ बटाला के बाज़ार में इंजील का पैग़ाम सुनाया करते थे। उस ज़माने में उस का तबलीग़ी जोश आगे से भी बढ़चढ़कर था।
>
> उस ज़माने में बैरिंग स्कूल तमाम पंजाब में मश्हूर स्कूल था। प्रिंसिपल कारफ़ील्ड की अहलिया और मिस टकर रज़्ज़ाकाराना तौर पर स्कूल में काम करती थीं। स्कूल में 50 के क़रीब तुलबा थे, और प्रिंसिपल और बाबू सिंघा के इलावा सात उस्ताद थे जिन में से एक उस्ताद बारी बारी शबो-रोज़ लड़कों के साथ रहता था। स्कूल में सुब्ह की दुआ के बाद हेड-मास्टर लड़कों से किताबे-मुक़द्दस के उस हिस्से पर जो उस से पहले रोज़ पढ़ाया जाता था सवाल करता। इस तर्ज़े-अमल से हर साल में दो इंजीलों का मुकम्मल तौर पर मुतालआ किया जाता था। हर उस्ताद स्कूल शुरू होने से पहले आधा घंटा किताबे-मुक़द्दस का मुतालआ करवाता, और

[1] Corfield

> तमाम तुलबा हफ़्ते में तीन आयात ज़बानी हिफ़्ज़ किया करते थे। स्कूल के लड़कों की एक बिशारती कमेटी थी जो शुरू से चली आ रही थी। इस के इलावा बाज़ लड़के ख़ुद इतवार को दुआइया मीटिंग किया करते थे।[1]

हम अंदाज़ा कर सकते हैं कि मियाँ एहसानुल्लाह जैसे पुरजोश उस्ताद की मसीही ज़िंदगी का असर तुलबा और असातिज़ा पर किस क़दर हुआ होगा।

ख़ादिम बनने की ख़ाहिश

उन अय्याम में मियाँ एहसानुल्लाह के चंद दोस्तों ने उन्हें मश्वरा दिया कि आप सरकारी नौकरी इख़्तियार कर लें और स्कूल के काम को छोड़ दें। उन्हों ने कहा कि आजकल एंट्रंस पास आदमी मिलते कहाँ हैं? गवर्नमेंट ऐसे लोगों को जल्दी जल्दी तरक़्क़ी दे रही है। आप का रुतबा आला होगा। तनख़ाह निहायत माक़ूल होगी। पैंशन का भी इंतज़ाम होगा। आप को स्कूल के काम में न तो अच्छी तनख़ाह मिलेगी और न पैंशन। आप की इज़्ज़त भी इतनी नहीं होगी। देखें बाबू सिंघा का लड़का राजू सरकारी नौकरी पर लगा है, और उम्मीद है कि वह किसी दिन एक्स्ट्रा असिसटेंट कमिशनर हो जाएगा।

उन्हों ने जवाब दिया, “मुझे दौलत, इज़्ज़त, जाहो-सर्वत नहीं चाहिए बल्कि हक़ तो यह है कि मैं स्कूल में पढ़ाना भी नहीं चाहता।” जब अह्बाब ने पूछा कि आख़िर आप क्या करना चाहते हैं तो उन्हों ने जवाब दिया, “मैं अपनी ज़िंदगी इंजील की ख़िदमत के लिए वक़्फ़ करना चाहता हूँ।”

एक दोस्त ने कहा, “आप देखते नहीं कि अब वायटब्रेख़्त साहब ने भी चूहड़ों को बपतिस्मा देना शुरू कर दिया है, और अब जमात में सियालकोट, दीनानगर और गुरदासपुर वग़ैरा से चूहड़ों की भर्ती होती

[1] माख़ूज़ अज़ पंजाब मिशन न्यूज़, बाबत 15 अगस्त, 1888

जा रही है? अगर आप ख़ादिमुद-दीन बने तो बस चूहड़ों के पीर हो जाओगे।"

उन्हों ने हँस कर कहा,

> گرچہ بدنامی ست نزدِ عاقلاں ما نمی خواہیم ننگ و نام را
> गो यह अक़्लमंदों के नज़दीक बदनामी है,
> हम लिहाज़ और इज़्ज़त नहीं चाहते।

उन्हों ने कहा, "क्या तुम ने नहीं पढ़ा कि पौलुस रसूल फ़रमाता है,

> मुझ पर अफ़्सोस अगर इस ख़ुश-ख़बरी की मुनादी न करूँ (1 कुरिन्थियों 9:16) ...
> मैं सब कुछ इस अज़ीमतरीन बात के सबब से नुक़्सान समझता हूँ कि मैं अपने ख़ावंद मसीह ईसा को जानता हूँ। इसी की ख़ातिर मुझे तमाम चीज़ों का नुक़्सान पहुँचा है। मैं उन्हें कूड़ा ही समझता हूँ। (फ़िलिप्पियों 3:8)

मेरे नजात-दहिंदे ने मुझे फ़रमाया है,

> क्या फ़ायदा है अगर किसी को पूरी दुनिया हासिल हो जाए मगर वह अपनी जान से महरूम हो जाए या उसे इस का नुक़्सान उठाना पड़े? (लूक़ा 9:25)

मेरे अज़ीज़ बरादर। अगर तुम चाहते हो कि बड़े आदमी बनो तो ख़ावंद के हुक्म को याद रखो,

> तुम जानते हो कि क़ौमों के हुक्मरान अपनी रिआया पर रोब डालते हैं, और उन के बड़े अफ़्सर उन पर अपने इख़्तियार का ग़लत इस्तेमाल करते हैं। लेकिन तुम्हारे दरमियान ऐसा नहीं है। जो तुम में बड़ा होना चाहे वह तुम्हारा ख़ादिम बने और जो तुम में अव्वल होना चाहे

> वह सब का ग़ुलाम बने। क्योंकि इब्ने-आदम भी इस लिए नहीं आया कि ख़िदमत ले बल्कि इस लिए कि ख़िदमत करे और अपनी जान फ़िद्या के तौर पर दे कर बहुतों को छुड़ाए। (मर्क़ुस 10:42-45)

बटाला में तबलीग़ी ख़िदमत का आग़ज़

उन दिनों में वायटब्रेख़्त बटाला में थे। वह निहायत आलिम जर्मन और फ़्रेंच ज़बानों को अच्छी तरह जानते थे और बिशप फ़्रेंच साहब की तरह "हफ़्त-ज़बान" कहलाते थे। जब से मियाँ एहसानुल्लाह नारोवाल से बटाला गए थे वायटब्रेख़्त उन के मेहरबान दोस्त और सलाहकार रहे थे। जब मियाँ साहब बन्नूँ से बटाला वापस आए तो वायटब्रेख़्त की मरदुम-शनास नज़र ने देखा कि जिस तरह सोना आग में ताया जाने से ख़ालिस हो जाता है उसी तरह मियाँ साहब का दीनी जोश बन्नूँ की मुख़ालिफ़त आग की भट्टी से निकल कर बहुत ज़्यादा चमक रहा है। उन्हों ने उन्हें अपने पास बुलाया और उन्हें बड़ेप्यार से अपना रफ़ीक़-कार बनने की दावत दी। उन्हों ने कहा, "मैं आप के लिए हमेशा दुआ करता रहा हूँ कि ख़ुदा आप को इंजील की इशाअत और मुसलमानों की नजात का ज़रीआ बनाए। मैं उस के नाम से आप को दावत देता हूँ कि स्कूल का काम छोड़कर आप अपनी ज़िंदगी को अपने मुसलमान भाइयों की रूहों को बचाने के लिए वक़्फ़करें।" दोनों ने ख़ुदा के हुज़ूर दुआ की। मियाँ साहब ने ख़ुदा का शुक्र किया जिस ने उसे यह इज़्ज़त बख़्शी कि दूसरों को बचाने का ज़रीआ बने।

अब मियाँ साहब ने स्कूल का काम छोड़दिया। वह वायटब्रेख़्त के साथ हर जगह जाते और इंजील जलील का जाँफ़िज़ापैग़ाम बड़ेजोशो-ख़ुरोश के साथ हर छोटे बड़ेको निडर हो कर सुनाते थे। इस सिलसिले में उन्हें अक्सर औक़ात क़ादियान जाने का इत्तफ़ाक़हुआ जहाँ मिरज़ा

ग़ुलाम अहमद ने अपना नया फ़िरक़ा खड़ा कर रखा था। क़ादियान बटाला से बारह मील के फ़ासिले पर वाक़े है। मिरज़ा जी ने मुसलमानों को अपने फंदे में फँसाने का नया ढंग इख़्तियार कर रखा था और ऐसा ज़ाहिर करता था गोया वह मुसलमानों का नुमाइंदा हो कर मसीही दीन की मुख़ालिफ़त करता है। इसी काम के लिए उस ने अपनी अपीलें कीं और यों बेवुक़ूफ़ों के रुपए से अपनी इमारत क़ायम कर ली। फिर उस ने साहबे-इल्हाम होने का दावा मसीहे-मौऊद होने का दावा, मह्दीए-माहूद, कृष्णे-ज़मानी और नबुव्वत-ब-रोज़ी का दावा कर दिया। जहाँ दानिशमंद उस की मज्नूनाना हरकतों पर हँस देते थे वहाँ उस के अंधे मुरीद हर बात पर आमीन कहने को तैयार हो जाते थे। मियाँ एहसानुल्लाह और वायटब्रेख़्त क़ादियान जा कर उस के मसीहाई दावा की बड़े ज़ोर-शोर से तरदीद करते और मुसलमानों और मिरज़ाइयों को हक़ीक़ी मसीह पर ईमान ला कर नजात पाने की दावत देते थे।

मिरज़ाए-क़ादियानी का सब से बड़ा मुख़ालिफ़ मौलवी मुहम्मद हुसैन बटाला में रहता था। वह एक निहायत आलिम शख़्स था, और उस का घर बटाला के क़ौमे-ख़्वाजगान के घरों से मुल्हिक़ था। अब मियाँ एहसानुल्लाह को मुनज्जीए-आलमीन का फ़रमाँ-बरदार हुए नौ साल के क़रीब हो गए थे, और उन की बरादरी के लोगों का ग़मो-ग़ुस्सा बहुत कम हो चुका था। अब वह अपने पुराने रिश्तेदारों से जो बटाला में थे अक्सर मिलने को जाते थे। मुलाक़ात के दौरान वह मसीही ईमान और इस्लाम के उसूल पर उमूमन बात छेड़ते और सब को अलानिया कहते कि अगर तुम अपने गुनाहों से नजात पाना चाहते हो तो सिर्फ़ ख़ुदावंद मसीह तुम को उन के पंजे से छुटकारा बख़्श सकता है।

मौलवी मुहम्मद हुसैन क़रीब ही रहते थे, इस लिए वह उन के पास भी जाते और उन से दीनी गुफ़्तगु करते थे। मौलवी साहब के एतराज़ ज़्यादातर मसलाए-तहरीफ़ से ताल्लुक़ रखते थे। मियाँ साहब को इन एतराज़ात के माक़ूल जवाब देने में कोई दिक़्क़त पेश न आती। तब उन

के रिश्तेदार कहते कि मौलवी मुहम्मद हुसैन अहले-सुन्नत का मौलवी है। वह किसी शिया मौलवी को इस आसानी से जवाब नहीं दे सकते। मियाँ साहब के तमाम रिश्तेदार ताजिर थे, इस लिए वह उन की दुकानों पर जा बैठते और उन से दीनी गुफ़्तगू किया करते थे। उमूमन दुकानों पर जमघटा लग जाता, और वह इस मौक़े से फ़ायदा उठा कर ख़ुदावंद की नजात का पैग़ाम सब को बेड़जोश से सुनाते, ऐसा कि सब सुनने वालों के दिलो-दिमाग़ मुतअस्सिर हुए बग़ैर नहीं रह सकते थे।

वायटब्रेख़्त ने बटाला में एक तबलीग़ी मर्कज़ क़ायम किया था। इस मर्कज़ में शहर के लोग अक्सर आते थे जिन से एहसानुल्लाह दीनी गुफ़्तगू किया करते थे। ए.ऐल.ओ.ई. स्कूल क़रीब था। मिस टकर ने ग़ैर-मसीही लड़कों के लिए यह स्कूल क़ायम किया था ताकि जिस तरह मसीही लड़कों को बैरिंग स्कूल में इंजील की तालीम मिलती है उसी तरह ग़ैर-मसीही लड़के भी मुनज्जीए-जहान के नाम से वाक़िफ़ हो कर उस पर ईमान ला सकें। यहाँ मियाँ साहब अपना ज़्यादा वक़्त ए.ऐल.ओ.ई. स्कूल के तालिब-इल्मों को इंजील सुनाने में सर्फ करते थे, क्योंकि वह तजरिबे से जानते थे कि ऐसा स्कूल किस तरह अपने लड़कों को ख़ुदावंद के क़दमों में ला सकता है। उन की अनथक कोशिशों का नतीजा यह हुआ कि बटाला में तालिबाने-हक़्क़ की एक बड़ी जमात पैदा हो गई जो इंजीलो-क़ुरान की तालीमात का मुवाज़ना करने लगी।

शादी

अब मियाँ एहसानुल्लाह माशा-अल्लाह ऐन-जवानी के आलम में थे। उन का क़द लम्बा और वजीहा, सीना कुशादा और बदन निहायत मुतनासिब और ख़ुबसूरत था। उन का चेहरा शगुफ़्ता और सुर्ख़रहता था, और जिस्म उन की शोहरत की तरह बेदाग़ था। उन के दोस्तों ने उन्हें शादी का मश्वरा दिया। उस ज़माने में मिस टकर के साथ एक ख़ातून मिस

लूईज़ानोआ [1] रहती थीं जो अच्छे ख़ानदान की थीं। उन का बाप राठोर राजपूतों में से ईमान लाए थे और शिमला में रेलवे में काम करते थे। उन की बेटी लूईज़ाअमृतसर के एलेक्ज़ंड्रा स्कूल [2] में पढ़ती थीं। चूँकि बाबू सिंघा की बेटी रोज़ीउन की हम-जमात थीं इस लिए वह अक्सर बाबू सिंघा के घर में अपनी सहेली के साथ आया जाया करती थीं। एंट्रंस पास करके वह बटाला में आ गई थीं। वह ख़ूबसूरत होने के इलावा दीनी जोश से भरी थीं। एंट्रंस पास थीं और कढ़ाई वग़ैरा में माहिर थीं।

जब डाक्टर दित्ता डाकटरी की डिग्री हासिल करके बटाला आए तो उन्हों ने अपने दोस्त को कहा, "अगर तुम इस दीनदार ख़ातून से शादी कर लो तो तुम दोनों की ख़ूब अच्छी तरह निभेगी। वह दीनदार है, तुम्हारी तरह जोशीली है, ख़ुदा के कलाम की तिलावत और दुआ-इबादत में हर वक़्त लगी रहती है। मिस टकर के साथ शहर की औरतों के पास जा कर ख़ुदा की नजात की ख़ुश-ख़बरी सुनाती है। तुम भी अपनी ज़िंदगी इस काम के लिए वक़्फ़ कर रहे हो। तुम इस तज्वीज़ पर ग़ौर करो।"

डाक्टर दित्ता ने मिस टकर से भी कहा, "एहसान को आप अच्छी तरह से जानती हैं। उस की ज़िंदगी, उस के ईमान, उस के जोश और उस के बेदाग़ ख़यालात और जज़्बात से आप ख़ूब वाक़िफ़ हैं। अगर मिस नोआ की शादी एहसान से हो जाए तो यह जोड़ निहायत मुबारक होगा।" यह बात छेड़कर वह ख़ुद सिविल सर्जन हो कर रोहतक चले गए। लेकिन जो ख़याल उन्हों ने पेश किया वह मियाँ साहब को, मिस टकर और दीगर परदेसी ख़ादिमुद-दीन को और बाबू सिंघा को पसंद आया। तो भी किसी ने पहल न की, क्योंकि मिस नोआ का रुज्हान शादी की तरफ़ न था। उन्हें बस एक ही धुन थी कि किस तरह मसीही और ग़ैर-मसीही औरतों को नजात का पैग़ाम सुनाएँ। उन का वक़्त कलामे-इलाही के मुतालए, दुआ, गीत गाने, बाजा बजाने और औरतों को इंजील का पैग़ाम सुनाने

[1] Louisa Noah
[2] Alexandra School

में सर्फ होता था। दीगर औक़ात में वह कढ़ाई, मुसव्वरी, नक्काशी वग़ैरा में मशग़ूल रहतीं।

जब इस तज्वीज़ को पेश किए एक दो साल गुज़र गए तो डाक्टर दित्ता ने फिर इस सिलसिले को शुरू किया। मिस टकर ने लड़की से बात की तो उस ने कानों पर हाथ रखे और कहा कि वह किसी से शादी नहीं करेगी। मिस टकर और दीगर ख़ातीन ने उसे समझाया, लेकिन उस ने एक की न मानी। गो उन ख़ातीन के इसरार पर उस ने यह कहा कि अगर ख़ुदा मेरी हिदायत करेगा तो मैं शादी कर लूँगी। इस पर मियाँ एहसानुल्लाह और उन के ख़ैर-ख़्वाहों ने दुआएँ कीं हत्ता कि मिस नोआ ने शादी करने पर अपनी रज़ामंदी ज़ाहिर कर दी।

कुफ़्र टूटा ख़ुदा-ख़ुदा करके

1888 में मियाँ एहसानुल्लाह की मंगनी मिस लूईज़ा नोआ के साथ हो गई, और पाँच माह के बाद यानी उसी साल दोनों का निकाह शिमला में हो गया। घोष साहब लिखते हैं,

> जब हम लड़कों ने उन्हें मुबारकबाद कहा तो उन्हों ने कहा, "मैं एक फ़रिश्ता-सीरत ख़ातून चाहता था, और वह मुझे मिल गई है। मेरे साथ मिल कर ख़ुदा की हम्दो-सना करो। उस के पाक नाम का शुक्र हो।"

मियाँ साहब की उम्र उस वक़्त तीस साल की थी। और उन की रफ़ीक़ाए-हयात की उम्र इक्कीस साल की थी।

3 नारोवाल को वापसी

नारोवाल आने की दावत

1889 में वायटब्रेख़्त नारोवाल गए। उन्हों ने बेटमन से मियाँ एहसानुल्लाह के जोशे-ईमान का ज़िक्र किया। दोनों ने घुटने टेक कर ख़ुदा का शुक्र किया जिस ने ऐसे शख़्स को न सिर्फ़ मसीह पर ईमान लाने की तौफ़ीक़ अता की थी बल्कि जमात की ख़िदमत के लिए भी बुलाया था। इत्तफ़ाक़ से उन दिनों बेटमन की अहलिया इंगलैंड में बीमार थी, और वह मौसमे-गर्मा में उस के पास जाना चाहता था। चुनाँचे उस ने वायटब्रेख़्त से दरख़्वास्त की कि एहसान को मुझे दे दो ताकि वह मेरी ग़ैर-हाज़िरी में यहाँ की जमात और यहाँ के तबलीग़ी काम को सँभाल ले और मैं इत्मीनान से इंगलैंड जा सकूँ। वायटब्रेख़्त ने जवाब दिया कि अगर एहसान आना चाहे तो मैं नारोवाल की ख़ातिर उसे ख़ुशी से दे दूँगा।

जब मियाँ साहब को यह ख़बर मिली तो उन्हों ने ख़ुशी से अपना तबादला मंज़ूर कर लिया। अब ख़ुदा ने उन्हें न सिर्फ़ अपने रूहानी बाप और नारोवाल की जमात की ख़िदमत करने का मौक़ा अता किया बल्कि अपने रिश्तेदारों, दोस्तों और अज़ीज़ो-अक़ारिब को मुस्तक़िल तौर पर इंजील जलील का रूह-अफ़ज़ा पैग़ाम सुनाने का भी मौक़ा बख़्शा।

नारोवाल में ख़िदमत का आग़ाज़

मियाँ एहसानुल्लाह 1889 में अपनी अहलिया मुह्तरमा के साथ नारोवाल वापस आ गए। अपने अज़ीज़ वतन में वापस आ कर उन्हें जो ख़ुशी नसीब हुई उस का हम अंदाज़ा कर सकते हैं।

नारोवाल के दरो-दीवार से, उस की गलियों से, उस के सिक्ख, हिंदू, मुसलमान बाशिंदों से, लड़कपन के हम-जमातों और साथियों से, क़ौमे-ख़्वाजगान के छोटों-बड़ों से मिल कर उन्हें क़ुदरती तौर पर ख़ुशी हुई। लेकिन सब से ज़्यादा ख़ुशी उन्हें अपने बाप और खासकर अपनी माँ से मुलाक़ात करके हुई। उन का पहलौठा बेटा ग्यारह बरस की जुदाई के बाद उन से फिर मिला। पुराने ज़ख़्म मुंदमिल हो चुके थे। ज़मानाए-माज़ी की बातें भूल-बसर गईं और अब माँ, बाप, भाइयों, बहनों और रिश्तेदारों ने उन्हें वापस क़बूल कर लिया।

मियाँ साहब को “झंडा” में रहने को एक मकान दिया गया जो कुएँ के पीछे होता था और जिस के पिछवाड़े का दरवाज़ा उन अय्याम में महंतों के घर की गली की तरफ़ खुलता था। इस दरवाज़े में से उन की माँ, बहनें और क़ौमे-ख़्वाजगान की औरतें उन के घर आती जाती थीं, क्योंकि इस रास्ते से बाज़ार में से हो कर जाना नहीं पड़ता था और वह मुहल्लाए-ख़्वाजगान से सीधा महंत के घर के सामने की गली में चली जातीं जिस के आख़िर में यह दरवाज़ा होता था जो दस्तक देने पर खोला जाता था।

मियाँ साहब के माँ-बाप अपनी नई-नवेली ख़ूब-रू बहू को देख कर ख़ुश हुए, और जब उस ने उन्हें कहा कि मैं आप की वैसी ही ताबेदार बेटी हूँ जैसी रहमत अली की बीवी है तो उन की ख़ुशी की इंतहा न रही। सब एक दूसरे की मुलाक़ात से ख़ुश हुए और ख़ुदा का शुक्र बजा लाए जिस ने बरसों की जुदाई के बाद फिर उन्हें मिलाया था।

उसी साल ख़ुदा ने मियाँ साहब को एक लड़का बख़्शा। ख़ानदान भर में यह पहला लड़का था, और मियाँ साहब की माँ ख़ुशी के मारे फूले न समाती थीं। वह अपने पोते को देख कर बाग़बाग़ हो जातीं। जब बेटमन नवंबर में इंगलैंड से वापस लौटे तो मियाँ साहब अपने पहलौठे बेटे को उन के पास ले गए। बेटमन साहब लिखते हैं,

> एहसान कपड़ेमें लिपटा एक पार्सल जैसा मेरे पास ले आया और कहने लगा, “यह देखें, आप का पोता। आप उस का नाम रखें और उसे बपतिस्मा दें।” मेरे मुँह से बेइख़्तियार निकला, “हाँ, मैं इस को बपतिस्मा दूँगा और इस का नाम ग़ुर्बान रखूँगा।” मुझे इस में रत्ती भर शक नहीं कि गो ग़ुर्बान जो एहसान का रिश्ते में भाई था बग़ैर बपतिस्मा पाए मर गया था, ताहम वह मसीह पर ज़िंदा ईमान रखता था और क़ियामत के रोज़ ईमानदारों के साथ उठेगा। चुनाँचे इस नौ ज़ायदा बेटे का नाम ग़ुर्बान रखा गया।

नारोवाल में मुनादी की राहनुमाई

1890 के मौसमे-गर्मा में बेटमन को अपनी अहलिया की बीमारी के बाइस फिर इंगलैंड जाना पड़ा। मियाँ एहसानुल्लाह ने जमात के काम को इस ख़ूबी-उस्लूबी के साथ चलाया कि सब अश-अश करते रह गए। मियाँ साहब लड़कों के क्रिस्चन ट्रेनिंग स्कूल के सुपरिंटेंडेंट थे। बोर्डिंग हाउस के ज़िम्मेदार भी वही थे। उन अय्याम में उस में दस लड़के दाख़िल थे। उन्हों ने इंजील के मुबल्लिग़ीन के लिए एक ट्रेनिंग क्लास भी खोल रखी थी जिस की बड़ी जमात में 17 और छोटी जमात में 15 पढ़ते थे। इस के इलावा नारोवाल मिशन के तमाम मुनादों की देख-भाल के वह ज़िम्मेदार थे। नारोवाल के बाज़ारों में मुनादी करना वह अपना अव्वलीन फ़र्ज़ समझते थे। वह अपने रिश्तेदारों की दुकानों पर रोज़ाना जा कर हर ख़ास-ो-आम को मुनज्जीए-आलमीन की दावत सुनाया करते थे। मसीही इबादतों में वह इस जोश से काम लेते थे कि सुनने वाले मुतअस्सिर हो जाते थे। हर जगह कलामुल्लाह की तिलावत शौक़ से की जाती और ख़ुदावंद मसीह के नाम का चर्चा हर शख़्स की ज़बान पर था। बेटमन लिखते हैं,

> एहसान को ख़ुदा ने ऐसा फ़ज़्ल बख़्शा है कि आज वह मेरे मिम्बर पर से वाज़ करता है। उस ने तमाम काम को अहसन तौर पर सँभाल लिया है।

> उस की वजह से मैं यहाँ इंगलैंड में इत्मीनान से आ सका हूँ और अपनी रुख़्सतों को आराम से गुज़ार रहा हूँ।

एक और रिपोर्ट में लिखा है,

> मियाँ एहसानुल्लाह ने मिस्टर बेटमन की ग़ैर-हाज़िरी में मुनादों के काम की निहायत आला निगरानी की है, और उन की ख़िदमात निहायत गिराँक़द्र हैं। [1]

पूरे पंजाब में ख़िदमत का आग़ाज़

उन्नीसवीं सदी के आख़िरी दस साल मियाँ एहसानुल्लाह की ज़िंदगी और पंजाब की जमातों की ज़िंदगी के अहमतरीन साल हैं। दोनों की ज़िंदगी की तरक़्क़ी एक दूसरे से ऐसी वाबस्ता है कि हम मियाँ साहब की ज़िंदगी को जमातों के बग़ैर और जमातों की ज़िंदगी को मियाँ साहब की ज़िंदगी के बग़ैर समझ नहीं सकते। कहने को तो मियाँ साहब की रिहाइश नारोवाल में थी, लेकिन दर-हक़ीक़त वह हमेशा सफ़र में रहते थे। तमाम पंजाब, सूबा सरहद, यू.पी. बल्कि शिमाली हिंद की जमातों की नज़रें उन की जानिब उठती थीं। खासकर वह पंजाब की जमातों के क़ायदे-आज़म थे जिन के दिलों को उन्हों ने इस क़दर मोह लिया था कि वह उन के बेताज बादशाह थे। पौलुस रसूल की तरह उन्हों ने उस तौफ़ीक़ के मुताबिक़ जो रूहा ने उन्हें बख़्शी पंजाब की जमातों की बुनियाद दानिशमंद ठेकेदार की तरह रखी जिस पर अब दूसरे इमारत उठाते हैं।

> लेकिन हर एक ध्यान रखे कि वह बुनियाद पर इमारत किस तरह बना रहा है। क्योंकि बुनियाद रखी जा चुकी है और वह है ईसा मसीह। इस के इलावा कोई भी मज़ीद

[1] 1890 की सी.ऐम.ऐस. सालाना रिपोर्ट

> कोई बुनियाद नहीं रख सकता। जो भी इस बुनियाद पर कुछ तामीर करे वह मुख़्तलिफ़ मवाद तो इस्तेमाल कर सकता है, मसलन सोना, चाँदी, क़ीमती पत्थर, लकड़ी, सूखी घास या भूसा, लेकिन आख़िर में हर एक का काम ज़ाहिर हो जाएगा। क़ियामत के दिन कुछ पोशीदा नहीं रहेगा बल्कि आग सब कुछ ज़ाहिर कर देगी। वह साबित कर देगी कि हर किसी ने कैसा काम किया है। अगर उस का तामीरी काम न जला जो उस ने इस बुनियाद पर किया तो उसे अज्र मिलेगा। अगर उस का काम जल गया तो उसे नुक़्सान पहुँचेगा। ख़ुद तो वह बच जाएगा मगर जलते जलते। (1 कुरिन्थियों 3:10-15)

इस से पेशतर कि हम यह बताएँ कि मियाँ साहब ने पंजाब की जमातों की बुनियाद किस तरह रखी यह मुनासिब होगा कि हम नाज़रीन को पंजाब की जमातों का हाल सुनाएँ जो आज 70, 80 साल पहले था ताकि नाज़रीन पसमंज़र से वाक़िफ़ हो जाएँ।

4 अछूतों की तबदीली

तहरीक की जड़ें

जब ऐंड्रू गोर्डन 1855 में सियालकोट पहुँचा तो उस ने पहुँचने के दो साल बाद यानी अय्यामे-फ़सादाद के बाद नीच ज़ात के लोगों में काम शुरू कर दिया। चूहड़ ज़ात के लोग ईसाई होने लगे। 1863 में गुजराँवाला यू.पी. मिशन का एक और सदर-मक़ाम हो गया। 1864 में गोर्डन ने जरायमपेशा अक़्वाम के लोगों को बपतिस्मा दिया, जबकि 1866 में ज़फ़रवाल के मेघ ईसाई होने शुरू हो गए। 1876 में गोर्डन गुरदासपुर तबदील हो गया, और 1884 में दीनानगर के चूहड़े अफ़ीज़ुल-हक़ के ज़रीए ईसाई हो गए। 1885 में बटाह के चर्च मिशन के बंदे वायटब्रेख़्त ने फ़तहगढ़चूड़ियाँ के चौदह चूहड़ों को बपतिस्मा दिया।

इन परदेसी मर्दों और औरतों ने अपनी क़ीमती उम्रें इंजील जलील की ख़िदमत के लिए वक़्फ़ कर दीं। उन्हों ने अपनी लियाक़त, दौलत, इल्मी क़ाबिलियत और रूहानी ज़िंदगियों को अपने नजात-दहिंदे के क़दमों पर निछावर कर दिया। उन्हों ने सूबा सरहद, पंजाब, कश्मीर और सिंध में जा-ब-जा अपने सदर-मक़ाम बनाए। वह जहाँ गए उन्हों ने स्कूल, कॉलेज, इबतिदाई दर्सगाहें, दस्तकारी के कारख़ाने, बेवा-ख़ाने, यतीम-ख़ाने, हस्पताल, शिफ़ा-ख़ाने और छापा-ख़ाने वग़ैरा जगह जगह क़ायम कर दिए। उन के सदर-मक़ामों से इंजील जलील की इशाअत चारों तरफ़ शहरों, क़स्बों और गाँव में हुई। उन की मुसलसल और अनथक कोशिशें फलदार हुईं। और उन के तालीमी इदारों के तुलबा इंजील के जाँफ़िज़ा पैग़ाम से मुतअस्सिर हो कर मसीही हो गए और कई एक आज़ाद-ख़याल शख़्स अपने आबाई रुसूम, अक़ाइदो-मज़हब से मुतनफ़्फ़िर हो कर मसीही ईमान के ताबे हो गया। शिमाली हिंद का कोई हिस्सा

ऐसा न रहा जिस के बेड़ेशहरों और क़स्बों से मुख़्तलिफ़तबक़ेके लोग ख़ुदावंद मसीह के क़दमों में न आए हों। उन में सिक्ख थे, पठान थे, सय्यिद थे, शेख़थे, ब्रहमन थे, क्षत्री थे, चूहड़ेथे। ग़रज़हर जात, हर मज़हब, हर क़ौम और क़बीले के लोग मसीह की जमात में शामिल हो गए। जहाँ उन में बड़ेबड़ेज़मींदार और साहबे-दौलतो-अक़्ल थे वहाँ गाँव के औसत दर्जे के हिंदू और मुसलमान क़स्बों के सुन्नी, शिया, सूफ़ी, सिक्ख, जाट और अछूत ज़ात के लोग भी थे। कई एक मशहूर अस्हाब 80 साल हुए जमात में शामिल हो चुके थे मसलन गोलक नाथ, उपल, रुला राम, वारिसुद-दीन, रहमत मसीह वायज़एहसानुल्लाह, मौलवी इमादुद-दीन, हमीदुद-दीन सालिक, इमामुद-दीन शहबाज़दाऊद सिंह, खड्ग सिंह, मियाँ सादिक़अह्मद शाह गीलानी, नील कंठ गोरे शास्त्री, इमाम शाह, रजब अली, अली बख़्श, याक़ूब मसीह, मुलायमुद-दीन, डाक्टर हैनरी मार्टिन क्लार्क, अब्दुल्लाह आथम, मौलवी सफ़दर अली, प्रोफ़ैसर राम चंद्र, लाला चंदू लाल, बाबू रुलिया राम, लाला माया दास, डाक्टर मियाँ बख़्श, फ़ज़्ल, जान अली, शेर सिंह बाजवा, महाराजा दलीप सिंह, राजा सिर हरनाम सिंह, मज़्बूत ताजपुर शाम सिंह जैसे अस्हाब 80 साल हुए जमातों में शामिल हो चुके थे। अब अछूत ज़ात के लोग जौक़दर-जौक़जमातों में शामिल हो रहे थे।

अछूत लोगों को तालीम देने का चैलेंज

आम तौर पर यह कहना दुरुस्त होगा कि उन्नीसवीं सदी में ए.पी. मिशन और चर्च मिशन के मुबल्लिग़ीन ने तबलीग़का काम अहले-इस्लाम और अहले-हुनूद की ऊँची ज़ातों में मह्दूद रखा। उन के मुक़ाबले में यू.पी. मिशन और सॉल्वेशन आर्मी ने अछूत ज़ात के लोगों में इस जोश से काम किया कि सियालकोट के ज़िले में निचले तबक़ेसे कई हज़ार लोग मसीह की जमात में शामिल हो गए। इस में खासकर यू.पी. मिशन के

मुबल्लिग़ीन सब्क़ा ले गए थे। उन में से बाज़ ऐसे जोशीले थे कि वह चर्च मिशन के शहरों, क़स्बों और गाँव में भी जा कर नीच ज़ात के लोगों को बपतिस्मे दे आए। नतीजे में दोनों मिशनों के दरमियान अनबन पैदा हो गई। 1889 में बेटमन ने ख़ूब शिकायत की तो यू.पी. वालों ने आख़िर में उस के इलोक़े को छोड़ दिया। वह लिखता है,

> उन्हों ने अच्छा फ़ैसला किया है। लेकिन इस फ़ैसले ने तक़रीबन दो हज़ार रूहों का बोझ मेरे कमज़ोर कंधों पर लाद दिया है। क्या में इन दो हज़ार भाइयों को शख़्सी तौर पर इतना भी जान सकूँगा कि दुबारा उन के चेहरों को पहचान सकूँ?

जब बेटमन और इस के साथी ने इन में काम करना शुरू किया तो उन्हें बड़ी मायूसी हुई। 1892 में वह सालाना रिपोर्ट में लिखता है,

> हम ने मज्बूर हो कर उन में से 55 लोगों को ख़ारिज कर दिया है, क्योंकि जब से हम ने उन्हें यू.पी. मिशन से लिया है वह न तो इबादतों में आते हैं और न बुतपरस्ती को तर्क करते हैं। वह मसीही दीन को समझने की ज़हमत भी गवारा नहीं करते। हम ने उन से तहम्मुल, सब्र और बुर्दबारी से काम लिया है और हर गाँव में उन की तालीम का बंदो-बस्त भी किया है। उन्हें फ़र्द-फ़र्द बड़ समझाया है, लेकिन वह इस तरफ़ रुख़ भी नहीं करते।
>
> लाचार हो कर हम ने उन्हें चार सालों के बाद साफ़ कह दिया है कि जब तुम मसीह से कोई वास्ता रखना नहीं चाहते तो तुम को मसीह की जमात में रहने का कोई हक़ नहीं है। जब हम ने उन्हें क़बूल किया तो हमें मालूम हुआ कि उन में से पाँच फ़ीसद भी ईसाई तालीम के इबतिदाई उसूलों से वाक़िफ़ न थे। जब हम उन से पूछते हैं कि तुम मसीही क्यों हुए थे तो वह जवाब देते हैं कि हम "मुकती के वास्ते" ईसाई हुए थे। जब उन से पूछा जाता है कि मुकती का क्या मतलब है तो उन से कोई जवाब बन नहीं आता। गाँव के गाँव ऐसे हैं जिन में इस क़िस्म के मसीही रहते हैं जिन्हों ने कभी इबादत में मसीह के आगे घुटने भी नहीं टेके बल्कि वह

किताबे-मुक़द्दस के नाम से भी आश्ना नहीं। जब हम ने उन्हें लिया और उन के गाँव में जा कर कहने लगे कि आओ इबादत के लिए जमा हो तो वह आग-बगूले हो गए गोया हम उन पर कोई नया बोझ लाद रहे हैं। पहले पहले हम ने उन्हें तालीम देने के लिए उन आदमियों से मदद ली जो यू.पी. मिशन से इस काम के लिए तनख़्वाह पाते थे। लेकिन हमें मज्बूरन हर तनख़्वाहदार मुलाज़िम को अलाहिदा करना पड़ा है, क्योंकि वह ख़ुद मसीही दीन के उसूलों से नावाक़िफ़ थे और मिशन वालों की रज़ामंदी और अपनी बड़ाई की ख़ातिर यह काम करते थे।

मुझे पक्का यक़ीन है कि ऐसे लोगों को जो मसीही दीन की अलिफ़-बे से नावाक़िफ़ हों बपतिस्मा देना किसी हालत में भी जायज़ नहीं। यह न सिर्फ़ उन के हक़ में बुरा है बल्कि उन के इर्दगिर्द के रहने वाले बुतपरस्त हिंदुओं, सिक्खों और मुसलमानों के लिए भी ठोकर का बाइस है। इस से हज़ार दर्जा यह बेहतर होता कि ऐसे अश्ख़ास को बपतिस्मा देने की बजाए हम अपने वक़्त और कोशिशों को दीगर उमूर में सर्फ़ करते। मुम्किन है कि कोई एतराज़ करे कि मुझे सिर्फ़ चार सालों का तजरिबा है। लेकिन हक़ीक़त तो यह है कि मुझे ऐसे लोगों का चार साल से नहीं बल्कि बीस सालों का तजरिबा है जो हर साल बढ़ाया जा रहा है। यू.पी. वालों ने उन में चौदह साल पहले काम किया था। और अब चार साल के बाद जब मैं ने उस के एक सरबराह से ईसाई दीन के बारे में पूछा तो उस ने जवाब दिया, “हमारा ईमान क़ायम नहीं है।” जब मैं ने पूछा कि तुम्हारे ईमान को किस चीज़ ने डगमगा दिया है तो उस ने जवाब दिया, “मैं कभी ईमान ही नहीं लाया था। मुझे माया साहब ने डाक्टर मार्टिन के सुपुर्द में धकेल दिया था। मेरे साथ चार और आदमी धकेल दिए गए थे और बस।”

मैं ने पूछा, “क्या तुम्हारा बपतिस्मा नहीं हुआ था?”

उस ने जवाब दिया, “हाँ। मुझ पर और दो और आदमियों पर पानी छिड़का गया था, लेकिन बक़िया दो पर एक क़तरा भी न पड़ा था।”

यह किसी एक आदमी या जगह का हाल नहीं बल्कि हर शख़्स और हर जगह के बारे में मेरी यही शिकायत है।

निचले तबक़े से जो लोग मसीह की जमात में शामिल हुए थे उन की माली, इक़्तिसादी, तालीमी और समाजी हालत यों थी कि इस का न कहना बेहतर है। कहने को तो वह काश्तकार थे, लेकिन ज़मीन के एक चप्पे के मालिक भी न थे। वह गाँव के किसानों और काश्त-कारों के दर-हक़ीक़त ग़ुलाम थे जिन की निगाहें हर वक़्त उन के मालिकों के इशारे की तरफ़ लगी रहती थीं। तमाम साल की दिन रात की मेहनत के बाद उन की कमाई मुश्किल से फ़ी शख़्स बीस-पच्चीस रुपए सालाना होती थी। नतीजे में वह हमेशा मक़रूज़ रहते थे, और उन की साल भर की कमाई असल और सूद के अदा करने में ही ख़त्म हो जाती थी। उन के लड़के-लड़कियाँ उन की दिन भर की मेहनतो-मशक़्क़त में मदद देते थे जिस वजह से वह स्कूलों में जो मिशन ने उन के लिए जा-ब-जा खोल रखे थे नहीं जा सकते थे। क्या अजब कि उन में मुश्किल से कोई लिखा-पढ़ा मिलता था। गाँव का हर छोटा बड़ा उन से बेगार का काम लेता था। जब पुलिस थाने का कोई आदमी या अदालत का चपड़ासी गाँव में आता तो उन बेचारों की आफ़त आ जाती थी। इन उमूर से हम उन की समाजी हालत का अंदाज़ा कर सकते हैं। उमूमन वह मसीह की जमात में इसी मक़सद के तहत शामिल होते थे कि बेगार से छुटकारा पाएँ और गाँव के जाटों, पुलिस के ज़ुलम और नंबरदार या ज़ैलदार के नाजायज़ दबाव से परदेसी मुबल्लिग़ीन के रोब से काम ले कर रिहाई पा सकें। वह बालाशाह को सिज्दा करते थे। हिंदुओं के गाँव में हिंदुओं की तरह और मुसलमानों के गाँव में मुसलमानों की तरह रहते थे। तवह्हुम-परस्ती, तावीज़जादू, टोटका वग़ैरा उन की मज़हबी और समाजी रुसूम के जुज़्व थे। लिहाज़ा जब बेटमन और उस के साथी उन्हें मसीही तरीक़ इबादत की जानिब दावत देते और मसीही दीन के उसूल की तलक़ीन

पर ज़ोर देते तो वह फ़ौरती तौर पर इन बातों को नाक़ाबिले-बरदाश्त बोझ समझते थे।

जब वायटब्रेख़्त ने 1885 में फ़तहगढ़ चूड़ियाँ के चौदह चूहड़ों को पहले-पहल बपतिस्मा दिया तो सब पर ज़ाहिर हुआ कि मसीह की जमात को सिर्फ़ ऊँची ज़ातों तक महदूद नहीं रखा जा सकता। सिर्फ़ साहबे-दौलत को ही बपतिस्मा देना या सिर्फ़ साहबे-इल्मो-अक़्ल को ही मसीही ईमान में शामिल करना एक ऐसी नाजायज़ बात है जो मसीही ईमान की आलमगीरी के मुनाफ़ी है। निचले तबक़े के लोगों को नजात से महरूम रखना बदतर-अज़-गुनाह है, क्योंकि यह तर्ज़े-अमल मसीही ईमान के हक़ीक़ी मफ़हूम के बर-अक्स है। 1886 में नारोवाल में एक मीटिंग मुनअक़िद हुई जिस में एलान किया गया कि अगर कोई जमात में शामिल होना चाहे तो उस की ज़ात का लिहाज़ न किया जाए। दूसरे लोगों की तरह चूहड़ों को भी बाक़ायदा तालीम के बाद बपतिस्मा दिया जाए। इस बात को हमेशा पेशे-नज़र रखा जाए कि वह मुर्दार खाने और हराम ख़ुराक से परहेज़ करें और अपने लड़कों-लड़कियों के ब्याह ग़ैर-मसीही चूहड़ों से न करें।

5 दबे हुओं की तरबियत

हम ने गुज़श्ता बाब में पंजाब की जमात की हालत का ज़िक्र किया ताकि उन अक़्दाम को समझ सकें जो एहसानुल्लाह ने इन मुशकिलात को हल करने और जमातों को हक़ीक़ी मसीही मेयार पर चलाने के लिए इख़्तियार किए। जब हम इस अम्र को पेशे-नज़र रखते हैं कि उन जमातों के शुरका ख़ुद अपनी इक़्तिसादी, तालीमी, ज़हनी और रूहानी हालत को सुधारने का ख़्याल ही नहीं रखते थे तो हम उन मुसलसल और अनथक कोशिशों का अंदाज़ा कर सकते हैं जो एहसानुल्लाह को उन के एहसास को बेदार करने और उन की हालत को सुधारने के लिए लगातार करनी पड़ीं। किसी ने ख़ूब कहा है,

> ख़ुदा ने आज तक इस क़ौम की हालत नहीं बदली
> न हो जिस को ख़्याल आप अपनी हालत के बदलने का।

उस्तादों की तरबियत

पहला क़दम जो मियाँ साहब ने उठाया वह जमातों के उस्तादों की तालीमो-तरबियत का था। उन जमातों के उस्ताद ख़ुद इंजील जलील की तालीम से नावाक़िफ़ और मुश्किल से उर्दू और गुरमुखी हुरूफ़ पढ़सकते थे। चुनाँचे उन के लिए दो मदरिसे खोले गए। नारोवाल में उम्र-रसीदा उस्तादों को बेटमन तालीम देने लगे जबकि एहसानुल्लाह ग्यारह मील परे रइय्या में जवान उस्तादों को पढ़ाने लगे। यह उस्ताद ख़ुदावंद मसीह की ज़िंदगी और इंजीली वाक़िआत से सिर्फ़ थोड़ी-बहुत इल्म रखते थे।

मसलन एक “उस्ताद” ने जब यह सवाल किया, “जनाब ईसा मसीह, पतरस और पुनतियुस पीलातुस में क्या फ़र्क़ है?” तो जमात के बाज़

“उस्ताद” हँसने लगे। यह देख कर सवाल करने वाले ने तैश में आ कर कहा, “तुम मुझ पर हँसते हो। तुम में से किस को इंजील पढ़नी आती है? मैं ने अक़ीदे को हिफ़्ज़ कर लिया है, और इस में “ईसा मसीह” और “पुंतियुस पीलातुस” का ज़िक्र है जबकि मुक़द्दस की इंजील के शुरू में पतरस का ज़िक्र है। इसी लिए मैं ने यह सवाल किया। सवाल करने में क्या हर्ज है?”

उन अय्याम में रइय्या तहसील का मक़्दम था गो वह एक गाँव था। वहाँ एहसानुल्लाह ने जवानों को अपने हाथ में लिया। उन्हें उर्दू और गुरमुखी हुरूफ़ पढ़ने शुरू किए और अनाजील की आयात, पहाड़ी वाज़ पंजाबी गीत, दुआए-आम की सुब्हो-शाम की दुआएँ और सवालो-जवाब ज़बानी हिफ़्ज़ कराए। इस जमात में बारह “उस्ताद” थे जो दिन रात चौबीस घंटे उन की सोह्बत से फ़ैज़याब होते थे।

यह सालाना जमात मौसमे-बहार में और मौसमे-गर्मा में तीन माह के लिए जमा होती थी। दिन दुआ और इबादत से शुरू होता। फिर मियाँ साहब तालीम देते जो दोपहर के बाद भी जारी रहती। शाम के क़रीब हर “उस्ताद” को इर्दगिर्द के गाँव में भेजा जाता ताकि वह गाँव की जमातों को वह तालीम दें जो उन्हों ने ख़ुद दिन के दौरान सीखी थी। पहले साल इन जवानों ने तौरात की दूसरी किताब ख़ुरूज के पहले बीस बाब और लूक़ की इंजील के पहले दस बाब सीख लिए और गीत, ज़बूर, दीनी सवालो-जवाब, ख़ास आयात और पंजाबी दुआए-आम की किताब की दुआएँ हिफ़्ज़ कर लीं। उम्र-रसीदा “उस्ताद” आठ थे जिन को नारोवाल में मुक़द्दस की इंजील, पंजाबी दुआए-आम की किताब, मसीही मुसाफ़िर और हिंदूमत और इस्लाम के बुनियादी उसूल की निस्बत तालीम दी गई। दोनों जोश से पुर और दिलो-जान से शबो-रोज़ ख़ुदावंद का काम साल भर करते रहे।

उन की नेक कोशिशों ने पहले साल ही जमातों की ज़िंदगी को तबदील करना शुरू कर दिया। चुनाँचे बेटमन लिखते हैं,

> हमारा काम इन दिनों ज़्यादातर अछूत ज़ात के मसीहियों में रहा है जो तादाद में तेरह सौ के क़रीब हैं और नारोवाल के इर्दगिर्द के गाँव में बस्ते हैं। सियालकोट की यू.पी. मिशन ने उन को बग़ैर किसी तालीम के बपतिस्मा दिया, लेकिन वह मज़हब की तरफ़ रुजू ही नहीं करते, और उन की ज़िंदगियाँ ग़ैर-मसीही चूहड़ों से किसी हालत में भी बेहतर नहीं हैं। उन के मसीही होने से ख़ुदा की बादशाहत को बहुत नुक़्सान पहुँचा है। लेकिन इस साल की तालीम से ख़ुदा के फ़ज़्ल ने उन में काम करना शुरू कर दिया है, और अब ग़ैर-मसीही चूहड़े भी इकरार करने लगे हैं कि उन की ज़िंदगियों में नुमायाँ फ़र्क़ नज़र आता है।

हर गाँव में स्कूल का इंतज़ाम

जमातों की ज़िंदगी में मसीह की रूह फूँकने के लिए दूसरा क़दम जो बेटमन और एहसानुल्लाह ने उठाया वह यह था कि उन्हों ने तक़रीबन हर गाँव में छोटे छोटे स्कूल खोल दिए जिन में मसीही और ग़ैर-मसीही छोटे बड़े बच्चों को पढ़ने लगे। एहसानुल्लाह लिखते हैं,

> हम ने अज़ हद कोशिश करके तक़रीबन तमाम मसीही बच्चों को इन स्कूलों में दाख़िल कर लिया है जहाँ उन्हें मसीही दीन के उसूलों की तालीम दी जाती है। अब तक़रीबन सौ लड़के और लड़कियाँ हमारे गाँव के स्कूलों में तालीम हासिल कर रहे हैं। यह बच्चे सब के सब या तो मसीही वालिदैन के हैं और या इकरारियों के बच्चे हैं।

नारोवाल में बोर्डिंग का इंतज़ाम

इन के इलावा बाज़ मसीही लड़के नारोवाल के स्कूल में दाख़िल किए गए जिन की रिहाइश का इंतज़ाम “झंडा” में एहसानुल्लाह की ज़ेरे-

निगरानी किया गया। इन लड़कों की तालीमो-तरबियत का हम उस ख़ूबी से अंदाज़ा कर सकते हैं जो गहना मल ने लिखा है,

> एहसानुल्लाह की ज़िंदगी से बंदा लड़कपन ही से मुतअस्सिर होता चला आया है। क्योंकि बंदे को उन्हों ने एक गुमनाम गाँव से निकाला और नारोवाल के मिशन स्कूल और झंडा के बोर्डिंग में दाख़िल कर दिया था। बोर्डिंग हाउस के सब लड़के मक़ामी उस्तादों और मुनादों के साथ हर इतवार के रोज़ इंजील की मुनादी के लिए जाया करते थे। मियाँ साहब बंदे को अपने पास रखते थे। एक मक़ाम में मैं ख़ुद इंजील का पैग़ाम सुनाते और जब दूसरी जगह जाते तो किसी लड़के को हुक्म देते कि बेटा जो कुछ मैं ने पिछली जगह सुनाया था वही तुम अब यहाँ सुनाओ। लड़के उन के हुक्म के मुताबिक़ मुनादी करते और यों उन का हौसला बढ़ जाता। सुनने वालों पर अजीब असर होता, क्योंकि वह एक बच्चे की ज़बान से ख़ुदा के भेदों की मुनादी सुनते थे। जब बुज़ुर्ग बच्चों से इंजील सुनते तो उन्हें ख़ूब शर्म आती कि वह ख़ुदावंद मसीह की ज़िंदगी के वाक़िआत से बेख़बर हैं, और उन के दिलों में इंजील को जानने का शौक़ पैदा हो जाता था। जब कभी वह किसी मेले में इंजील की मुनादी करने को जाते तो लड़कों से भी मुनादी करवाते थे। वह किसी एक लड़के को मुनादी करने का हुक्म देते तो कोई आदमी बच्चे को अपने कंधों पर बिठा लेता ताकि मियाँ साहब का हुक्म बजा लाए। लोग हैरान हो कर हमारे इर्दगिर्द जमा हो जाते और नजात की राह का पैग़ाम ख़ामोशी से लड़कों की ज़बान से सुनते थे।
>
> साल के आख़िर में एहसानुल्लाह गाँव के तमाम स्कूलों के बच्चों को, "झंडे" के लड़कों को और तमाम उस्तादों को जमा किया करते थे। इस बेड़ जलसे में उस्तादों, बेड़ लड़कों, छोटे लड़कों, और नारोवाल के हिंदू, मुसलमान और सिक्ख लड़कों को जमा किया जाता था। सब का फ़र्फ़र इमतहान लिया जाता और चार इनाम उन्हें दिए जाते जो अव्वल, दुवुम, सिवुम या चहारुम निकलते थे। इस सिलसिले में मुझे एक पेशावरी

लुंगी इनाम में दी गई। एक और साल एक मुसलमान लड़का दुवुम निकला, लेकिन उसे ईसाई लड़के पर तर्जीह दी गई, और धंडोरा पिटवाया गया कि अव्वल इनाम उसे मिलेगा। क्योंकि वह एक मुसलमान लड़का है और मुसलमान उस्ताद से पढ़ा है।

मुझे अच्छी तरह याद है कि एक साल मुझ से यह सवाल किया गया, "हज़रत दाऊद किया फ़रमाता है?" मैं ने जवाब दिया, "वह फ़रमाता है कि जब मैं ने ख़ुदावंद को पुकारा उस ने मेरी फ़रियाद सुनी और मेरी रूह को अज़सरे-नौ ताज़ी बख़्शी।"

मियाँ साहब को दिन रात यही एक धुन लगी थी कि ग़रीब देहाती मसीहियों के लिए क्या-क्या तज्वीज़मुफ़ीद होगी। उन की मुहब्बत ने सब छोटों-बड़ों के दिलों को मोह लिया था। वह रोज़ाना रूहुल-क़ुद्स की राहनुमाई के तलबगार होते थे और तमाम दिन मसीह ख़ुदावंद की फ़रमाँ-बरदारी में सर्फ़करते थे। लोग उन की तारीफ़करते थे, लेकिन वह हमेशा ख़ुदा की तम्जीद और बड़ाई करते रहते थे। बुज़ुर्ग बेटमन उन के हर काम में और हर तज्वीज़में हमेशा ख़ुशी से उन की मदद किया करते थे।

मिल कर मेलों में इंजील का परचार

एहसानुल्लाह को हमेशा यह ख़याल रहा कि गाँव के ईसाई मक़ामी मेलों में ख़ुदावंद के नाम का परचार किया करें। उन्हें यह एहसास था कि गाँव की जमातों में ज़िंदगी नहीं आ सकती जब तक लोगों में तबलीग़की रूह का दम न फूँका जाए। लिहाज़जब कभी नारोवाल में या किसी गाँव में कोई मेला होता तो वह तमाम कारिंदों, मसीही उस्तादों, झंडे के मसीही लड़कों और गाँव के मसीहियों को साथ ले कर मेले में जाते, उन के ज़रीए इंजील के हिस्से और किताबचे फ़रोख़्त करते या मुफ़्त तक़्सीम करते ताकि वह अपने एहसासे-कमतरी पर ग़ालिब आ कर बेधड़क इंजील

जलील की मुनादी करें और लोगों को नजात की बिशारत दे कर अपने ईमान को भी मुस्तह्कम और मज़बूत करें।

इन मेलों में वह बाज़औक़्त अनोखे तरीक़ह्स्तेमाल करते जो गाँव के ग़ैर-मसीहियों को कभी न भूलते और मसीहियों को ग़ैरते-ईमान के जोश से भर देते थे। गहना मल लिखते हैं,

> एक साल नारोवाल में जब बैसाखी का मेला हुआ और गाँव के हुजूम मेले में भंगड़ करने लगे और सदाएँ बुलंद होने लगीं तो एहसानुल्लाह ने मुख़्तलिफ़गाँव के तमाम ईसाइयों को अपने पास मेले में इकट्ठा करके उन के कई गुरोह बनाए और उन्हें किताबे-मुक़द्दस की चंद छोटी छोटी आयात हिफ़्ज़करवाईं। उस ने कहा, "तमाम मेले में फिरो। हर गुरोह एक आयत की बुलंद आवाज़से सदा लगाए और अपने ढोल बजा कर भंगड़े का नाच करे।"
>
> जहाँ गाँव के सिक्ख शराब पी कर गंदी सदाएँ लगा कर भंगड़ेका नाच नाचते थे वहाँ उन ही गाँव के मसीहियों के हुजूम किताबे-मुक़द्दस की आयतों की सदाएँ लगा कर ढोल बजाते भंगड़ डालते थे। जब शाम हुई और मेला ख़त्म हो गया तो मियाँ साहब के हुक्म के मुताबिक़सब मसीही हुजूम जमा हो कर "झंडा" में आए जहाँ हर आदमी को चार चार आने इनाम मिल गए। तब वह ख़ुशी ख़ुशी किताबे-मुक़द्दस की कहानियाँ दुहराते और आयात को गाते हुए अपने अपने गाँव को लौट गए।

हदिया देने पर ज़ोर

एहसानुल्लाह ने शुरू ही से इस अम्र पर ज़ोर दिया कि गाँव का हर मसीही ख़ुदा के लिए इबादत के वक़्त नज़राना और हदिया लाए। उस ज़माने में मज़दूर की रोज़ाना उजरत तीन आने से ज़्यादा नहीं थी। यह पेशे-नज़र रख कर उस ने गाँव के मसीहियों को यह सबक़दिया कि हर मर्द, औरत और बच्चा हर इतवार के रोज़इबादत के बाद कम-अज़कम

एक पैसा ख़ुदा के लिए अपने साथ लाए और अगर कोई नक़द-पैसा न लाए तो आटा, गेहूँ या मकई वग़ैरा अपने साथ लाए। उन्हों ने इस तरह अपनी मज़दूरी या आमदनी का दसवाँ हिस्सा देने की रस्म शुरू की। क्योंकि मज़दूर की हफ़्तावार उजरत क़रीबन दस आना थी और अगर ख़ानदान के चार मेंबर भी हूँ तो वह एक आना हर इतवार यानी आमदनी का दसवाँ हिस्सा ख़ुदा के हुज़ूर लाते थे। लेकिन बाज़इस से ज़्यादा रक़म भी देते थे। चुनाँचे 1896 में एहसानुल्लाह दुलम गाँव के बारे में जो नारोवाल से तक़रीबन आधे मील पर वोक़ए है लिखते हैं,

> एक ग़रीब मज़दूर ने जो लंगड़ था चार आना हदिया दिया। मैं हैरान रह गया कि इस ग़रीबत के मारे लंगड़े ने इतनी बड़ी रक़म दे दी है। [1]

मुफ़्त में ख़िदमत करने पर ज़ोर

वह इस बात को गाँव के ईसाइयों के ज़हन-नशीन किया करते थे कि वह दीनी काम को बग़ैर किसी मुआवज़ेलिए किया करें। चुनाँचे जब उन्हों ने रइय्या गाँव के उस्तादों को तीन माह के लिए मौसमे-बहार और मौसमे-गर्मा में इकट्ठा किया और उन्हें दीनी सबक़दिए वह उन से खुदवाई वग़ैरा का काम करवाते थे। इस काम की उजरत से वह अपने पेट पालते और साथ साथ हर शाम को इर्दगिर्द के गाँव में जा कर ईसाइयों को मसीही दीन के उसूल सिखाते थे।

एहसानुल्लाह ने दर्जे-बाला उसूलों पर देहात की जमातों की बुनियाद रखी और अपनी तमाम उम्र इन उसूलों पर कारबंद रहे। उन्हों ने ख़ुदा से दुआ करके इन उसूलों को गाँव की जमातों में जारी करके अपने हर रफ़ीक़कार को सख़्त ताकीद की कि उन पर अमल-पैरा हों, क्योंकि उन्हें ख़ूब मालूम था कि

[1] नारोवाल की 1896 की रिपोर्ट

> خِشتِ اوّل چُوں نہَد معمار کج   تا ثُرّیا مے روَد دیوار کج
> चूँकि मेमार ने पहली ईंट को टेढ़ी लगाई
> इस लिए दीवार सुरैया (के सितारों) तक टेढ़ी चलती जाएगी

6 नारोवाल में तबलीग़

डीकन का ओहदा

1890 में बेटमन वापस आया। जब उस ने देखा कि एहसानुल्लाह ने काम किस ख़ूबी-उस्लूबी से चलाया है तो वह निहायत मम्नून हुए। वह लिखते हैं,

> एहसानुल्लाह ख़लिस तबलीग़ी रूह से भरपूर हो कर मेरे पास आया है। वह और उस की बीवी दोनों रुपए-पैसे की तरफ़ से बेनियाज़ हैं। उस ने आला रुतबा और बड़े तनख़्वाह पर लात मारी है और जमात में दिन रात की सख़्त मेहनत-मशक़्क़त को उन पर तर्जीह दी है। उस ने मुझ से यह भी नहीं पूछा कि मुझे क्या मिलेगा? उस ने बड़े मेहनत करके अपने आप को जमात के काम के लिए तैयार किया है। उस ने न सिर्फ़ नारोवाल में अपने अज़ीज़-अक़रिब के दिलों को मोह लिया है बल्कि गाँव के ईसाई उस के लिए मरने को तैयार हैं। वह सब के लिए एक निहायत आला नमूना है। ख़ुदावंद की ज़रूरत उस के ज़रीए हर जगह काम कर रही है।

अप्रैल 1891 में मियाँ साहब को लाहौर के सेंट जान्ज़ कॉलेज में भेजा गया ताकि वह यकसूई के साथ मसीही दीनियात का मुतालआ कर सकें। शरफ़ और हूपर साहब उन के उस्ताद थे। उन्हों ने इस अरक़रेज़ी के साथ अपना मुतालआ जारी रखा और लाहौर के बाज़ारों में मुनादी की कि उन के हम-जमातों में भी रूहानी जोश पैदा हो गया। कॉलेज की इबादतगाह में निहायत दिल-सोज़ी से दुआ हुआ करती थी। वह जिस जगह भी जाते वहाँ के मसीही उन का जोश देख कर ख़ुद जोश में आ जाते थे। आख़िर में बिशप मैथ्यू ने उन्हें दिसंबर 1891 में बटाला में डीकन के ओहदे पर मामूर किया।

उसी साल के जून में ख़ुदा ने उन्हें एक और बेटा अता किया जिस का नाम नज़ीर रखा गया।

डीकन के ओहदे पर मामूर होने के बाद एहसानुल्लाह का तक़र्रुर नारोवाल में किया गया ताकि वह बेटमन साहब के साथ नारोवाल में काम करें। वह ईदे-मीलादे-मसीह से पहले वापस पहुँच कर अपने घर में जो "झंडा" में उन्हें दिया गया था रहने लगे। वह अपने नौज़ाईदा बच्चे को ले कर अपने माँ-बाप के पास गए। उन के वालिदैन और भाई-बहनें और रिश्तेदार उन्हें देख कर निहायत ख़ुश हुए। उन के वालिदैन ने छः माह के बच्चे को अपनी गोद में लिया, क़ुर्बान के सर पर हाथ रखा, अपनी बहू के हक़ में दुआए-ख़ैर की।

उसी साल ख़ुदा ने शेख़ रहमत अली को भी एक बेटा अता किया जिस का नाम बरकत अली रखा गया। इस से पहले उन के हाँ एक लड़की पैदा हुई थी जिस का नाम अल्लाह-दित्ती रखा गया था। अब दोनों घरों में हमेशा चहल-पहल रहती थी। और दुबारा महंतों की गली में से हो कर झंडे के घर में आना जाना शुरू हो गया।

भाई रहमत अली को शक आता है

एक रोज़ का ज़िक्र है। गर्मियों के दिन थे। एहसानुल्लाह किसी काम के लिए इबादतगाह गए जो मुहल्लाए-ख़्वाजगान में वोक़्अ थी। दोपहर का वक़्त था। जब काम हो चुका तो उन के दिल में ख़याल आया कि घर पास ही तो है। चलो सब को मिल आएँ। उन्हों ने घर का किवाड़ खोला। सीढ़ियों पर चढ़कर आवाज़ दी, "भाभी।" घर के सब बच्चे माँ को "भाभी" बुलाया करते थे।

माँ ने अंदर से जवाब दिया, "एहसान, अंदर आ जाओ।"

वह अपनी माँ के पास बैठे। अपने भाई रहमत अली के बच्चों को गोद में लिया। अपने बुज़ुर्ग वालिद की बाबत पूछा। मालूम हुआ कि वह

दुकान पर चले गए हैं। फिर अपने मँझले और छोटे भाइयों की बाबत पूछा। जवाब मिला, "रहमत अली ऊपर की मनज़िल में है, और मुहसिन अली बाहर अपने हम-जमातों के साथ पढ़ने गया हुआ है।"

यह सुन कर वह ऊपर की मनज़िल अपने भाई को देखने चले गए। वहाँ देखते क्या हैं कि रहमत अली सो रहा है। उस के एक तरफ़ क़ुरान खुला पड़ा है जबकि दूसरी तरफ़ किताबे-मुक़द्दस पड़ी है। चारपाई के नीचे क़लम-दवात और काग़ज़ हैं जिस पर कुछ नोट लिखे हैं। वह उलटे पाँओ नीचे चले गए। उन्हों ने वालिदा को कहा, "भाभी, रहमत अली को कहना कि आज रात खाना खा कर मेरे घर में आए।"

जब वह रात को खाने के बाद नमाज़ से फ़रिग़ हो कर आए तो दोनों भाई बैठ गए और बातें करने लगे। गुफ़्तगू के दौरान बड़ेभाई ने कहा, "भाई जी, आज में आप को मिलने के लिए घर गया था। आप सो रहे थे। मैं ने आप के आराम में ख़लल डालना मुनासिब न समझा और चला आया। लेकिन मैं ने आप की चारपाई पर किताबे-मुक़द्दस खुली पाई। क्या आप इन दिनों इस का मुतालआ कर रहे हैं?"

छोटे भाई ने बात टालनी चाही, लेकिन बड़ेभाई के इसरार पर उन्हों ने कहा कि यह एक लम्बी कहानी है, लेकिन आप के कहने के मुताबिक़ अर्ज़ किए देता हूँ। जब आप ईसाई हो कर घर-बार छोड़कर नारोवाल से चले गए तो तमाम ख़ानदान का बोझ मेरे सर पर आ पड़ा जो पहले आप ने उठाया हुआ था। वालिद मस्जिद में ज़्यादातर रहते थे। मुहसिन अली 14 साला लड़का स्कूल में पढ़ता था। मेरी अपनी उम्र 17, 18 बरस की थी। गुज़ारा बड़ी मुशकिल से हो रहा था, क्योंकि छः-सात जानें थीं, और मैं अकेला कमाने वाला था। चुनाँचे जायदाद का कुछ हिस्सा गिरवी करके मैं ने इस रक़म से बड़ेपैमाने पर कारोबार करना शुरू कर दिया। दिन रात की मेहनत-मशक़्क़त पर ख़ुदा ने बरकत दी। नौ-दस साल के अंदर में इतना सँभल गया कि न सिर्फ़ मैं ने क़र्ज़ उतार दिया और जायदाद वापस हासिल कर ली बल्कि मैं अच्छा ताजिर हो

गया। चमड़े का कारोबार अच्छा चल पड़ा। मैं अमृतसर माल भेजने लगा और वहाँ से माल ख़रीद कर नारोवाल में अच्छे मनोफ़ा पर बेचने लगा। इस के इलावा मैं कपड़े और नमक वग़ैरा में भी तिजारत करने लगा, और अब ख़ुदा के फ़ज़्ल से हम सब बहुत ज़्यादा ख़ुश-हाल हैं।

जब ख़ुदा ने मेरे कारोबार में बरकत दी तो मेरे दिल में ख़याल आया कि मुझे भी ख़ुदा की ख़िदमत करनी चाहिए, वर्ना यह एहसान-फ़रामोशी होगा। चुनाँचे मैं ने 1887 में यह मुसम्मम इरादा कर लिया कि मैं अरबी ज़बान से ज़्यादा गहरी वाक़फ़ियत हासिल करूँ ताकि क़ुरआन शरीफ़ का सही मतलब ख़ूब समझ सकूँ और अपनी क़ौम के लोगों में वाज़े-नसीहत अहसन तौर पर कर सकूँ।

हुस्ने-इत्तफ़ाक़ से उन दिनों में मौलवी हश्मत अली साहब रईसुल्लाह-पुरी मुल्के-इराक़ से तालीम हासिल करके वापस आ गए थे। अब वह नारोवाल में ही रहते थे। मेरी तबीअत मुतजस्सिस थी, और मैं वायज़ों के हलक़े से वाबस्तगी रखता था। फ़ार्सी की तालीम से फ़ारिग़ और अरबी की मबादियात से गुज़र चुका था। लेकिन यह तालीम ऐसे गिर्दो-पेश में हुई जो चारों तरफ़ से क़ुदामत-परस्ती और तक़्लीद की चार-दीवारी में घिरा हुआ था। चुनाँचे मैं ने यह मौक़ा ग़नीमत समझा और उन से कहा कि आप अरबी ज़बान और शिया मज़्हब की बारीकियों को मालूम करने में मेरी मदद करें।

उन्हों ने कहा, “तुम अरबी जानते ही हो। तुम अरबी का ज़्यादा इल्म हासिल करके क्या करोगे?”

तब मैं ने अपना दिल खोल कर उन के सामने रख दिया। वह ख़ुश हो कर कहने लगे कि वह मुझे ज़रूर पढ़ाया करेंगे और शिया मज़्हब के दक़ीक़ मसायल की भी तालीम देंगे। चुनाँचे मैं अक्सर उन की ख़िदमत में ही रहने लगा और सिर्फ़ थोड़े वक़्त अपनी तिजारत में सर्फ़ करता था। यह हाल तक़रीबन दो साल तक रहा।

मौलवी हश्मत अली साहब हमारी क़ौम को अक्सर वाज़ो-नसीहत किया करते थे। वह उमूमन ख़ुम्स यानी आम्दनी का पाँचवाँ हिस्सा देने पर बहुत ज़ोर दे कर कहा करते थे कि पहले पाँचवाँ हिस्सा अदा करके अपने माल को पाक करो। मैं उन का शागिर्द था जिस को वह बहुत प्यार करते थे, और हमारे हाँ अक्सर उन की दावत होती थी। मुझे यक़ीन था कि जो कुछ मौलवी साहब कहते हैं सब दुरुस्त और सही है। चुनाँचे मैं भी पाँचवें हिस्से के बारे में सरगर्म था। एक साल वालिद ने तक़रीबन दो सौ रुपए पाँचवें हिस्से के तौर पर उन्हें दे दिए।

कुछ अर्से के बाद चंद अर्ज़ी देने वाले मौलवी साहब के पास आए जो जिस्म के हटे-कटे मज़बूत और ख़ूब तवाना-तनदुरुस्त मालूम होते थे। वह ख़ुशपोश और ज़ी-इज़्ज़त दिखाई देते थे। मौलवी साहब ने उन्हें पाँचवें हिस्से के उन रूपों में से जो उन के पास जमा थे अच्छी रक़म दे दी। वह ले कर बड़े ख़ुश हुए और चले गए। इस के बाद फिर इसी क़िस्म के अर्ज़ी देने वाले मौलवी साहब के पास आते गए, और वह भी माक़ूल रकमें हासिल करके चले जाते थे। उन में से मैं ने न बीमार देखे और न ग़रीब, न यतीम, न बेवा और न मुसाफ़िर पाए। चंद महीनों के बाद मौलवी साहब नारोवाल से ख़ैरुल्लाह-पुर चले गए और फिर वहीं ज़्यादा क़ियाम करने लगे।

यह सूरते-हाल देख देख कर मेरे दिल में तरह-तरह के वस्वसे शुरू हो गए। मैं ने सोचा कि हम लोग दुकानदार हैं। भारी बाल-बच्चे वाले भी हैं, मेहनतो-मशक़्क़त करके रोज़ी कमाते और बाल-बच्चों को पालते हैं। पाँचवें हिस्से का यह रुपया हम से वसूल किया जाता है और ऐसे लोगों को दिया जाता है जो न कोई काम करते हैं न काज। अच्छे-भले, हटे-कटे, मोटे-ताज़े जिस्म के लोग होते हैं। मौलवी साहब से मालूम करना चाहिए कि यह कहाँ तक जायज़ है कि पाँचवें हिस्से का माल जफ़ाकश मेहनती लोगों से ले कर ऐसे लोगों को दिया जाए जो न मुह्ताज हैं और न बीमार, न यतीम हैं, न मसाकीन और न बेवाएँ हैं बल्कि हम से बेहतर

पोशाक पहनते हैं और ज़ी-इज़्ज़त नज़र आते हैं। इस सवाल पर मैं ने बहुत ग़ौर किया और क़ुरआन शरीफ़ को भी अच्छी तरह से पढ़ा। तब मुझ पर हक़ीक़त खुली कि क़ुरआन शरीफ़ के मुताबिक़ लूट के माल में से पाँचवें हिस्से का अदा करना वाजिब है जबकि हमारा माल तो लूट का माल ही नहीं होता बल्कि मेहनत-मशक़्क़त की कमाई का माल होता है।

मैं इस सवाल पर कई दिन सोचता रहा। आख़िर एक दफ़ा जब जुमए का रोज़ क़रीब आया तो मैं ने वालिद से कहा, “यह सब जायदाद, दुकानें, घर-बार जो है, सब आप का ही है। मैं भी आप का हूँ। मैं मौलवी हश्मत अली साहब से पाँचवें हिस्से के मसले की निस्बत बातचीत करना चाहता हूँ।”

उन्हों ने फ़रमाया, “अच्छा है, ख़ैरुल्लाह-पुर चले जाओ, जुमए की नमाज़ भी पढ़ आओ और इस मसले को भी दरयाफ़्त कर आओ।”

उस रोज़ चचा ग़ुलाम तक़ी मौज़ा ख़ास से आया हुआ था जो ख़ैरुल्लाह-पुर के नज़्दीक है। वालिद ने उस से ज़िक्र किया। उस ने कहा कि बेहतर है वह मेरे साथ चल पड़े वहाँ जुमए की नमाज़ भी पढ़ आए और अपने दिल के शुकूक को भी रफ़ा कर आए। चुनाँचे मैं उस के साथ चला गया। रात मैं ने मौज़ा ख़ास में बसर की और सुब्ह मैं और चचा वहाँ से ख़ैरुल्लाह-पुर चले गए।

जब सब लोग जुमए की नमाज़ पढ़ कर चले गए तब मैं ने मौलवी साहब से पाँचवें हिस्से के मसले की निस्बत सवाल किए। उन्हों ने कहा, “तुम ख़ुद जानते हो कि ख़ुम्स (पाँचवें हिस्से) की आयत क़ुरआन में मौजूद है। यह एक इलाही हुक्म है जिस को टालना गुनाहे-अज़ीम है। यह आयत दसवें पारे के शुरू में है, और इस की सही तफ़्सीर यही है कि हर एक चीज़ में से पाँचवाँ हिस्सा देना हर दीनदार पर फ़र्ज़ है। क़दीम ज़माने से अब तक अहले-शिया देते चले आए हैं।”

मैं ने सवाल किया, “जनाब, अगर ज़ामानाए-क़दीम से ख़ुम्स का रिवाज चला आ रहा है तो यह बताएँ कि क्या हज़रत रसूलुल्लाह (सलअम) ने कभी लूट के माल के सिवा किसी में से पाँचवाँ हिस्सा लिया था?”

मौलवी साहब बहुत नाराज़ हुए और कहने लगे, “हम इस सवाल का जवाब फिर देंगे।”

मैं ने अर्ज़ की, “आप अपने वाज़-नसीहत में पाँचवें हिस्से पर सालों से ज़ोर देते रहे हैं। मैं ने सिर्फ़ दिल की तसल्ली के लिए यह सवाल किए हैं।”

इस पर वह बहुत मलामत करने लगे और कहने लगे, “तुम इतने सालों से मेरे शागिर्द रहे हो, और अब तुम मेरा यक़ीन नहीं करते। मेरा ख़याल था कि तुम बहुत अच्छे दीनदार शख़्स हो कर दूसरों को वाज़-नसीहत किया करोगे, लेकिन मैं देखता हूँ कि शैतान तुम्हारे सर पर सवार हो रहा है, और तुम भी एहसान की तरह काफ़िर होने लगे हो।” इस के बाद वह तैश में आ कर कहने लगे, “तुम नहीं जानते कि हम मुज्तहिद हैं? हमारा क़ौल तुम्हारे लिए काफ़ी होना चाहिए। कोई ज़रूरत नहीं कि हम किताबों में से तलाश करके तुम्हारे सवालों का जवाब दें। हम ऐसे ही इराक़ अरब की ख़ाक छान कर आए हैं। हम आलिम हैं और सादात[1] में से हैं। सादात को उम्मत पर फ़ौक़ियत हासिल है।”

मैं ने पूछा, “क्या यह क़ुरआन शरीफ़ में है?”

उन्हों ने ग़ज़बनाक हो कर कहा, “क़ुरआने-मजीद में कुल 23 सिपारा सूरा साफ़्फ़ात में फ़रमाता है,

> سَلَمٌ عَلَى اٰل يَاسِينَ (130:37).

तुम अरबी जानते हो। इस का तर्जुमा करो। मैं ने अर्ज़ की, “सलाम हो औलादे-रसूल के ऊपर।”

---

[1] यानी सय्यिद का जमा। वह क़ौम जो हज़रत अली की औलाद और हज़रत फ़ातिमा के बतन से है।

इस के बाद वह कहने लगे, “अब जाओ और ख़ुदा से अपने शक और वस्वसाए-शैतानी के लिए मग़फ़िरत के तलबगार हो। आइंदा जो कलाम हमारे मुँह से निकले उस पर पक्का यक़ीन रखो।”

मैं यक़ीन करके चचा ग़ुलाम तक़ी के हमराह वापस मौज़ा आ गया और हफ़्ते के रोज़ नारोवाल पहुँचा।

इतवार के रोज़ मैं ने कलामुल्लाह की तिलावत की। तिलावत के बाद मेरे दिल में ख़याल आया कि सूरा साफ़्फ़ात की आयत को देखूँ। जब मैं ने इस आयत को निकाला तो वहाँ आयत को इस तरह लिखा पाया,

> سَلَمٌ عَلَى إِلْ يَاسِينَ

और अलफ़ाज़ के नीचे लिखे तर्जुमे में यह अलफ़ाज़ थे, “सलामती हो, ऊपर इलियास के।” भाई जी, मैं क्या बताऊँ कि मेरा हाल किया हुआ। मैं सन्नाटे में आ गया। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि ज़मीन मेरे पाँओ तले से निकल गई है और मेरे रौंगटे खड़े हो गए। मौलवी साहब का मैं बड़ा मोतक़िद था, और मेरे ख़्वाबो-ख़याल में भी यह बात न आ सकती थी कि वह झूट बोलेंगे और क़ुरआन पर तोहमत लगाएँगे। चुनाँचे मेरे दिल में ख़याल आया कि मुम्किन है कि मौलवी साहब की फ़र्मूदा आयत क़ुरआने-मजीद के किसी दूसरे हिस्से में मौजूद हो। चुनाँचे मैं ने तमाम क़ुरआन छान मारा। लेकिन तलाश और जुस्तजू के बावुजूद वह आयत कहीं न निकली।

भाई जी, मैं हर वक़्त हैरान और परेशान रहने लगा। मैं बहुत घबराहट में था और नहीं जानता था कि क्या करूँ। रह-रह कर मुझे यह ख़याल सताता था कि मौलवी साहब ने यह क्या ग़ज़ब किया कि अपनी बात को क़ायम रखने के लिए क़ुरआन तक को बदल दिया? मैं उन्हें हमेशा रास्त-गुफ़्तार ख़याल करता था। न पेट भर कर खाना खाता और न सो सकता था। ग़म और रंज से भरा रहता था। हर वक़्त यही ख़याल आता कि मौलवी साहब ने यह क्या किया? और अगर ऐसे आलिमे-मुज्तहिद

अपनी बात को मनवाने के लिए क़ुरान शरीफ़ की आयत को तबदील कर सकते हैं तो दूसरों की बातों पर क्या भरोसा किया जा सकता है? मैं शहर के बाहर चला जाता, क्योंकि आदमियों को देख कर मुझे वहशत सी हो जाती थी।

एक शाम को मैं इन ही ख़यालों में ग़र्क़ था। रोटी खाने को जी न करे, लुक़मा अंदर करूँ तो बाहर निकले। मैं दो चार लुक़मे खा कर चारपाई पर पड़ा रहा, लेकिन नींद पास न फटकती थी। आधी रात के क़रीब मेरी आँख लगी। क्या देखता हूँ कि एक बुज़ुर्ग मेरे क़रीब आया और मुझे कहने लगा, "रहमत अली। तुझे क्या हुआ है? तू क्यों इस क़दर ग़मगीन और परेशान-हाल हो रहा है?"

तब मैं ने उसे अपनी तमाम सरगुज़श्त सुनाई और कहा, "मेरा मौलवी साहब पर पूरा यक़ीन था, लेकिन अब उन्हों ने अपनी बात रखने की ख़ातिर क़ुरान शरीफ़ की आयत को बदल दिया है। हाय, मैं क्या करूँ?" मैं बेइख़्तियार से रोने लगा। उस बुज़ुर्ग ने बेइत्मीनान और दिलजमई से जवाब दिया, "तू पढ़ा-लिखा आदमी है। अरबी, फ़ारसी और उर्दू तू अच्छी तरह जानता है। क़ुरानो-हदीस से तू वाक़िफ़ है। तू किताबों को ख़ुद क्यों नहीं पढ़ता? तू इनसान पर क्यों ईमान रखता है? तुम किसी आदमी पर एतबार न करो। ख़ुद पढ़े, सोचो, समझो और जो दुरुस्त है उस पर अमल करो।"

मेरी फ़रियाद और रोने की आवाज़ से वालिदैन जाग पड़े। भाबी मेरे पलंग आई और कहने लगी, "रहमत अली। क्या हुआ है? ऐसा क्यों करते हो?"

मैं भी उठ बैठा और अपने आँसू पोंछे। थोड़ी देर के बाद वह सोने चली गई और मैं फिर चारपाई पर लेट गया। उस बुज़ुर्ग की बातों पर सोचता सोचता सो गया। जब मैं सुब्ह-सवेरे उठा तो मैं ने मुसम्मम इरादा कर लिया कि मैं उस बुज़ुर्ग की सलाह पर अमल करूँगा। गो कोई शख़्स कुछ कहे मैं किसी बात को नहीं मानूँगा जब तक कि क़ुरान और मेरी

अक़्ल उस की गवाही न दे। मैं ने वुज़ू किया और सुब्ह की नमाज़ के बाद दुआ की कि ऐ ख़ुदा, तू ही हर बात में मेरा हादी हो। तेरे सिवा मेरा कोई नहीं है। चुनाँचे मैं ने क़ुरआन को अज़सरे-नौ ग़ौरो-ख़ौज़ से पढ़ना शुरू किया। सूरा फ़ातिहा को ख़त्म करके सूरा बक़र को पढ़ना शुरू किया। तब मैं इस आयत पर आया,

> وَالَّذِينَ يُؤْمِنُونَ بِمَا أُنزِلَ إِلَيْكَ وَمَا أُنزِلَ مِن قَبْلِكَ وَبِالْآخِرَةِ هُمْ يُوقِنُونَ (2:4)۔
> और जो उस पर ईमान रखते हैं जो तुझ पर नाज़िल हुआ और जो तुझ से पहले नाज़िल हुआ और आख़िरत पर यक़ीन रखते हैं।

यह पढ़कर मैं ठिठक गया। मैं ने अपने आप से पूछा कि क्या मैं किताबे-मुक़द्दस पर क़ुरआन की तरह ईमान रखता हूँ? मैं इस आयत के आगे न पढ़सका। यह आयत मैं ने बीसियों मर्तबा पढ़ी थी लेकिन मेरे दिल में इस क़िस्म का ख़याल पहले कभी न आया था, क्योंकि आलिमों से यही सुना करता था कि मुरव्वजा किताबे-मुक़द्दस ख़ुदा का कलाम नहीं है। चुनाँचे मेरा भी यही ख़याल था कि यह किताबे-मुक़द्दस आदमियों की बनाई हुई है और इस क़ाबिल नहीं रही कि इस पर ईमान लाया जाए। लेकिन अब तो मैं ने दिल में ठान रखा था कि मैं किसी आलिम और मौलवी की बात नहीं मानूँगा और सिर्फ़ क़ुरआन और अक़्ल की बातों पर ही चलूँगा, सब कुछ ख़ुद पढ़ूँगा, सब बातों पर ख़ुद सोचूँगा, ख़ुदा से मदद पा कर समझने की कोशिश करूँगा और सिर्फ़ रास्ती पर अमल करूँगा। क्योंकि शेख़सादी ने कहा है,

> راستی مُوجبِ رضائے خداست
> کس ندیدم کہ گُم شُد از رہِ راست۔
> रास्ती ख़ुदा की रज़ामंदी का सबब है

> मैं ने किसी को भी नहीं देखा जो राहे-रास्त पर चलते हुए गुम हो गया है।

इस आयत को पढ़कर मेरे दिल में सख़्त कश-म-कश शुरू हो गई। पुराने ख़्यालात में और नए ख़्याल में सख़्त लड़ाई शुरू हो गई। मैं ने अपने आप को बहुत मलामत की और कहा, "जिस किताब को तू आदमियों का कलाम ख़्याल करता है उसे क़ुरआन शरीफ़ख़ुदा का कलाम फ़रमाता है।" चुनाँचे मैं ने उस घड़ी मान लिया कि जैसा मैं क़ुरआन शरीफ़पर ईमान रखता हूँ वैसा ही किताबे-मुक़द्दस पर ईमान रखूँगा। और जैसा मैं क़ुरआन की तिलावत रोज़ाना करता हूँ उस की भी तिलावत रोज़ाना करूँगा। मैं दोनों किताबों का निहायत ग़ौरो-ख़ौज़से मुतालआ करूँगा।

भाई जी। आप यहाँ नहीं थे कि मैं आप से मदद माँगता। अगर आप यहाँ होते तो मुझे इस क़दर परेशानी का सामना करना न पड़ता। और आप मेरी राहनुमाई भी कर सकते थे।

ग़रज़, मैं ने क़ुरआन मजीद को वहीं बंद कर दिया और उसी रोज़किताबे-मुक़द्दस की एक जिल्द ख़रीद कर दोनों को पढ़ना शुरू कर दिया। ज्यों-ज्यों में दोनों का मुतालआ करता गया मुझ पर यह ज़ाहिर होता गया कि किताबे-मुक़द्दस के बहुत से मक़ामात और क़िस्से क़ुरआन में पाए जाते हैं और क़ुरआन की आयात को समझने में तफ़्सीरों से ज़्यादा मदद देते हैं। लेकिन मुझे दोनों किताबों में इख़्तिलाफ़ात भी नज़र आने लगे। अब मैं ने दो मोटी कापियाँ बनाईं। एक क़ुरआने-मजीद के लिए और दूसरी किताबे-मुक़द्दस के लिए बनाई। जिन आयतों और मक़ामों का आपस में मेल नहीं होता वह मैं ने इन कापियों में दर्ज करनी शुरू कर दी हैं। जब आप आज दोपहर को घर आए थे तो मैं दोनों किताबों को पढ़ते पढ़ते सो गया था। अब मैं ने आप के सामने तमाम हालात हरफ़-ब-हरफ़ बयान कर दिए हैं।

बड़े भाई ख़ामोशी से छोटे भाई की बातें सुनता रहा। जब वह अपना क़िस्सा सुना चुके तो बड़े भाई कहने लगे, “भाई जी। मुझे आज आप से बड़ी शर्म आती है। मैं ने ईसाई होने के वक़्त यह ख़्याल न किया कि मैं घर-बार दुकान वग़ैरा का सारा बोझ आप पर लाद रहा हूँ। मेरी वजह से जो आप को तक्लीफ़ें पहुँची उस के लिए मैं मुआफ़ी का तलबगार हूँ। लेकिन अब आप ख़ूब समझ सकते हैं कि तालिबे-हक़ की राह में मुशकिलात का पहाड़ हाइल होता है, कि एक वक़्त ऐसा आता है जब उसे रिश्तेदारों की मुहब्बत और ख़ुदा में से एक को इख़्तियार करना पड़ता है। इंजील में लिखा है कि तुम ख़ुदा और दुनिया दोनों की ख़िदमत नहीं कर सकते। मैं ने ख़ुदा की ख़िदमत इख़्तियार की, और मुझे यह नज़र आता है कि आप को भी ख़ुदा हक़ की जानिब बुला रहा है और आप अपने तरीक़े से ख़ुदा की तरफ़ आ रहे हैं। ख़ुदावंद ने फ़रमाया है कि सिराते-मुस्तक़ीम, हक़ और ज़िंदगी मैं हूँ। चुनाँचे हक़ की तलाश आप को अपने नजात-दहिंदे के पास ला कर रहेगी। आप पंजगाना नमाज़ में सूरा अल-हम्द पढ़कर ख़ुदा से दुआ माँगते हैं कि वह आप को सिराते-मुस्तक़ीम पर चलाए। मैं हमेशा आप को अपनी दुआओं में ख़ुदा के हुज़ूर पेश करता रहूँगा। अगर मैं किसी वक़्त आप के मुतालए में काम आ सकूँ तो मुझे बताएँ ताकि मैं आप की मदद करूँ। फ़िलहाल आप यह चंद किताबें पढ़ने के लिए ले जाएँ।”

यह कह कर वह उठे और छोटे भाई को मीज़ानुल-हक़ और अस्मारे-शीरीं वग़ैरा किताबें दे कर कहा, “आप को इन किताबों के मुतालए से फ़ायदा पहुँचेगा। यह बातें कि किताबे-मुक़द्दस मुहर्रफ़ है इन मौलवियों की बनावटी बातें हैं।

> چوں ندیدند حقیقت رہِ افسانہ زدند۔
> चूँकि उन्हें हक़ीक़त नज़र नहीं आती थी इस लिए वह अफ़्सानों की राह पर चल कर लूटते थे।

क़ुरआन से ऐसी बातों की तस्दीक़ नहीं होती। मौलवी हश्मत अली की चालाकी से मुझे क़ुरआन की एक आयत याद आ गई कि यहूदी तौरातो-सहायेफ़ अंबिया की आयात को "उन की जगह" से तबदील करके हज़रत मुहम्मद को कुछ का कुछ बताते थे। बस वह भी मौलवी साहब की तरह ही करते होंगे। लेकिन इस क़िस्म की बातों से न क़ुरआन में तहरीफ़ लाज़िम आती है और न किताबे-मुक़द्दस में तहरीफ़ वक़ूअ हो जाती है। भाई जी। आप ने ख़ुद तहक़ीक़ करने का जो रास्ता इख़्तियार किया है वह बेहतरीन रास्ता है। अगर किसी बात में मेरी ज़रूरत पड़े तो आप बिला-तवक़्क़ुफ़ मुझे बताएँ। मेरी दुआ है कि ख़ुदा आप को इस पुरख़तर रास्ते में बेखौफ हो कर चलने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाए।" रात बहुत गुज़र गई थी, चुनाँचे दोनों भाई एक दूसरे से रुख़्सत हुए।

वबाई बीमारी के दौरान ख़िदमत

एहसानुल्लाह बाक़ायदा नारोवाल के बाज़ार में इंजील की मुनादी करते थे। इस सिलसिले में वह अपने रिश्तेदारों और दोस्तों की दुकानों में बैठ कर उन से दीनी गुफ़्तगू किया करते थे। बेटमन लिखते हैं,

> जब से 1884 में अज़ीज़ मुसरतुल्लाह गुज़र गया है नारोवाल का कोई बेटा न रहा था जो उस का हाथ पकड़ता। अब उस का बेटा एहसान आ गया है जो इस क़ाबिल है कि उस का हाथ पकड़कर उसे सँभाल ले।

वह नारोवाल के लिखे-पढ़े में इंजील के हिस्से फ़रोख़्त करते, किताबचे मुफ़्त तक़्सीम करते और सब को नजात की बिशारत सुनाते थे। रात के वक़्त वह मैजिक लालटेन से मिशन स्कूल और दूसरी जगहों में किताबे-मुक़द्दस की तस्वीरें दिखाया करते थे।

1892 के जुलाई के शुरू में मुहल्लाए-ख़्वाजगान में लोग हैज़े की वबा के शिकार होने लगे। बद-क़िस्मती से यह दिन मुहर्रम के थे और शिया मर्सिया-ख़्वानी और अज़ादारी में मसरूफ़ थे। 7 मुहर्रम और 10

मुहर्रम के रोज़ उन्हों ने जुलूस निकाले जिस वजह से वबा हर जगह फैल गई। मर्दाना और ज़नाना हस्पतालों में हैज़े के बीमारों का इलाज इतनी मसीही हमदर्दी के साथ किया गया कि हिंदू, सिक्ख और मुसलमान सब के सब मुतअस्सिर हो गए। एहसानुल्लाह लिखते हैं,

> इस साल हैज़े से शहर और देहात के बहुत लोग मर गए। ऐसे हालात का सामना करते वक़्त इनसान मुहब्बत और हमदर्दी का ख़्वाहाँ होता है, और वह शौक़ से नजात का पैग़ाम सुनता है। इस नाज़ुक वक़्त में मिस्टर बेटमन हमारे साथ थे। उन्हों ने अपनी ज़िंदगी से साबित कर दिया कि अगर कोई मसीह की पैरवी करना चाहे तो
>
> > हमारा भी फ़र्ज़ यही है कि अपने भाइयों की ख़ातिर अपनी जान दें। (1 यूहन्ना 3:16)
>
> हम ख़ुदा का शुक्र करते हैं कि उस ने पंजाब में मिस टकर और मिस ह्यूलट जैसे परदेसी मुबल्लिग़ीन भेजे जो अमराज़ मुतअद्दी के दिनों में मसीह की भेड़ों के साथ रहते हुए हम को सबक़ देते हैं कि हम अपने गले के लिए जान दे दें।
>
> वबा के दिनों में बेटमन साहब दीगर ईसाइयों के साथ ग़ैर-मसीही मरीज़ों की जाँ-फ़िशानी से ख़बरगीरी करते रहे और उन्हें ख़ुदावंद मसीह की ख़ुश-ख़बरी सुनाते रहे जिस ने हज़ारों को उन की बीमारियों से शिफ़ा बख़्शी थी।

इस के इलावा मियाँ साहब नारोवाल के मिशन स्कूल में भी हर जुमएरात के रोज़ दर्स दिया करते थे। यह दर्स मुख़्तसिर लेकिन पुर-मग़ज़ होते थे। चौधरी जलालुद-दीन अम्बर जो बाद में मसीही हो गए कहते हैं,

> मैं नारोवाल मिडल स्कूल में पढ़ता था। एक रोज़ एहसानुल्लाह ने स्कूल में सुब्ह के वक़्त स्कूल शुरू होने से पहले इबादत के वक़्त मुख़्तसिर सा वाज़ किया। मालूम नहीं इस वाज़ में क्या था। उन्हों ने आक़िबत का ज़िक्र किया। इस का असर मुझ पर ऐसा हुआ कि मेरे आँसू निकल आए और मेरे दिल ने कहा, “क्या इस्लाम से मेरी रूह को कभी तसल्ली नहीं

मिलेगी, महशर का ख़ौफ़ मेरी जान नहीं छोड़ेगा? सिर्फ़ मसीह मुझे बचा सकेगा।"

> मुशकिल है उम्र मौत से होती नहीं तमाम दौरे-ज़माँ में आफ़ते-महशर लगी हुई

उस वक़्त मैं ने पक्का इरादा कर लिया कि मैं ईसाई हो जाऊँगा।

देहात में रूहानी तबदीली

नारोवाल के इर्दगिर्द के देहात में जब एहसानुल्लाह जाते तो वह सिर्फ़ मसीहियों की इबादत करके और उन से मुलाक़ात करके वापस नहीं लौट जाते थे बल्कि देहात के मुसलमानों, हिंदुओं और सिक्खों से भी मिलते थे। वह खासकर वहाँ के नंबरदारों, सेफ़पोशों और ज़ैलदारों से मेल-मुलाक़ात करते और उन्हें ख़ुदावंद की नजात का पैग़ाम सुनाते थे। आम तौर पर यह लोग उन की बातें ख़ुशी से सुनते और उन्हें अपने घरों में ले जाते थे जहाँ घंटों दीनी गुफ़्तगू और बहस-मुबाहसा होता रहता था।

लेकिन बाज़ नंबरदार और ज़ैलदार मसीही ईमान के सख़्त मुख़ालिफ़ थे। खासकर एक ज़ैलदार ईसाई मज़हब का जानी दुश्मन था। वह अपने देहात के ईसाइयों को मुक़द्दमों में फंसा देता, अपने बैल और चौपाए उन के खेतों में छोड़देता और उन की फसलों को बर्बाद कर दिया करता था। एक दफ़ातो उस ने यहाँ तक दिलेरी की कि एक ख़ानदान के खाने की हाँडी में ज़हर डलवा दिया। ख़ुश-क़िस्मती से उस के हाँ उसी रोज़ बहुत मेहमान आ गए और ज़हर की मिक़्दार हर एक मेहमान के खाने में बट गई। अगरचे सब बीमार हो गए लेकिन कोई मौत वोक़ूअ न हुई। अगरचे सब जानते थे कि यह कर्तूत किस का है, लेकिन किसी को नाम लेने की जुरअत न हुई। मियाँ साहब उस गाँव में अक्सर जाया करते थे

ताकि ईसाइयों के ईमान को तक़्वियत हो। मुसलमान इबादत के वक़्त उन के वाज़को सुन कर बहुत मुतअस्सिर होते। इस का नतीजा यह हुआ कि ज़ैलदार अक्सर इबादत के वक़्त आने लगा। उस ने न सिर्फ़ ईसाइयों का पीछा करना छोड़दिया बल्कि उन्हें अपने खेतों में काम करने पर मामूर कर दिया।

रइय्या से बद्दो मलही का गाँव तीन चार मील परे वोक़्है, और मौज़ धरग भी इतने ही फ़ासिले पर है। उस साल यानी 1892 में दोनों जगहों के ज़ैलदार अल-मसीह के पैरोकार हो गए। एहसानुल्लाह लिखते हैं,

> हमारा ख़ुदावंद ईसा मुबारक हो जिस ने इस साल इस इलोक़ापर अपनी नज़र की और दो ज़ैलदारों को अपनी नजात से शादमान किया है। बद्दो मलही का चौधरी निज़ामुद-दीन चंद सालों से इस्लाम और ईसाइयत का मुवाज़ना कर रहा था। अब उस ने साल के शुरू में मियाँ सादिक़साहब के हाथों से अजनाला में बपतिस्मा पाया। दौलतमंद का ख़ुदा की बादशाहत में दाख़िला होना निहायत मुश्किल है, लेकिन ख़ुदा के सामने कोई बात ना-मुमकिन नहीं है। उस ने चौधरी पर करम की नज़र की और अपने गल्ले में शामिल कर लिया है।
>
> उस के बपतिस्मे से हर जगह शोरो-ग़ुल मच गया, लेकिन बाज़हक़ की जुस्तजू भी करने लगे। इन तालिबाने-हक़में धरग का ज़ैलदार चौधरी मन्सबदार ख़ान भी था। धरग नारोवाल से नौ मील के फ़ासिले पर वोक़ है, और उस की ज़ैल में बीस गाँव हैं जिन के लिए वह ज़िम्मेदार है। चार साल हुए मैं इस गाँव में गया। उस वक़्त चौधरी मन्सबदार ख़ान के घर में एक मौलवी के साथ ईसाई राहे-नजात पर मेरी बह्स हुई। घर का इहाता मुसलमानों से भरा था, और सब बह्स को ख़ामोशी और ग़ौर से सुन रहे थे। चौधरी साहब दोनों जानिबैन से मुंसिफ़मुक़र्रर हुए।
>
> बह्स के ख़ातमे पर चौधरी साहब ने मौलवी के ख़िलाफ़ैसला दिया और कहा कि तरैफ़ैन की दलीलों से यह ज़ाहिर है कि अज़रूए-इस्लाम गुनाहगार को नजात नहीं मिल सकती। क्योंकि ख़ुदा का इन्साफ़इस बात

का तक़ाज़ा करता है कि गुनाहगार को सज़ा मिले। मौलवी बहुत नाराज़ हुआ।

शाम पड़ गई थी। मुझे रइय्या जाना था, और मन्सबदार ख़ान एक मील तक मेरे साथ साथ अंधेरे में आया। मेरे साथ ईसाई नौजवान भी थे। रुख़्सत होने से पहले हम सब ख़ुदा के हुज़ूर उस सुनसान जंगल में सिज्दे में गिरे। दुआ के आख़िर में मैं ने "आमीन, आमीन" कहा, और हम एक दूसरे से जुदा हुए।

इस वाक़िए के बाद चौधरी मन्सबदार ख़ान ने इस्लाम और ईसाइयत का बाक़ायदा मुतालआ शुरू कर दिया। वह अरबी से वाक़िफ़ था और उर्दू-फ़ारसी ज़बानों को अच्छी तरह जानता था। सादी और हाफ़िज़ के अशआर उसे ज़बानी याद थे। क़ुरआन और किताबे-मुक़द्दस के मसायल पर हमेशा धरग में गर्मागर्म बह्स होती रही। उस ने इंजील का अच्छी तरह मुतालआ किया और क़ुरआन को गहरी नज़र से पढ़ा। मुसलमान और ईसाई उलमा ने जो किताबें मुबाहसे पर लिखी थीं वह भी उस की नज़र से गुज़रीं। आख़िर में वह क़ायल हो गया कि ईसाई ईमान बर-हक़ है और सिर्फ़ मसीह नजात-दहिंदा है। लेकिन वह दूसरों के सामने इकरार करने से गुरेज़ करता था। जब मैं ने उसे कहा कि यह इकरार सब लोगों के सामने अलानिया करना ज़रूरी है तो वह बहुत घबराया। मैं ने उसे ख़ुदावंद का क़ौल याद दिलाया कि

> जो भी लोगों के सामने मेरा इकरार करे उस का इकरार मैं भी अपने आसमानी बाप के सामने करूँगा। लेकिन जो भी लोगों के सामने मेरा इन्कार करे उस का मैं भी अपने आसमानी बाप के सामने इन्कार करूँगा। यह मत समझो कि मैं दुनिया में सुलह-सलामती क़ायम करने आया हूँ। मैं सुलह-सलामती नहीं बल्कि तलवार चलवाने आया हूँ। मैं बेटे को उस के बाप के ख़िलाफ़ खड़ा करने आया हूँ, बेटी को उस की माँ के ख़िलाफ़ और बहू को

> उस की सास के ख़िलाफ़ इनसान के दुश्मन उस के अपने घर वाले होंगे। जो अपने बाप या माँ को मुझ से ज़्यादा प्यार करे वह मेरे लायक़ नहीं। जो अपने बेटे या बेटी को मुझ से ज़्यादा प्यार करे वह मेरे लायक़ नहीं। जो अपनी सलीब उठा कर मेरे पीछे न हो ले वह मेरे लायक़ नहीं। जो भी अपनी जान को बचाए वह उसे खो देगा, लेकिन जो अपनी जान को मेरी ख़ातिर खो दे वह उसे पाएगा। (मत्ती 10:32-39)

मेरे बार बार समझाने के बाद उस ने एक रोज़ इतवार की इबादत के वक़्त अपने गाँव के लोगों को इकट्ठा किया और कहा, “मेरा अब यह ईमान है कि सिर्फ़ मसीह ही नजात दे सकता है।” इस के बाद उस ने मज्मा में बड़ी ख़ाकसारी से ज़कात की तरह कहा, “भाइयो, मैं ने जिस किसी का कभी कुछ बिगाड़ा है या जिस किसी को कोई नुक़्सान पहुँचाया है में अब उस की तलफ़ी करने को तैयार हूँ।”

जब मन्सबदार ख़ान ने मसीह का अलानिया इकरार किया तो उस पर आफ़तों का पहाड़ टूट पड़ा। वह ज़ैलदार था, लेकिन हर तरफ़ से उस पर लानतो-मलामत की बौछाड़ शुरू हो गई। उस के रिश्तेदार उस के ख़िलाफ़ हो गए। उस का हुक़्क़ा-पानी बंद कर दिया गया। जो लोग पहले उस की ख़ुशामद करते और उस की जूतियाँ उठाते थे वह उसे खुल्लम-खुल्ली गालियाँ निकालने लगे। यह सूरते-हाल देख कर वह निहायत परेशान हो गया। मैं ने उसे बहुत दिलासा दिया और ख़ुदावंद के वादे याद दिलाए। ख़ुदा का करना ऐसा हुआ कि उन दिनों में बद्दो मलही के चौधरी निज़ामुद-दीन का बपतिस्मा हो गया। यह ख़बर सुन कर वह रो पड़ा और कहने लगा, “वाय बर हाले-मन (हाय, मेरे हाल पर अफ़्सोस)। मियाँ साहब, काश कि हम दोनों इकट्ठे ख़ुदा की बादशाहत में दाख़िल होते।”

जब चौधरी मन्सबदार ने आख़िरत को दुनिया पर तर्जीह देने का फ़ैसला कर लिया तो उस ने बपतिस्मा पाने की ख़्वाहिश ज़ाहिर की। लेकिन दिक़्क़त यह आ पड़ी कि उस की तीन बीवियाँ थीं। मैं ने उसे कहा कि

आप को दो बीवियों को तलाक़ दे कर सिर्फ़ एक बीवी के साथ रहना होगा।[1] बहुत तअम्मुल के बाद उस ने यह भी मंज़ूर कर लिया। बेटमन ने उसे नारोवाल की इबादतगाह में बपतिस्मा दे कर जमात में शामिल कर लिया।

जब वह बपतिस्मा पा कर वापस धरग गया तो उस के घर में चीख़ पुकार शुरू हो गई। उस ने कहा, "मैं गुनाहगार था और अब ख़ुदा के ग़ज़ब से बचने के लिए मैं ने अपने नजात-दहिंदे मसीह की पनाह ले ली है।" उस ने अपनी तीसरी बीवी को भी कहा, "अगर तू भी मुझ से जुदा होना चाहे तो ख़ुशी से चली जा।" बीवी के माँ-बाप ने भी उसे बहुतेरा कहा कि अब वह ईसाई हो गया है। तू उसे छोड़कर हमारे पास आ जा।

लेकिन उस की बीवी ने किसी की न मानी और कहा, "वह मेरा मालिक है। अगर वह ईसाई हो गया है तो फिर क्या हुआ? मैं अपने माँ-बाप को नाराज़ करना नहीं चाहती, वर्ना मैं भी अपने ख़ाविंद के साथ ईसाई हो जाती।"

बपतिस्मा पाने के बाद ज़िम्मादार मन्सबदार ग़ुलाम की ज़िंदगी तबदील हो गई। अब वह न सिर्फ़ मसीही होने का इकरार करता था बल्कि अलानिया सब को दावत दे कर कहता था कि अगर तुम नजात पाना चाहते हो तो मसीह के ताबे हो जाओ। एक रोज़ सह और मैं धरग की गलियों में से जा रहे थे। वह खड़ा हो गया और कहने लगा, "मियाँ साहब, मैं जानता हूँ कि एक दिन ऐसा आएगा जब यह सब लोग ख़ुदावंद के पैरौ हो जाएँगे। काश कि ख़ुदा वह दिन मेरे मरने से पहले मुझे दिखा दे।"

एक दफ़ा बरियार में चौधरी साहब के एक नज़दीकी रिश्तेदार की शादी थी, और उसे भी दावतनामा भेजा गया। जब गाँव के नंबरदारों ने यह सुना तो उन्हों ने उसे कहला भेजा कि अगर तुम यहाँ आए तो हम तुम्हारी सख़्त

[1] यह सुलूक किताबे-मुक़द्दस की रूह से हद से ज़्यादा सख़्त लगता है। अगर चे ईमानदार को सिर्फ़ एक बीवी की इजाज़त है, तो भी जो ग़ैर-मसीही अल-मसीह पर ईमान लाए अगर उस की एक से ज़्यादा बीवी हो तो बेहतर यह है कि वह तमाम बीवियों के हुक़ूक़ क़ायम रखे। (ऐडीटर)

बेइज़्ज़ती करेंगे। जब ज़ैलदार को यह पैग़ाम मिला तो उस ख़ुदा के बंदे ने रत्ती भर पर्वा न की। उस ने घोड़ का दाना, अपना खाना , थाली, गिलास और हुक़्क़ले कर घोड़पर सवार हुआ और बरियार जा पहुँचा। वहाँ जा कर नंबरदारों को कहने लगा, “यह लो, मैं आ गया हूँ। जो सख़्त से सख़्त बेइज़्ज़ती तुम कर सकते हो कर लो और कोई बात बक़िन छोड़ा। अगर मैं ने तुम्हारी किसी गाली का जवाब भी दिया तो मेरी ज़ान जड़ से निकाल फैंकना।”

एक दफ़उस के मज़ूरों ने सोचा कि अब यह ईसाई हो गया है। चलो, उस के अह्काम की ख़िलाफ़वरज़ीकरो। जब चौधरी ने उन्हें किसी काम के करने को कहा तो उन्हों ने साफ़इन्कार कर दिया। ज़ैलदार बेड़तैश में आ गया। उन्हें झिड़क कर उन की मार-कुटाई की। जब मैं अगली दफ़ धरग गया और मुझे इस बात का पता लगा तो मैं उस के पीछे पड़गया और कहा कि अब तुम ईसाई हो। तुम को न तैश में आना चाहिए था और न उन्हें बेद मारने थे। वाजिब यही है कि अब तुम उन से इस ज़ुलम के लिए मफ़िमाँगो। मेरा यह कहना था कि उस ने सब को बुला भेजा और कहा, “भाइयो। मैं ने गुनाह किया कि तुम को बेद मारे। मुझे माफ़करो। और अगर तुम मुझे माफ़नहीं करते तो आओ। तुम में से हर एक मुझ से बदला ले और मुझे उतने बेद मारे जितने मैं ने उसे मारे थे।”

इस वाक़िए से हम को न सिर्फ़ैलदार के मिज़ाज की तबदीली का पता लगता है बल्कि वह रसूख़भी मालूम होता है जो एहसानुल्लाह को हासिल था। वह ख़ुद हलीम और मुंकसिरुल-मिज़ाज थे, लेकिन जहाँ हक़और बातिल का सवाल होता वहाँ वह लोहे की तरह सख़्त होते थे। जिस बात को वह हक़समझते उसे मनवा कर दम लेते थे। लोग उन के इस क़दर मुरीद हो चुके थे कि उन की बात को टालना गुनाह समझते थे। उन की बातों में जादू था, क्योंकि वह अपने नजात-दहिंदे की क़ुरबत में ज़िंदगी गुज़रते थे। उन की ज़िंदगी रूहुल-क़ुदस की क़ुव्वत और क़ुदरत से मामूर थी।

एक और दफ़का ज़िक्र है कि किसी गाँव के एक मुअज़्ज़ज़ शख़्स ने पुलिस के कहने सुनने में आ कर किसी के ख़िलाफ़ हाकिमे-ज़िला की अदालत में झूटी गवाही दे दी। जब एहसानुल्लाह को मालूम हुआ तो वह उसी वक़्त गाँव में गए और उसे घर से बाहर बुलाया। उस ने कहा, "आप अंदर चलें।"

जवाब मिला, "तुम्हारे घर के अंदर जाना मुझ पर हराम हो गया है।"

वह हैरान हो कर पूछने लगा, "क्यों जनाब, क्या हुआ है?"

उन्हों ने कहा, "अपने दिल से पूछ। तू ने एक बेगुनाह का ख़ून कर दिया है। तुझ को शर्म नहीं आती कि तू ने उस ज़बान से जिस से तू ख़ुदा का नाम लेता है झूट बोला है।"

उस ने कहा, "अच्छा। अब जो हो गया सो हो गया है, आइंदा ऐसा नहीं होगा।"

उन्हों ने फ़रमाया, "हरगिज़ नहीं। तू कल ही सियालकोट चल और हाकिमे-ज़िला के सामने अपने झूट का इकरार कर।"

उस ने जवाब दिया, "मियाँ साहब, क्या आप मुझे क़त्ल करवाना चाहते हैं? मैं हलफ़दरोग़ी में फंस जाऊँगा, और पुलिस वाले हमेशा के लिए मेरे दुश्मन हो जाएँगे। अगर मैं क़त्ल हो गया तो मेरी तमाम इज़्ज़त ख़ाक में मिल जाएगी, और मेरे बच्चे भूके मरेंगे।"

मियाँ साहब ने कहा, "अगर तुझ को सज़ामिली तो यह तुम्हारे कर्तूत की वाजिबी सज़ाहोगी। क्या उस बेगुनाह के बच्चे भूके नहीं मरेंगे? तुझे ख़ुदा का ख़ौफ़ नहीं?" मियाँ साहब उस के घर के अंदर नहीं गए जब तक उस ने तौबा करके उन के साथ सियालकोट जा कर हाकिमे-ज़िला के सामने इकरार करने का वादा न कर लिया। उन्हों ने रात को वहीं क़ियाम किया और अगली सुब्ह उसे साथ ले कर पच्चीस मील पैदल सियालकोट गए।

हुस्ने-इत्तफ़ाक़ से हाकिमे-ज़िला मसीही तबीअत का इनसान था। उस ने उसे बुला कर कहा, "हम तुम को इज़्ज़तदार समझते थे और सिर्फ़

तुम्हारी गवाही की बिना पर इस बेगुनाह शख़्स को सज़ादेने लगे थे। हम एहसानुल्लाह के एहसानमंद हैं कि उन की दिलेरी ने हम को एक गुनाह से बचा लिया। अब हम तुम को भी कुछ नहीं कहते। लेकिन ख़बरदार, आइंदा ऐसी हरकत न करना।”

ग़रज़युहन्ना ने एहसानुल्लाह को इल्यास नबी और यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले की रूह अता की थी। वह निडर हो कर लोगों को उन के गुनाह जता कर उन के ज़मीरों को झंझोड़ते थे। वह ख़ुदावंद की राहें तैयार करने को उस के आगे आगे चलते थे ताकि उस की उम्मत को नजात का इल्म बख़्शे जो उन्हें गुनाहों की मग़फ़िरत से हासिल हो।

तालीम और सोह्बत से शागिरदियत

उन दिनों में नारोवाल के इलाक़े में तक़रीबन 80 गाँव थे जिन में तक़रीबन तेरह सौ ईसाई रहते थे। उन के तक़रीबन सब लड़के मिशन के 24 स्कूलों में पढ़ते थे। ग़ैर-मसीही तुलबा को मिला कर उन की तादाद 230 थी जिन को मसीही और ग़ैर-मसीही उस्ताद इंजील पढ़ाते थे। उन्हें दीनी सवालो-जवाब भी सिखाया जाता था। उन में से बाज़ उस्ताद इंजील की तालीम को मानते भी थे। चुनाँचे एक सिक्ख उस्ताद ने कहा, “मेरा ईमान मसीह पर है, और मैं रोज़ाना इंजील को पढ़ाता हूँ, लेकिन मैं अलानिया इकरार नहीं कर सकता। सब लोग मेरे दुश्मन हो जाएँगे, और मुझे कुएँ से पानी तक नहीं मिलेगा।” एहसानुल्लाह इन तमाम स्कूलों का मुआइना करते थे और मसीही और ग़ैर-मसीही बच्चों की मज़हबी तालीम का ख़ास ख़याल रखते थे।

हम ऊपर बता चुके हैं कि मियाँ साहब गाँव के ईसाइयों की मज़हबी तालीम पर बहुत ज़ोर देते थे और इस बात पर ख़ास ध्यान देते थे कि उन के लड़के और लड़कियाँ मसीही तालीम में तरबियत पाएँ। उन के पास नारोवाल के बोर्डिंग में उस वक़्त 15 लड़के थे जिन को वह गाँव

के स्कूलों में से चुन कर नारोवाल लाए थे और जो ईसाइयों की आइंदा नसल की उम्मीद थे। ख़ुद उन्हों ने उन की दीनी परवरिश और मज़हबी तालीम अपने हाथ में ली। वह जब कभी किसी गाँव को जाते थे तो अपने हमराह बेड़लड़कों को भी ले जाते थे ताकि उन के दिलों में जोश पैदा हो। गहना मल लिखते हैं,

> जब एहसानुल्लाह किसी गाँव में जाते तो जो मुनाद वहाँ मुतअय्यिन होता उसे ख़बर पहुँचा देते कि फ़लाँ दिन फ़लाँ गाँव में इर्दगिर्द के देहात के मसीहियों को जमा कर लेना। ऐसे जलसों को "इकट्ठ" कहा करते थे। उन में वह "झंडा" के बेड़लड़कों को भी हफ़्ते से सोमवार तक ले जाते थे।
>
> उन के वाज़ सादा लेकिन निहायत मुअस्सिर होते थे। वह किसी तम्सील को ले लेते और उस के ज़रीए ऐसे सबक़आम-फहम पंजाबी ज़बान में देते थे जो लोगों के दिलों में जगह पा लेते थे। चूँकि यह सबक़देहात की ज़िंदगी से ताल्लुक़रखते थे इस लिए उन का समझना, याद रखना और दूसरों को सिखाना और भी आसान हो जाता था। इकट्ठ के वक़्त गर्मियों में लोगों को गुड़का शर्बत और सर्दियों में मकई या चने के दाने भून कर और उन में गुड़मिला कर दिया जाता था। मियाँ साहब भी लोगों के साथ वही खाया पिया करते थे। हम ने उन्हें गाँव में कभी चाय वग़ैरा पीते नहीं देखा। जब वह देहाती ईसाइयों के साथ या लड़कों के साथ किसी गाँव में जाते तो हमारे साथ पैदल चलते। जब हम उन्हें कहते कि आप घोड़ेपर सवार हो जाया करें तो वह फ़रमाते कि अगर मैं घोड़ेपर सवार हूँ और मेरे हमराही पैदल चलें तो यह मेरे लिए शर्म की बात होगी। जब हम ख़ुदा के काम पर जाते हैं तो हम एक दूसरे के साथी हैं और साथी बराबर के इनसान होते हैं। वह दिन भर पैदल मीलों सफ़र किया करते थे।

जब एहसानुल्लाह मुनादों और लड़कों के साथ पैदल सफ़र किया करते थे तो राह में इंजील की तालीम देते जाया करते थे। यह गोया उन का चलता फिरता इलाहियात की तालीम का स्कूल होता था। बाज़औक़ात

वह किताबे-मुक़द्दस के किसी वाक़िए पर गुफ़्तगू करते, कभी किताबे-मुक़द्दस में से किसी आदमी या औरत की ख़ूबियात पर बातचीत करते, कभी कोई मसला समझाते, कभी हिंदू और सिक्खमत के अक़ायद को समझाते, कभी इस्लाम और ईसाई ईमान के फ़र्क़ पर रोशनी डालते थे।

इस तरह वह अपने ईसाइयों के दिलो-दिमाग़ को रोशन करके उन पर मसीही ईमान की फ़ज़ीलत ज़ाहिर करते थे और साथ ही उन्हें सफ़र की तकान भी मालूम नहीं होती थी। लोग बेतअम्मुल झजके बग़ैर उन से सवाल करते। ननतीजे में दूसरे सवाल निकल आते थे। सब निहायत ग़ौर से उन का कलाम सुनते और उन का जोश देख कर ख़ुद जोश में आ जाते थे। और दूसरे लोगों से बेखौफ और जोशीले हो कर बात किया करते थे। यों उन का शख़्सी गुफ़्तगू का यह तरीक़ निहायत कार-आमद साबित होता था।

एहसानुल्लाह गर्मियों में उमूमन अपनी रातें गाँव के ईसाइयों के दरमियान गुज़ारते थे। रात के वक़्त जब लोग खाने से फ़ारिग़ हो जाते तो सब मियाँ साहब के इर्दगिर्द जमा हो जाते थे। इबादत के बाद दीनी मसायल पर गुफ़्तगू शुरू हो जाती। इस के बाद मैजिक लालटेन के ज़रीअए तस्वीरें दिखाई जातीं ताकि किताबे-मुक़द्दस के सबक़ लोगों के ज़ेहन-नशीन हो जाएँ। यह तस्वीरें पहर रात तक जारी रहती थीं। सुब्ह-सवेरे मुर्ग़ की बाँग पर वह उठ खड़े होते और दुआ में मशग़ूल हो जाते, फिर गाँव के ईसाइयों की इबादत करवाते। इस के बाद सब अपने अपने कामों के लिए चले जाते थे। मियाँ साहब सुब्ह के वक़्त रात की बासी रोटी मक्खन के साथ खा कर अपने साथियों और लड़कों के हमराह नारोवाल आ जाया करते थे।

मियाँ साहब की हमेशा यह कोशिश रही कि झंडा के बोर्डिंग हाउस के लड़कों में से उन्हें इंजील की ख़िदमत करने की तरग़ीब दें जो ग़ैरत रखते और जोशीले थे। गहना मल लिखते हैं,

> जब मैं सने-बलूग़त को पहुँचा तो उन्हों ने मुझे ज़्यादा दुनियावी तालीम देने के बजाए अपने साथ रख लिया ताकि मैं उन से इल्मे-इलाही हासिल करूँ। मैं ने उन की दिन रात की सोह्बत से बहुत फ़ायदा उठाया। उन्हों ने मेरी दीनी तालीम को अपने हाथ में लिया और मुझे किताबे-मुक़द्दस की बाक़ायदा तालीम देने लगे। इस के इलावा उन्हों ने मुझे हिंदुओं, मुसलमानों, सिक्खों और बुतपरस्तों में इंजील की तबलीग़ के मुख़्तलिफ़ तरीक़े सिखाए। उन्हों ने ख़ुद अपनी ज़िंदगी को मसीह की ख़ातिर वक़्फ़ कर रखा था, और इस तरह मुझे और मेरे ऐसे लड़कों को गाँव के मसीहियों और ग़ैर-मसीहियों के लिए अपनी ज़िंदगियों को मख़सूस करने का सबक़ सिखाया।

इस तर्ज़े-अमल का यह नतीजा हुआ कि जितने लड़के उन के हाथों से निकले वह सब के सब गाँव में इंजील की ख़िदमत करने लगे और गाँव की जमातों की इस्तिक़ामत का बाइस हुए। गहना मल का ख़त और नारोवाल मिशन की रिपोर्टें ज़ाहिर करती हैं कि एहसानुल्लाह के कारीगर हाथों ने उन लड़कों की ज़िंदगियों को इबतिदा ही से ऐसे साँचे में ढाला कि उन के दिलों में गाँव की जमातों में काम करने का शौक़ हो जाता था। अभी जब वह बच्चे होते तो गाँव में जा-जा कर इबादत के वक़्त गीत गाते थे। बाज़ारों और मेलों में उन के गीतों की आवाज़ से हुजूम इकट्ठे हो जाया करते थे। जब वह बड़े हुए तो ख़ुद तालीम हासिल करके औरों को तालीम देने लगे। जब उन्हों ने स्कूल छोड़ा तो वह इंजील की ख़िदमत के लिए जोशीले जवान थे जिन्हों ने निहायत ख़ुलूस-दिली से अपनी ज़िंदगियाँ ख़ुदा की ख़िदमत के लिए वक़्फ़ कर दी थीं।

अहलिया की स्कूलों में ख़िदमत

एहसानुल्लाह को न सिर्फ़ लड़कों की तालीम का ख़याल था बल्कि वह लड़कियों की तालीम पर भी ध्यान रखते थे। उन्हें यह एहसास था कि

आज की लड़कियाँ कल बच्चों की माएँ होंगी जिन की गोद में पंजाब की जमात का मुस्तक़बिल खेल रहा होगा। चुनाँचे वह अज़हद कोशिश करते थे कि जो स्कूल मिशन ने क़ायम किए थे उन में लड़कियाँ ज़रूर दाख़िल की जाएँ। इस काम में उन की अहलिया उन का हाथ बटाती थीं। वह ख़ुद जोशीली तबीअत की ख़ातून थीं। जब वह नारोवाल आतीं तो मुसलमान रिश्तेदारों के घरों में इंजील का पैग़ाम सुनातीं और “झंडा” के घर के इर्दगिर्द के हिंदुओं और सिक्खों के घरों में जाया करती थीं। उन्हों ने इस क़दर रसूख़ पैदा कर लिया था कि जब उन्हों ने नारोवाल में पहला लड़कियों का स्कूल खोला तो ग़ैर-मसीही घरों की लड़कियाँ इस में धड़ाधड़ दाख़िल हो गईं। यह स्कूल एक हवेली में था जिस के सामने वसी मैदान था। इन लड़कियों को इंजील की तालीम भी दी जाती थी और इंजील की आयात हिफ़्ज़ करवाई जाती थीं। मियाँ साहब की अहलिया इस स्कूल का इंतज़ाम चलाती थीं।

नारोवाल की लड़कियों के स्कूल के इलावा गाँव के स्कूलों में भी लड़कियाँ पढ़ती थीं। मियाँ साहब की मुसलसल कोशिशों की वजह से दो सालों के अंदर उन की तादाद 102 तक पहुँच गई थी। लड़कियों का एक और स्कूल नारोवाल से चार मील के फ़ासिले पर कोटली बाजवा में खोला गया। मियाँ साहब की अहलिया इस स्कूल का इंतज़ाम भी चलाती थीं। नारोवाल के स्कूल में तो वह हर रोज़ जाया करती और उस की देख-भाल के इलावा लड़कियों की तमाम जमातों को इंजील के सबक़ दिया करती थीं। कोटली बाजवा के स्कूल में वह हफ़्ते में एक रोज़ जा कर लड़कियों को इंजील का सबक़ हिफ़्ज़ करवाती और उन की माओं से दीनी गुफ़्तगू किया करती थीं। बाज़ औक़ात उन के बेटे क़ुर्बान और नज़ीर उन के हमराह होते थे। तब वह लड़कियों के लिए दिलचस्पी का बाइस और उन की माओं के लिए हिफ़्ज़ाने-सेहत के जीते जागते सबक़ होते थे। मुहतरमा दोनों स्कूलों की लड़कियों को किताबे-मुक़द्दस की आयात हिफ़्ज़ करवातीं और उन्हें किताबे-मुक़द्दस की कहानियाँ ऐसे

दिलचस्प तरीक़े से सुनातीं कि तमाम स्कूलों में ख़ुशी तारी हो जाती थी। जब साल के बाद मीलादे-मसीह का मुबारक दिन आता तो दोनों स्कूलों की लड़कियों को इनाम दिए जाते और शीरीनी बाँटी जाती जिस को यह लड़कियाँ न भूलतीं। इस के इलावा वक़्तन-फ़वक़्तन न सिर्फ़ नारोवाल के स्कूलों में बल्कि देहात के तमाम स्कूलों में मैजिक लालटेन के ज़रीए तस्वीरें दिखाई जाती थीं जिन को न सिर्फ़ तुलबा और तालिबात बल्कि उन के माँ-बाप, भाई-बहन और दीगर रिश्तेदार बड़े शौक़ से देखने आते। यों लोग नजात के पैग़ाम से वाक़िफ़ हो जाते थे।

नारोवाल में नई इबादतगाह की तामीर

बेटमन, एहसानुल्लाह और उन के साथियों की दिन रात की मेहनत और मुतवातिर कोशिशें फल लाने लगीं। देहात की जमातें ख़्वाबे-ग़फ़लत से बेदार हो कर अंगड़ाइयाँ लेने लगीं। जो लोग पहले इबादत के नाम से कोसों दूर भागते और मसीही अह्काम और उसूले-दीन को सीखना एक नाक़ाबिले-बरदाश्त बोझ तसव्वुर करते थे वह अब न सिर्फ़ इबादतों में हाज़िर होते बल्कि दूसरों को भी अपने हमराह लाते थे। ख़ूबसूरत जब वह सुनते थे कि एहसानुल्लाह किसी गाँव में आ रहे हैं तो वह मीलों पैदल चल कर आते, क्योंकि मियाँ साहब की मसीही तबीअत थी। उन के वाज़ सादा होने के इलावा दिल को खैंच लेते थे, और उन के मुँह से इस जोश से उन की ज़बान से निकलते थे कि वह दिलों को पार करते थे। अब गाँव के ईसाइयों को इबादत में हाज़िर होने की आदत पड़गई, बल्कि वह ईदों और तहवारों के मौक़े पर दस-दस बारह-बारह मील पैदल सफ़र करके नारोवाल की इबादतगाह में इबादत करने के लिए आने लगे।

जब बेटमन ने देखा कि इबादतगाह अब छोटा हो गया है और गाँव के ईसाई इबादत में इस कसरत से आने लगे हैं कि वह इबादतगाह में समा नहीं सकते तो उन्हों ने मौजूदा वसी इबादतगाह को तामीर करने का

ख़याल किया। इस जगह के सामने बरूस और फ़िट्ज़पैट्रिक ने सड़क के किनारे पर एक बिड़के दरख़्त के नीचे नारोवाल के बाशिंदों को 24 साल पहले इंजील जलील का जाँफ़िज़ा पैग़ाम सुनाया था। यह मक़ाम निहायत मौज़ूँ भी था।

इत्तफ़ाक़ से उन दिनों सियालकोट की एक पुरानी इबादतगाह मिस्मार की गई थी, और उस की छत की मश्हूर नीली मुलतानी टायलें दस्तयाब हो गईं। मौजूदा इबादतगाह वसी पैमाने पर बनाई गई जो बेटमन के ईमान का शाहिद है कि एक दिन ऐसा आएगा कि तमाम नारोवाल मसीह की जमात में शामिल हो जाएगा और नारोवाल और इर्दगिर्द के मसीही, सब के सब हज़ारों की तादाद में इस इबादतगाह में ज़मीन पर बैठ कर ख़ुदा की इबादत कर सकेंगे।

इबादतगाह 1892 में मुकम्मल हो गई।

7 पूरे पंजाब की ख़िदमत

मुंबई की कान्फ़्रेंस (1893)

हम बता चुके हैं कि जब ख़ुदा ने एहसानुल्लाह को इंजील जलील की तबलीग़ और जमातों की ख़िदमत के लिए बुलाया तो जमातों में चारों तरफ़ से लोग शामिल हो रहे थे। यह अम्र शमाली हिंदुस्तान और पंजाब के दौरे-जदीद के लिए बिलकुल नया था। हर तब्क़े, ज़ात और मिल्लत के आदमी और औरतें उस में आ गई थीं। मसीह की जमात एक नई माजूने-मुरक्कब[1] थी जिस के अज्ज़ा गुज़श्ता ज़माने में एक दूसरे से बिलकुल अलग-थलग रहते थे लेकिन अब एक ही जमात के बदन में पैवस्ता हो गए थे, और एक ही रूह के वसीले से ज़िंदा थे। उन के बुलाए जाने की उम्मीद भी एक ही थी, उन का एक ही ईमान था, एक ही ख़ुदावंद, एक ही बपतिस्मा था। सब का ख़ुदा और बाप एक ही था। उन में से हर एक पर मसीह का फ़ज़्ल हुआ था।

ख़ुदा ने एहसानुल्लाह को अपनी ख़िदमत के लिए बुलाया ताकि वह दाना ठेकेदार की तरह मसीह की बुनियाद पर पंजाब की जमात की एक ऐसी इमारत खड़ी करें जो ख़ुदावंद का पाक मक़्दस बनता जाए। इस मक़्सद के तहत उन्हों ने वह उसूल क़ायम किए जिन का ज़िक्र हो चुका है। रफ़्ता रफ़्ता उन का नाम न सिर्फ़ पंजाब बल्कि शिमाली हिंदुस्तान के मुख़्तलिफ़ कोनों में सुनाई देने लगा, और मसीही मुबल्लिग़ीन उन के क़ायम करदा उसूलों पर अमल करने लगे।

1893 के अवायल में मुख़्तलिफ़ जमातों और परदेसी मिशनों की एक कान्फ़्रेंस मुंबई में मुनअक़िद हुई ताकि मुख़्तलिफ़ मसायल पर जो जमातों के दरपेश थे ग़ौर किया जाए और तमाम हिंदुस्तान के लिए एक

---

[1]कोई मुरक्कब दवा जो कई दवाओं को मिला कर आटे की तरह गूँध कर बनाई गई हो।

तर्ज़े-अमल इख़्तियार किया जाए। हिंदुस्तान के हर सूबे की जमात के सामने वही मुशकिलात थीं जो पंजाब की जमात के सामने थीं। फ़र्क़ सिर्फ़ यह था कि पंजाब में यह मसायल ग़ालिब नज़र आने लगे थे। चुनाँचे हिंदुस्तान के सूबों की आँखें पंजाब की जानिब लगी हुई थीं ताकि मालूम करें कि पंजाबी मसीही उन्हें किस तरह हल करते हैं। लिहाज़ा एहसानुल्लाह को मुंबई भेजा गया ताकि वह कान्फ़्रेंस को बताएँ कि ख़ुदा ने नारोवाल के इलाक़े में ख़ुसूसन और पंजाब में उमूमन कैसे बड़े बड़े काम किए हैं।

मिरज़ाए-क़ादियानी के साथ मुबाहसा

उसी साल यानी 1893 के मई और जून के महीनों में अमृतसर में वह ज़बरदस्त तहरीरी मुबाहसा हुआ जिस ने क़ादियानी फ़िरक़े को जड़ और बुनियाद से हिला दिया। मिरज़ाए-क़ादियानी ने बाज़ जाहिल मुसलमानों को यह कह कर अपने जाल में फाँस रखा था कि ख़ुदा ने उसे तज्दीदे-इस्लाम के लिए भेजा है और कि वह अल्लाह से मामूर हुआ है कि मसीहियों को शिकस्त दे। उन अय्याम में चारों तरफ़ से मुसलमान अल-मसीह के पैरोकार हो रहे थे। मिरज़ाए-क़ादियानी को अपनी नमूद की बक़ा के लिए यह सूझी कि मुसलमानों की तरफ़ से ईसाइयों के साथ मैदाने-मुनाज़रे में आए हालाँकि उलमाए-इस्लाम ने मुत्तफ़िक़ा तौर पर उसे काफ़िर और ख़ारिज-अज़-इस्लाम क़रार दे दिया हुआ था। लेकिन मिरज़ाए-क़ादियानी ने ईसाइयों को चैलेंज दे दिया। जमात में ग़यूर उलमा की कमी न थी। अफ़ग़ान नौमुरीद डाक्टर हैनरी मार्टिन क्लार्क ने ईसाइयों की तरफ़ से चैलेंज क़बूल कर लिया और यह क़रार पाया कि अमृतसर में उन के घर के वसी इहाते में मिरज़ा ग़ुलाम अहमद क़ादियानी और डिप्टी अब्दुल्लाह आथम के दरमियान पंद्रह रोज़ (अज़ 22 मई ता 5 जून) तहरीरी मुबाहसा हो।

पंजाब भर के ईसाई और मुसलमान दूर-दूर से इस मुबाहसे को सुनने के लिए आए। यह मैदान वसी था, और लोग हज़ारों की तादाद में मुबाहसा सुनने के लिए चारों तरफ़से टूट पड़े। डाक्टर हैनरी मार्टिन क्लार्क ईसाइयों की तरफ़से सदर थे। मुबाहसे के दौरान जब डिप्टी अब्दुल्लाह आथम (जो ज़ईफ़-उम्र लेकिन जवाँ-हिम्मत थे) बीमार हो गए तो डाक्टर क्लार्क ने मिरज़ाए-क़ादियानी से मुबाहसा किया। उस रोज़ (29 मई) एहसानुल्लाह पंजाब के ईसाइयों की तरफ़से सदर मुक़र्रर हुए।

यह मुबाहसा किताब "जंगे-मुक़द्दस" में महफ़ूज़ है। जब मिरज़ा क़ादियानी ने देखा कि मैदान उस के हाथ से जाता है तो वह बददुआ के कमीने हथियार पर उतर आया। उस ने कहा कि डिप्टी अब्दुल्लाह आथम पंद्रह माह के अंदर मर जाएगा। लेकिन ख़ुदा ने मिरज़ा का पोल खोल दिया, और 6 सितंबर के रोज़ डिप्टी साहब का अमृतसर में जुलूस निकाला गया। हर जगह मसीही ईमान की फ़तह के शादियाने बजने लगे, और क़ादियान को ज़बरदस्त शिकस्त हासिल हुई।

मुनाज़रे के दिनों में एहसानुल्लाह मुसलमान तालिबाने-हक़ की तलाश में सरगर्म थे। जब मुनाज़रे का वक़्त ख़त्म हो जाता तो मियाँ साहब के गिर्द मुसलमानों का झमगटा लग जाता और वह उन से हर क़िस्म के सवाल करते। चूँकि मियाँ साहब उस दौर में से ख़ुद गुज़र चुके थे वह उन के मुख़्तलिफ़ सवालों के जवाब देने की अहलियत रखते थे। उन के दिल में अपने मुसलमान भाइयों के लिए एक तड़प थी जो उन्हें चैन न लेने देती थी। वह हर मुम्किन कोशिश करते थे कि जिस तरह भी हो सके उन्हें नजात-दहिंदे के क़दमों में लाएँ।

इस मुनाज़रे से हम को मालूम हो सकता है कि पंजाब की जमातें एहसानुल्लाह को किस क़दर की निगाह से देखती थीं। अमृतसर में मुनाज़रे के दिनों में जमात के आलिम और साहबे-वक़ार मौजूद थे, लेकिन जिस रोज़ डाक्टर हैनरी मार्टिन क्लार्क ने अब्दुल्लाह आथम की

जगह मुबाहसा किया तो उस ने मियाँ साहब को सदर होने की पेशकश की। क़ादियानी उस रोज़ फ़साद पर तुले बैठे थे, क्योंकि सब सामिईन को नज़र आ रहा था कि मिरज़ाए-क़ादियानी उलटे-सीधे जवाब दे रहा है। लेकिन मियाँ साहब ने ऐसी ख़ूबी-उस्लूबी से सदारत के फ़राइज़ को सरअन्जाम दिया कि सब अश-अश करते रह गए।

प्रीस्ट के ओहदे पर तक़र्रुर

अमृतसर से वापस आ कर एहसानुल्लाह पहले की तरह काम करने लगे। वह हर साल छः हफ़्तों के लिए गेहूँ की कटाई के मौसम में मसीही उस्तादों और जवान मुनादों को रइय्या में इकट्ठा करते और उन्हें तालीम दे कर अपनी जमातों की दिलो-जान से ख़िदमत करने के लिए उभारते रहते थे। हसबे-मामूल "झंडा" के लड़कों को हर हफ़्ते की दोपहर को गाँव में ले जाते, राह में उन्हें किताबे-मुक़द्दस की तालीम देते और उन्हें गाँव को ज़ूर और गीत सिखाने को फ़रमाते थे। साथ साथ वह नारोवाल के बाज़ार, हस्पताल, स्कूल वग़ैरा में ख़ुदावंद की नजात का पैग़ाम सुनाने में मशग़ूल रहते थे।

उस साल में ख़ुदा ने एक बेटी अता की जिस का नाम रोज़ी-ऐन रखा गया। चूँकि यह उन की इक्लौती बेटी थी उसे वह बड़ प्यार किया करते थे।

1895 में एहसानुल्लाह का तक़र्रुर शिमला में प्रीस्ट के ओहदे पर किया गया। उस साल की रिपोर्ट में बेटमन लिखते हैं,

> एहसानुल्लाह लाहौर के कॉलेज से वापस नारोवाल आ गए हैं। वहाँ वह प्रीस्ट होने की तैयारी कर रहे थे। अब वह अपने ख़ूबसी जोश के साथ अपने फ़राइज़ सरअन्जाम दे रहे हैं। उन्हों ने डीकन के फ़राइज़ को इस ख़ूबी से पूरा किया है कि मैं उस ख़ुशी को लफ़्ज़ों में अदा नहीं कर सकता जो मुझे यह ख़बर पाने पर हुई कि मैं उन में हूँगा जो उन के सर पर हाथ

रखेंगे। तक़रीर की इबादत के वक़्त इबादतगाह खचाखच भरी हुई थी। क्योंकि हर शख़्स उन के तक़रीर के मौक़े पर इबादत में शरीक होना चाहता था। लेकिन अगर अहालियाने-शिमला को यह इल्म होता कि मशहूरो-मारूफ़ एहसानुल्लाह के साथ एक ऐसा शख़्स भी प्रीस्ट के ओहदे पर मुक़र्रर होने वाला है जिस का वह मुसलमान होने के वक़्त सख़्त मुख़ालिफ़ था तो आधा शिमला वहाँ हाज़िर हो जाता। यह शख़्स एच.ऐफ़ब्यूटल था जो किसी ज़माने में नारोवाल में इंजील का मुबल्लिग़ था और जिस का एहसानुल्लाह पीछा नहीं छोड़ता था।

जनरल बूथ के हमराह

उन ही अय्याम में एक वाक़िआ रूनुमा हुआ जिस ने एहसानुल्लाह के ख़यालात में इन्क़िलाब पैदा कर दिया। सॉल्वेशन आर्मी के बानी जनरल विलियम बूथ ने हिंदुस्तान आ कर पंजाब में लेक्चर दिए। मियाँ साहब ने इन लेक्चरों का तर्जुमा करने की पेशकश की थी जो उन्हों ने बड़ी ख़ुशी से मंज़ूर कर ली थी। चनाँचे शिमाली हिंद में उन्हों ने लेक्चर दिए जिन का तर्जुमा मियाँ साहब ने किया। जनरल बूथ बेहद ज़बरदस्त मुक़र्रिर थे। उन की तक़रीर में बड़ी गर्म-जोशी थी, और मियाँ साहब के तर्जुमे से शोले निकलते थे। इन तक़रीरों ने हर जगह आग लगा दी। जमातों की नीमगर्मी तपिश से तबदील होने लगी।

उन अय्याम में इंगलैंड में सॉल्वेशन आर्मी के निज़ाम, ज़ाबिता, काम के तरीक़े बल्कि उस के वुजूद तक को लान-तान का निशाना बनाया जाता था, और जनरल बूथ को हर बात में मलामत की जाती थी।

सॉल्वेशन आर्मी के पैरोकार आम ईसाई जमात के निज़ाम को छोड़ कर फ़ौजी निज़ाम के मुताबिक़ मुनज़्ज़म हुए थे। इस के इलावा वह बपतिस्मा और अशाए-रब्बानी की रुसूम को अदा नहीं करते थे। इस लिए बाज़ बिशपों ने यह कहना शुरू कर दिया कि वह ईसाई नहीं।

जब लाहौर के बिशप मैथ्यू ने सुना कि एहसानुल्लाह जनरल बूथ का हर जगह तर्जुमा कर रहे हैं तो उन्हों ने मियाँ साहब को बुला भेजा ताकि उन्हें समझाएँ। कफ़िबह्स-मुबाहसे के बाद बिशप ने पूछा,

"क्या तुम्हारा दिल यह गवाही देता है कि जो तुम कर रहे हो वह किताबे-मुक़द्दस और ख़ुदावंद मसीह के हुक्म के मुताबिक़ है? और अगर तुम यह न करो तुम ख़ुदा के हुक्म की ना-फ़रमानी करोगे?"

एहसानुल्लाह ने जवाब दिया, "हाँ, जनाब।"

बिशप ने कहा, "अगर बात यों ही है तो तुम को मेरी तरफ़ से इजाज़त है। मैं नहीं चाहता कि तुम ख़ुदा के हुक्म और अपने ज़मीर की ख़िलाफ़वरज़ी करो। अगरचे यह बात चर्च आफ़ इंगलैंड के आईन और मेरी मरज़ी के ख़िलाफ़ है।"

इस के बाद दोनों ने घुटने टेके। बिशप साहब ने दुआ की और उन्हें बरकत दे कर रुख़्सत किया।

इस वाक़िए के बाद एहसानुल्लाह के दिल में मग़रिबी जमातों के क़ायदो-आईन के मुताल्लिक़ तरह-तरह के सवालात पैदा हो गए। वह ख़याल करने लगे कि क्या यह दुरुस्त बात है कि हिंदुस्तान की जमातों को इन क़ायदो-आईन की ज़ंजीरों में ऐसा जकड़ा जाए कि वह टस से मस न हो सकें? क्या यह जायज़ है कि उन के क़ायद पर चल कर हिंदुस्तान की जमातें आपस में इस तरह बट जाएँ कि वह एक दूसरे से ग़ैर हो जाएँ? क्या यह मुनासिब है कि उन के उसूल जिन की बिना पर वह एक दूसरे की मुख़ालिफ़ हैं और जिन का सिरे से हिंदुस्तान से कोई ताल्लुक़ नहीं मग़रिबी ममालिक से बरामद करके हिंदुस्तान में दर-आमद किए जाएँ ताकि वह यहाँ की सरज़मीन में फलें फूलें? क्या यह बात ख़ुदावंदी मन्शा के मुताबिक़ है कि यहाँ की जमात यगानगत पाने की बजाए मुख़्तलिफ़ फ़िर्क़ों में बट कर कमज़ोर और ना-तवाँ हो जाए ऐसा कि वह हिंदूमत, सिक्ख मज़हब और बुतपरस्ती का पुख़्ता मुक़ाबला न कर सके? क्या यह वाजिब और मुनासिब है कि हिंदुस्तानी जमात मग़रिबी ममालिक

के मसीहियों की रविश, पोशाक, मजलिसी आदाब वग़ैरा को इस तौर पर अपना ले कि उन्हें मसीही पोशाक, मसीही आदाबे-माशरत, मसीही नाम, मसीही तर्ज़ेरिहाइश वग़ैरा कहा जाए? जितना वह इन बातों पर सोच-बिचार करते थे उतना ही वह इन सवालात के जवाब नफ़ीमें पाते थे। अब वह मग़रिबी ममालिक की जमातों के क़वायदो-आईन और उन के तौर-तरीक़ेंसे बेज़ारी ज़ाहिर करने लगे, और यह बेज़ारी हर साल बढ़ती गई। वह ख़ुतो-जलवत में अपने ख़यालात का इज़हार करते थे ताकि जमात के समझदार अर्कान इसे रोकने के लिए कमरबस्ता हो जाएँ। वह पंजाब की जमात को कहते थे,

> بال بکشا و صفیر از شجرِ طوبےٰ زن
> حیف باشد چو تو مُرغے کہ اسیرِ قفسی
>
> छोटे, अपने परों को खोल और फ़िर्दौस के दरख़्त से उड़
> ऐ परिंदे, अफ़्सोस क्योंकि तू पिंजरे का क़ैदी है।

अब तो बिशप भी रुकावट का बाइस नहीं थे। चुनाँचे एहसानुल्लाह बेखटके जनरल बूथ के साथ मुख़्तलिफ़शहरों में गए और उन की तक़रीरों का तर्जुमा करते रहे। यह ना-मुमकिन था कि वह जनरल जैसे ज़बरदस्त वायज़के वाज़ेंसे ख़ुद मुतअस्सिर न होते। गहना मल लिखते हैं,

> जब जनरल बूथ अमृतसर आए तो इलोक़ेजस्सड़के मसीहियों के हमराह ख़ाकसार भी अमृतसर पहुँचा। वहाँ मुख़्तलिफ़जमातों के बहुत लोग जलसों में शिर्कत के लिए आए हुए थे। जनरल बूथ अंग्रेज़ीमें तक़रीर करते और बुज़ुर्ग एहसानुल्लाह उन का तर्जुमा करते थे। तर्जुमा करने से पहले वह जनरल साहब के साथ मुद्दत तक दुआ किया करते थे। यही वजह थी कि ख़ुदा ने उन्हें इस मौक़ेपर निहायत आला तौर पर इस्तेमाल किया। लेक्चर के दौरान तर्जुमा करते करते वह रोने लगे। रूह का नुज़ूल उन पर इस ज़ोर से हुआ कि क़वी-हैकल और ताक़तवर होने के बावुजूद

वह सँभल न सके और ज़मीन पर गिर पड़े इधर मुतर्जिम का यह हाल था और उधर सामिईन का यह हाल था कि सब चीख़ मार मार कर रो रहे थे और बेइख़्तियार ख़ुदा के हुज़ूर अपने गुनाहों को इकरार कर रहे थे। सब से पहले उन पर ही रूहुल-क़ुद्स की बख़्शिश नाज़िल हुई।

जब जलसा बर्ख़ास्त हुआ तो हम रात को वापस अजनाला पहुँचे। मियाँ साहब वहाँ हम से पहले पहुँचे हुए थे। वहाँ मिशन इहाते में एक दुआइया जलसा हुआ। बुज़ुर्ग मियाँ साहब ने ऐसा पुरजोश वाज़ फ़रमाया कि वहाँ के ईसाइयों पर भी वही हालत तारी हो गई जो अमृतसर के जलसे में हुई थी। लोग अपने गुनाहों को याद करके दहाड़ मार कर रोने और तौबा करने लगे। आधी रात गुज़रने पर भी गुनाहों का इकरार और रोना न थमा।

जब सुब्ह हुई तो हम दुआ के बाद रइय्या की जानिब रवाना हो गए। लेकिन बुज़ुर्ग मियाँ साहब मौज़ा खिचियाँ की राह से रात को मौज़ा माच पहुँच गए। उस गाँव के मसीही अनपढ़ जाहिल थे। लेकिन बाबू भाना मुनाद की ज़बानी मैं ने सुना कि जब बुज़ुर्ग मियाँ साहब वाज़ करने खड़े हुए तो हमें ऐसा मालूम होता था कि वह नहीं बोल रहे बल्कि उन की मारिफ़त ख़ुदा हम से कलाम कर रहा है। देहाती मसीही अपने गुनाहों को याद कर करके उन का ख़ुदा के सामने अलानिया इकरार करते और रोते छाती पीटते थे। ख़ुदा ने वहाँ की जमात में अजीब तौर पर अपनी हुज़ूरी ज़ाहिर की। वहाँ से वह नारोवाल चले गए।

जनरल बूथ के साथ दिन रात रहने और उन की सोह्बत से फ़ैज़याब होने का नतीजा यह हुआ कि एहसानुल्लाह उन के दिल-दादा हो गए। उन की रूहानी ज़िंदगी ने मुख़्तलिफ़ मदर्जों को दिनों में तै कर लिया। अब उन्हें अपने नजात-दहिंदे ख़ुदा की क़ुरबत की लौ लगी, और उन में रूहों को ख़ुदावंद मसीह के लिए जीतने की तड़प बहुत ज़्यादा हो गई।

सॉल्वेशन आर्मी के बाज़तरीक़े ने उन की आँखें खोल दीं। उन्हों ने देखा कि सॉल्वेशन आर्मी के परदेसी मुबल्लिग़ीन अंग्रेज़ियत को ख़ैरबाद कह कर हिंदुस्तानी लिबास पहनते हैं, हिंदुस्तानी नाम रख लेते

हैं, हिंदुस्तानी तर्ज़-मुआशरत को इख़्तियार करके, हिंदुस्तानी हो कर हिंदुस्तान को ख़ुदावंद मसीह के क़दमों में लाना चाहते हैं। इस बात ने मियाँ साहब के दिल को सॉल्वेशन आर्मी की जानिब खैंच लिया।

यह सॉल्वेशन आर्मी का इबतिदाई ज़माना था जब उस के "अफ़्सर" सादा ज़िंदगी बसर करते और हर बात में देसी तरीक़े को इख़्तियार करते चले जाते थे। मुझे ख़ूब याद है कि एक दफ़ा "कमिशनर" मथियाह ने बताया कि जब वह चेन्नाई में सॉल्वेशन आर्मी में मसीही हो कर शामिल हुए और तबलीग़ का काम करने लगे तो वह ग़ैर-मसीही साधुओं की तरह दर-ब-दर भीक माँगा करते थे। एहसानुल्लाह को यह तरीक़ा निहायत पसंद आया, और बाद में उन्हों ने भी अपने और अपने चेलों के लिए यही तरीक़ा तज्वीज़ किया।

सॉल्वेशन आर्मी का तरीक़ा-ए-इबादत भी उन के लिए निराला था। अब तक तो वह इबादत के वक़्त सिर्फ़ चर्च आफ़ इंगलैंड की दुआए-आम की किताब की दुआएँ ही पढ़ा करते थे जिस तरह वह मुसलमान होने के अय्याम में अरबी नमाज़ पढ़ा करते थे। लेकिन अब उन्हों ने देखा कि सॉल्वेशन आर्मी की इबादत में ज़बानी दुआएँ की जाती हैं जो दुआ करने वालों के दिलों से निकलती हैं, और हर फ़िक़्रे के बाद "आमीन" और "हैलेलूयाह" के नारे लगाए जाते हैं जिन से इबादत-गुज़ारों के दिलों में जोश पैदा हो जाता है। कहाँ दुआए-आम की किताब के नाज़ुक तसव्वुरात, लतीफ़ मुहावरात और जचे-तुले अलफ़ाज़ और कहाँ इन जज़्बाती नारों की कशिश और तासीर! कहाँ ख़ादिमुद-दीन के मीकानिकी तर्ज़-बयान और लम्बे वाज़ और कहाँ "अफ़्सरों" की जोश दिलाने वाली तक़रीरें! कहाँ ज़ाहिर-परस्ती की रुसूम और कहाँ सादगी और गुदाज़!

इन बातों ने एहसानुल्लाह के दिल को मोह लिया। क़िबला रहमत मसीह वायज़ लिखते हैं,

> जनरल बूथ ने कई दिन अमृतसर में वाज़ किए। एहसानुल्लाह उन के मुतर्जिम थे। मैं भी और फ़तह मसीह भी वहीं थे। जनरल साहब के वाज़ो-नसाइह से मुतअस्सिर तो हम भी बेहद हुए मगर एहसानुल्लाह तो उन ही के हो रहे और उन ही के साथ चल दिए। हिंदुस्तान में जगह जगह उन के साथ फिरते फिराते और उन की तक़रीरों का तर्जुमा करते कराते वह उन के साथ लंदन चले गए। कुछ अर्सा इंगलैंड रह कर अपने आज़ादाना वाज़ सुना कर बहुतों को ख़ुश और बहुतों को नाराज़ करके वापस आ गए।

इंगलैंड के अख़बारों में जनरल बूथ और उन के हामियों पर बराबर हमले होते रहते थे, और उन के तरीक़े पर हर जगह नुक्ता-चीनी की जाती थी जिस का वह भी तुरकी-ब-तुरकी जवाब देते थे। जब एहसानुल्लाह लंदन पहुँचे तो चर्च मिशनरी सोसायटी को पता चला कि हमारा एक इज़्ज़तदार रुकन जनरल बूथ के हमराह इंगलैंड आ गया है और अब मुख़्तलिफ़ जगहों में तक़रीरें करते हुए फिर रहा है। इस से बेशुमार लोग मुतअस्सिर हो रहे हैं और सॉल्वेशन आर्मी और जनरल का वक़ार बढ़ता जा रहा है। जब यह मालूम हुआ तो एक क़ियामते-सुग़रा बरपा हो गई। इत्तफ़ाक़ से उन दिनों बटाला के आलिम वायटब्रेख़्त रुख़सत पर लंदन गए हुए थे। सोसायटी ने उन्हें बुला भेजा और कहा कि किसी न किसी तरह एहसानुल्लाह को समझाओ और वापस अपने साथ पंजाब ले जाओ ताकि यह बला टल जाए। इधर वायटब्रेख़्त ने एहसानुल्लाह को समझाना शुरू किया, उधर जमात के लोग दुआ करने लगे।

वायटब्रेख़्त निहायत मर्दुम-शनास शख़्स थे जिन के एहसानुल्लाह के साथ पुराने ताल्लुक़ात थे। वह उन्हें अपने घर ले गए जहाँ वह कई दिन उन के मेहमाने-अज़ीज़ रहे। बातों बातों में मालूम हुआ कि मियाँ साहब ने न तो अपनी जमात को ख़ैरबाद कहा है और न वह सॉल्वेशन आर्मी में भर्ती हुए हैं। वायटब्रेख़्त उन के रुज्हानात और तबीअत से ख़ूब वाक़िफ़ थे। उन्हों ने दलायलो-बुर्हान से उन्हें क़ायल कर दिया कि जिस चीज़ की

तलाश में वह थे वह शय उन्हें उन के मौजूदा रवय्ये से हासिल नहीं हो सकती।

जब एहसानुल्लाह इंगलैंड पहुँचे तो उन की यह बड़ी ख़्वाहिश थी कि जिस तरह वह जनरल बूथ की सोह्बत से फ़ैज़याब हुए हैं वह मश्हूर वायज़ चार्ल्स स्पर्जन के अह्बाब से मुलाक़ात करके उन से जमातों को बेदार करने के तरीक़े और वसीले मालूम करें। स्पर्जन एक निहायत ज़बरदस्त वायज़ था जिस ने झंझोड़ दे दे कर इंगलैंड के हर छोटे बड़े को वज़ीरे-आज़म ग्लैडस्टन से ले कर मामूली मज़दूर तक को जगा दिया था। वह मियाँ साहब के इंगलैंड जाने से पहले फ़ौत हो गया था, इस लिए वह उस के भतीजे टॉमस स्पर्जन से मिले जो उस का जाँनशीन था।

वह उन लोगों से घंटों बातें करते रहते जो स्पर्जन के वाज़ों से मुतअस्सिर हुए थे। उन्हें स्पर्जन की मतअद्दिद किताबें भी हासिल हुईं जो ज़िंदगी भर मियाँ साहब को निहायत अज़ीज़ रहीं। इन किताबों में स्पर्जन की सब से ज़बरदस्त किताब ख़ज़ाना-ए-दाऊद [1] उन की महबूबतरीन किताब थी। इस के अलावा तीन जिल्दें भी थीं जिन में उस के वाज़ों का इंतख़ाब था।

[1] *The Treasury of David*

8 बेदारी

ख़िदमत करने का नया वलवला

> अपने तमाम ग़लत काम तर्क करके नया दिल और नई रूह अपना लो। ऐ इस्राईलियो, तुम क्यों मर जाओ? क्योंकि मैं किसी की मौत से ख़ुश नहीं होता। चुनाँचे तौबा करो, तब ही तुम ज़िंदा रहोगे। यह रब क़ादिरे-मुतलक़ का फ़रमान है। (हिज़क़ीएल 18:31)

जब एहसानुल्लाह लंदन से वापस पंजाब आए तो नारोवाल में आ कर अपने फ़राइज़ अदा करने लगे। अब उन में अपने ख़ुदावंद की ख़िदमत करने का नया वलवला पैदा हो गया था जो उन के हर अमल में हर लम्हा ज़ाहिर होता था। उन की तबीअत में पहले से ज़्यादा गर्म-जोशी थी। उन के वाज़ आगे से ज़्यादा तहलका मचा देते थे। उन की गुफ़्तगू दिलों को फ़तह कर लेती थी। उन की हर बात में जादू था जो न सिर्फ़ नारोवाल के क़स्बे के मसीहियों को बल्कि देहात की अनपढ़ जमातों को उन के नजात-दहिंदे की जानिब खैंचता चला जाता था। उन के दिलों को उभारने वाली तक़रीरें शोले थीं जो चिंगारियाँ बन कर हर सुनने वाले के दिल में आग लगा देते थे। ऐसा कि वह बेइख़्तियार हो कर ख़ुद ख़ुदावंद का एक जोशीला पैग़ाम बन जाता था। इबादत-गुज़ार उन के वाज़ सुन कर थर्रा उठते, अपने गुनाहों को याद करके दीवानावार रोते और चीख़ मार कर उन का अलानिया इक़रार करके ख़ुदा से मग़फ़िरत माँगते थे।

कहाँ नारोवाल की पहली ज़ाहिर-परस्त, वज़्अदार और नफ़ासत-पसंद इबादतें जो आबो-रंग से महरूम थीं और कहाँ अब इबादतों की ख़ुद-फ़रामोशी और मदहोशी! कहाँ पहले लतीफ़ और हर लफ़्ज़ तोलने वाले वाज़ जिन का कोई असर नहीं था और कहाँ अब मियाँ साहब के

वाज़ों की बेसाख़्तगी और बेख़ुदी, उन की तक़रीरों की गर्मी और तेज़ी जो यक-सर महवियत का आलम पैदा कर देती थी! ख़ुदा ने नारोवाल और इर्दगिर्द की इबादतों को इस तौर पर इस्तेमाल किया कि पुराने दुश्मन एक दूसरे से माफ़ी माँग कर बग़लगीर हो गए। सख़्त-दिल गुनाहगार अपने गुनाहों से ताइब हो कर ख़ुदा से नए दिल और नई रूह के तालिब हो गए।

अंग्रेज़ियत से जिहाद

उन दिनों में एहसानुल्लाह मारिफ़ते-इलाही और क़ुरबते-ख़ुदा-वंदी में रोज़-ब-रोज़ तरक़्क़ी करते चले जा रहे थे। वह ख़ुदा से हर वक़्त यही दुआ करते थे कि मुझे ज़्यादा से ज़्यादा इस्तेमाल कर! मुझ पर ज़ाहिर कर कि मैं किस तरह तेरी ख़िदमत बेहतरीन तौर पर कर सकूँ, किस तरह मसीह की जमातों को तेरे बदन के ज़िंदा अज़ु बना सकूँ और किन तरीक़ों से ग़ैर-मसीहियों को तेरे क़दमों में ला सकूँ। उन्हों ने देखा कि जमातों में “अंग्रेज़ियत” बढ़ती चली जा रही है, कि दुनियादारी और वज़अदारी हक़ीक़ी दीनदारी और इबादत-गुज़ारी की जगह ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा करती चली जा रही हैं। चुनाँचे उन्हों ने यह मुसम्मम इरादा कर लिया कि अंग्रेज़ी तर्ज़े-लिबास, रिहाइश और मुआशरत के ख़िलाफ़ जिहाद करूँगा। अब से मैं ख़ुद कुर्ता-पाजामा और पगड़ी पहन कर सादा हिंदुस्तानी तर्ज़ पर ज़िंदगी गुज़ारूँगा।

उन्हों ने यह भी देखा कि मग़रिब की ईसाई सोसायटियों का रुपया हिंदुस्तान की ज़िम्मेदारी की राह में बड़ी रुकावट का बाइस बन गया है। चुनाँचे उन्हों ने यह क़स्द कर लिया कि जो भी हो मैं चर्च मिशनरी सोसायटी से तनख़्वाह लेनी बंद करूँगा। वह पहले ही बहुत कम तनख़्वाह लेते थे और सिर्फ़ इतना लेते थे जो उन की सादा गुज़रान के लिए काफ़ी थी। लेकिन अब उन्हों ने यह मुसम्मम इरादा कर लिया कि मैं यह भी नहीं

लूँगा। मैं मग़रिब के रुपए की एक कौड़ी पर भी इन्हिसार नहीं करूँगा। उन की अहलिया मुहतरमा ने भी उन के साथ इत्तफ़ाक़ कर लिया। अब वह मग़रिबी जमातों के रूपों की ग़ुलामी के ख़िलाफ़ बाक़ायदा जिहाद करने लगे।

जब उन के देरीना रुफ़क़ा और पुराने शागिर्दों को मालूम हुआ कि एहसानुल्लाह का पक्का इरादा है कि वह चालीस रुपए की क़लील तनख़्वाह भी छोड़देंगे ताकि हिंदुस्तानी जमात ख़ुद अपने ख़ादिमाने-दीन को सहारा दे कर अपनी ज़िम्मेदारी का एहसास करे तो उन्हों ने मिल कर सलाह-मश्वरा किया और चालीस रुपए माहवार को अपने ज़िम्मे लेने की पेशकश की। यह सुन कर मियाँ साहब ने अपने ख़ुदा का शुक्र किया जिस ने न सिर्फ़ उन्हें ख़ुराको-पोशाक की फ़िक्र से आज़ाद कर दिया बल्कि उन के लिए आज़ादाना ख़िदमत करने की वह राह भी खोल दी जिस की तरफ़ क़ादिर से उन का रुज्हान था। अब वह देहात तक की जमातों और ख़ादिमाने-दीन को उन की ज़िम्मेदारी का एहसास दिला सकते थे ताकि न सिर्फ़ शहरों और क़स्बों की जमातें बल्कि गाँव की जमातें भी अपने ख़ादिमाने-दीन की परवरिश के बोझ को उठाएँ।

मियाँ साहब के दिल में दिन-ब-दिन यह ख़ाहिश बढ़ती गई कि वह जमातों को झंझोड़ दे कर जगाएँ ताकि वह अपने गुनाहों से तौबा करके रुजू लाएँ और पंजाब में "रब के हुज़ूर से ताज़गी के दिन मुयस्सर आएँ।"[1] उन का यह एहसास रोज़ब-रोज़ बढ़ता जा रहा था कि जिस तरह ख़ुदा ने हिज़्कीएल नबी को बनी इस्राईल की जानिब भेजा था [2] उसी तरह उस ने मुझे हिंदुस्तान की जमात की तरफ़ भेजा है। ख़ुदावंद की आवाज़ बार बार उन के कान में आती थी, "मैं ने तुझे पंजाब की जमात का निगहबान मुक़र्रर किया है। अब मेरे मुँह का कलाम सुन और मेरी तरफ़ से उन्हें आगाह कर दे। मैं तेरा मुँह खोलूँगा।"

[1] आमाल 3:20
[2] हिज़्कीएल 2; 3:1-10

> क्या मेरा कलाम आग की मानिंद नहीं? क्या वह हथौड़ की तरह चटान को टुकड़ेटुकड़ेनहीं करता?
> (यरमियाह 23:29)
> शेरबबर दहाड़उठा है तो कौन है जो डर न जाए? रब क़दिरे-मुतलक़बोल उठा है तो कौन है जो नबुव्वत न करे? (आमूस 3:8)

एहसानुल्लाह ने ख़ुा की आवाज़सुनी और अपनी अहलिया मुहतरमा के साथ घुटने टेक कर ख़ुा के हुज़ गिड़गिड़ाए कि ऐ ख़ुा, हम को तू वह राह दिखा जिस पर तू चाहता है कि हम और हमारे बच्चे चलें। दुआ के बाद उन्हों ने चर्च मिशन के सेक्रेटरी राबर्ट क्लार्क से अमृतसर जा कर मुलाक़त की और उस पर सब बातें वाज़ि कीं। क्लार्क ने कहा, “एहसान, अगर ख़ुा तुम को पंजाब की जमातों में आज़ादाना तौर पर काम करने के लिए बुलाता है तो मैं कौन हूँ जो तुम्हारी राह में रुकावटें डालूँ? तुम नारोवाल को अपना मक़म बना कर जहाँ चाहो और जिस तरह चाहो, ख़ुा की ख़िमत करो और तबलीग़का काम सरअन्जाम दो। मैं हर तरह से तुम्हारी मदद करूँगा।”

मियाँ साहब ने वापस नारोवाल आ कर अपनी रफ़ीक़ए-हयात से बात की। उन्हों ने किताबे-मुक़द्दस को खोला और उन की नज़ यरमियाह 42:5-6 पर पड़ी,

> रब हमारा वफ़ादार और क़बिले-एतमाद गवाह है। अगर हम हर बात पर अमल न करें जो रब आप का ख़ुा आप की मारिफ़त हम पर नाज़िल करेगा तो वही हमारे ख़िलाफ़गवाही दे। ख़ह उस की हिदायत हमें अच्छी लगे या बुरी, हम रब अपने ख़ुा की सुनेंगे। क्योंकि हम जानते हैं कि जब हम रब अपने ख़ुा की सुनें तब ही हमारी सलामती होगी।

तब दोनों मियाँ बीवी ने यह फ़ैसला किया कि मियाँ साहब तो नारोवाल में क़ियाम करें और वहाँ से जहाँ उन्हें ख़ुदा बुलाए जाया करें जबकि बीवी बच्चे बटाला में जा कर रिहाइश इख़्तियार करें ताकि बच्चे बैरिंग स्कूल में पढ़सकें। मियाँ साहब उन्हें बटाला ले गए और स्टेशन के नज़्दीक एक घर किराए पर ले दिया जिस के पीछे बाग़ भी था। बाबू सिंघा ने मियाँ साहब के अह्बाब मसलन होशियारपुर के सिविल सर्जन डाक्टर दीना नाथ प्रेतू दित्ता, अजनाला के वकील पंडित बिशन दास भनोट वग़ैरा की मदद से "पंजाब मिशनरी सोसायटी" क़ायम की जिस के पहले मिशनरी एहसानुल्लाह मुक़र्रर हुए। इन अह्बाब ने चालीस रुपए माहवार जमा करके देने का ज़िम्मा उठाया ताकि मियाँ साहब के ख़ानदान के अख़्राजात चल सकें।

अब एहसानुल्लाह ने मुसम्मम इरादा कर लिया कि हिंदुस्तानी तरीक़े को इख़्तियार करके ख़ुदा की ख़िदमत करें और अपने नजात-दहिंदे के अच्छे नमूने पर चल पड़े जिस ने फ़रमाया था,

> लोमड़ियाँ अपने भट्टों में और परिंदे अपने घोंसलों में आराम कर सकते हैं, लेकिन इब्ने-आदम के पास सर रख कर आराम करने की कोई जगह नहीं। (मत्ती 8:20)

यह सरअन्जाम देने के लिए उन्हों ने फ़क़ीराना ज़िंदगी बसर करने का क़स्द कर लिया ताकि साधुओं की तरह जा-ब-जा आज़ादाना आ जा सकें, इंजील जलील का परचार हर जगह कर सकें, जमातों को मुस्तह्कम करते फिरें और उन पर निगहबान बिठाएँ।[1]

1896 में उन्हों ने नारोवाल की इबादतगाह में आख़िरी बपतिस्मा दिया। इस के बाद वह आज़ादाना काम करने लगे। अब उन का इलाक़ नारोवाल चर्च मिशन का इलाक़ही नहीं बल्कि सारा पंजाब था। अब उन का ताल्लुक़चर्च मिशन की जमातों से ही नहीं बल्कि तमाम मिशनों की

[1] देखिए यसायाह 21:6-8।

जमातों से था जिन को वह अपने उसूलों के साँचों में ढाल कर अबदियत के हमकिनार करने के लिए ख़ुदा की तरफ़ से मामूर हुए थे।

> आज के जुनूँ से हैं कल की हिकमतें रोशन
> इस जिगर-गुदाज़ी में सोज़ है दवामी भी।

यह सब कुछ निहायत जान-जोखों का काम था। जमातों को सिराते-मुस्तक़ीम पर चलाना था, उन की मुर्दा रगों में जान डालनी थी, शहरी और देहाती मसीहियों को उन की फ़र्ज़शनासी और ज़िम्मेदारी का एहसास दिलाना था, उन्हें ख़ुदावंद मसीह के ग़यूर और दिलावर सिपाही बनने की तरग़ीब दिलानी थी, उन्हें इंजील जलील के रज़ाकार मुबल्लिग़ बना कर मग़रिबी क़ुयूद और ज़र की ग़ुलामी से छुड़ाना था। एहसानुल्लाह को इस बात का एहसास भी था कि

> शाख़े-अफ़सुरदा को गर ज़ौक़े-नुमू[1] देना है
> अपनी रग-रग से सदाक़त का लहू देना है।

उन्हों ने ख़ुदा से दुआ की कि मुझे इस मुशकिल काम के लिए तौफ़ीक़ अता कर ताकि मैं ऐसे भारी बोझ बांध कर लोगों के कंधों पर न रखूँ जिन को मैं ख़ुद अपनी उंगली से भी हिलाना नहीं चाहता।[2] अल्लाह का नाम ले कर पहले उन्हों ने अपने लिबास को बदला और फ़क़ीरी साधुआना कपड़े पहन लिए। गहना मल साहब लिखते हैं,

> अप्रैल 1896 में नारोवाल के इलाक़े के मुनादों और उस्तादों का हसबे-दस्तूर “समर स्कूल” रइय्या में हुआ। मुझे भी बुलाया गया। मैं बुज़ुर्ग एहसानुल्लाह को देख कर हैरान रह गया। उन्हों ने जोगिया रंग के कपड़े पहने हुए थे। जोगिया रंग का खुले बाज़ुओं वाला कुरता और खुला पाएजामा था। पाँओ में कोई जूता न था। नंगे-पाँओ सफ़र करते थे। मेरी हैरत को देख कर वह फ़रमाने लगे, “बेटा, ख़ुदा हम से अब एक और

[1] बढ़ने फूलने की क़ुव्वत
[2] देखिए मत्ती 23:4।

क़िस्म की ख़िदमत लेना चाहता है।" वहाँ मैं उन के साथ चंद रोज़ रहा। उन दिनों में मियाँ साहब ख़ुदावंद की क़ुर्बत में बहुत रहते थे और अपने वाज़-नसीहत में उस्तादों और मुबल्लिग़ों को उभारते रहते थे कि वह ख़ूबी-नीयत और सरगर्मी से इंजील की ख़िदमत करें। उन के अपने नमूने ने सब को मुतअस्सिर रखा था। उन की ईसार-नफ़्सी और ख़ुद-इन्कारी सब को मलामत करती थी। वह उन्हें इंजील जलील और ख़ुदावंद के कलिमाते-तय्यिबात से उन की अक़्ल के मुताबिक़ निकात और रुमूज़ सिखाते थे जो ज़िंगी-नवाज़ थे। उन की दुआएँ और हंगामा-आरा तक़रीरों ने उन में हरारत और ताब पैदा कर दी।

जब समर स्कूल ख़त्म हो गया तो एहसानुल्लाह ने अपना आज़ादाना दौरा शुरू कर दिया। गहना मल लिखते हैं,

हम रइय्या से चल पड़े तक़रीबन बारह आदमी हमारे हमराह थे और मियाँ साहब नंगे-पाँओ जोगिया कपड़ों में मल्बूस थे। पहला कूच रइय्या से मौज़ढोडा की जानिब हुआ जहाँ प्रेस्बिटेरियन मिशन में हमीदुद-दीन सालिक साहब काम करते थे। हम सब भूके और प्यासे थे। लेकिन गर्मी, भूक और प्यास के बावुजूद मियाँ साहब इंजील की मुनादी करने लगे और करते रहे। फिर खाना खाने के बाद दोपहर के वक़्त दरख़्तों के साय तले गाँव के मसीही जमा हो गए। उन की तक़रीर की गर्मी और तेज़ी सूरज की गर्मी से ज़्यादा मालूम होती थी।

रात के वक़्त जब ईसाई फिर जमा हुए तो मियाँ साहब ने ऐसी गर्मा-गर्म तक़रीर की कि लोगों ने मज्बूर हो कर रोना, चिल्लाना और अपने गुनाहों का इकरार करना शुरू कर दिया। मियाँ साहब के हमराही भी अपने देरीना गुनाहों को याद कर करके रो रहे थे और गाँव के ईसाई चोरी-चिकारी, लड़ाई-झगड़ें वग़ैरा का इकरार कर रहे थे। रात आधी से ज़्यादा गुज़र चुकी थी। बुज़ुर्ग मियाँ साहब ने मुख़्तलिफ़ लोगों और पार्टियों में सुलह करा दी। यों सब ख़ुदा की बरकत पा कर सोने को चले गए।

सुब्ह-सवेरे जब मुर्ग़ाने बाँग दी तो हम सब ने इबादत की और ढोडा से रवाना हो कर दोपहर के वक़्त पसरूर पहुँचे जहाँ बाबू हुलासी राम के मकान पर खाना खाया। खाने के बाद बाज़ारों के मोड़ों और सड़कों पर इंजील का पैग़ाम हिंदुओं और मुसलमानों को सुनाया गया। इस के बाद एक बड़ा भारी जलसा हुआ जो सारी रात होता रहा। उस में पसरूर के तमाम ईसाई, स्कूल की लड़कियाँ और उस्तानियाँ, इलोक़े के गाँव के मुबल्लिग़, ख़ादिमुद-दीन, उस्ताद, मर्दाना और ज़ाना मिशनरी सब हाज़िर थे। उन में सालिक साहब और बाबू कक्कू मल साहब खास तौर पर क़ाबिले-ज़िक्र हैं। यह जलसा निहायत कामयाब साबित हुआ। मियाँ साहब की जोश दिलाने वाली तक़रीर ने एक बेसाख़्तगी पैदा कर दी। रूहुल-क़ुद्स की बरकत इस कसरत से नाज़िल हुई कि बाज़लोग जो महज़तमाशा देखने के लिए जलसागाह में आए थे बेइख़्तियार हो कर रूह से मज्बूर हो गए और अपने गुनाहों का इकरार करके तौबा करने लगे। दुआ और मुनाजात की रूह लोगों में फूँकी गई और तमाम रात इबादत होती रही।

जब सुब्ह हुई तो हम सियालकोट की तरफ़रवाना हुए। सालिक और बाबू कक्कू मल हमारी पार्टी के साथ थे। उन के हमराह मिशन के चंद मुलाज़िमीन भी हो गए। सब से आगे बुज़ुर्ग एहसानुल्लाह साहब नंगे-पाँओ पैदल चल रहे थे। वह हसबे-दस्तूर किताबे-मुक़द्दस के किसी हिस्से पर या इंजील शरीफ़के किसी मक़ाम पर या मसीही अक़ाइद पर गुफ़्तगू करते जाते थे। और हर शख़्स उन की बातें सुनने के लिए आगे आगे बढ़ा था। ऐसा मालूम होता था कि उन के मुँह से फूल झड़रहे हैं। उन की बातें ऐसी दिल-आवेज़थीं कि किसी को तकान भी महसूस न हुई। यह दुआ के कलाम के मुताबिक़था जिस में लिखा है,

> वह क़ाबिले-एतमाद तालीम देते थे, और उन की ज़ान पर झूट नहीं होता था। वह सलामती से और सीधी राह

> पर मेरे साथ चलते थे, और बहुत से लोग उन के बाइस गुनाह से दूर हो गए। इमामों का फ़र्ज़ है कि वह सहीह तालीम महफ़ूज़ रखें, और लोगों को उन से हिदायत हासिल करनी चाहिए। क्योंकि इमाम रब्बुल-अफ़्वाज का पैग़म्बर है। (मलकी 2:6-7)

हमारे पास ख़ुदावंद मसीह के हुक्म के मुताबिक़ एक पैसा भी न था और न कोई फ़िक्र थी। रास्ते में एक गाँव मंज्के ख़ुश आया। वहाँ हम ने अपनी पार्टी के दो टोले बनाए। एक का लीडर जीवन मल था और दूसरे का लीडर बंदा था। हम गाँव के मुख़्तलिफ़ हिस्सों में गए। हम ढोलक, झाँज और चिम्टा बजा कर गीत गाते, इंजील का पैग़ाम सुनाते और फिर भीक माँगते थे। मिशन के मुलाज़िम तो सड़क के दरख़्तों के साय के नीचे बैठे रहे और हम को देख देख कर हैरान हो रहे थे। क्योंकि यह तरीक़ उन के लिए नया था मगर हमारे लिए न तो नया और न मुशकिल था। उन में से एक हम पर हँसा, क्योंकि हम इन आदमियों के लिए एक तमाशा ठहरे थे। हम मसीह की ख़ातिर बेवूक़ूफ़ थे मगर वह अक़्लमंद। हम मुफ़्लिस और कंगाल थे और वह दौलतमंद। वह इज़्ज़तदार थे और हम बेइज़्ज़त। हम भूके, प्यासे, नंगे थे।

> हम दुनिया का कूड़-कर्कट और ग़लाज़त बने फिरते हैं। (1 कुरिनथियों 4:13)

वहाँ से चल कर हम मौज़बडियाना पहुँचे। अब भूक से हम निढाल हो रहे थे और धूप भी शिद्दत की थी। मिशन के मुलाज़िम तो कुछ ख़रीद कर रोटी खाने लगे जबकि हम ने जो आटा पिछले गाँव से माँगा था वह पकवाया। लेकिन हम ज़्यादा थे और रोटियाँ कम थीं। चुनाँचे मियाँ साहब और मैं गाँव में रोटियाँ माँगने के लिए गए और ख़ुदावंद मसीह के नाम पर भीक माँगी।

हमें बाजरे की एक बासी रोटी मिली और गाँव के दुकानदार से आधा छटाँक गुड़ मिला। यह ले कर हम दोनों वापस अपनी पार्टी में गए। बुज़ुर्ग मियाँ साहब ने खाने से पहले शुक्र का कलिमा कहा और बाबू कक्कू मल से फ़रमाया कि तुम रोटियाँ बाँटो। बाजरे की बासी रोटी और गुड़ मियाँ साहब के और मेरे हिस्से में आया। मैं ज़िद करता था कि मियाँ साहब गुड़ खा लें और वह यह फ़रमाते थे कि तुम खाओ। आख़िर उन्हों ने कहा, “बेटा, मैं चाहता हूँ कि बेहतर हिस्सा तुम्हारा हो, क्योंकि मैं देखता हूँ कि तुम बहुत थक गए हो और मुझे इतनी थकावट नहीं है।” उन के हुक्म के मुताबिक़ मैं ने तो गुड़ खा लिया और उन्हों ने बाजरे की रोटी ले ली। और खा कर लेट गए। जोशे-अक़ीदत से हम में से बाज़ उन्हें दबाने लगे।

उन्हों ने तक़रीबन आधा घंटा आराम किया और फिर उठ बैठे और चार बजे बाद-अज़ दोपहर तक हिंदुओं, मुसलमानों और सिक्खों को इंजील का पैग़ाम सुनाते रहे। क्योंकि वह इंजील की मुनादी करना अशद ज़रूरी समझते थे बल्कि उन की ख़ुराक ही इंजील की मुनादी थी। वह हमेशा दुआ के लिए अलग वीराने में रोज़ाना निकल जाया करते थे। उन के पास किताबे-मुक़द्दस हमेशा रहती थी, और उस की तिलावत पर और अलग दुआ करने पर वह अमल करते रहे। किताबे-मुक़द्दस के हिस्सों के हिस्से उन को ज़बानी याद थे, और वह इस बात पर बहुत ज़ोर देते थे कि हम भी इन को याद किया करें।

बडियाना से चल कर हम रात के वक़्त सियालकोट पहुँचे। वहाँ इमामुद-दीन शहबाज़ के घर चले गए। मिशन के मुलाज़िम एकों पर सवार हो कर हम से पहले वहाँ पहुँच गए। उन्हों ने शहबाज़ साहब को बताया कि बुज़ुर्ग एहसानुल्लाह पंद्रह आदमियों के जथ्थे के साथ पैदल आ रहे हैं, और किसी ने भी कल रात के बाद पेट भर कर खाना नहीं खाया। जब हम मियाँ साहब के घर गए तो उन्हों ने खाना तैयार कर दिया हुआ था। जब खाने से फ़ारिग़ हुए तो सेमिनरी के तालिब-इल्म इकट्ठे हो गए। लेकिन

> उन का कोई उस्ताद न आया। इन तुलबा में लब्भू मल, मल्लू चंद, मंगू मल, बरकत मसीह और नत्थू मल भी थे।

जब एहसानुल्लाह ने सेमिनरी के तुलबा का गुरोह देखा तो वह बहुत ख़ुश हुए। क्योंकि अब उन्हें ख़ुदा ने एक सुनहरी मौक़अता किया था जिसे वह इस्तेमाल करके उन तुलबा को और उन की मुस्तक़बिल की ज़िंदगियों को अपने उसूलों के साँचों में ढाल सकते थे। उन्हों ने पहले हर एक से इन्फ़िरादी तौर पर गुफ़्तगू की। जब जलसा शुरू हुआ तो उन्हों ने दुआ करके एक ऐसी जोशीली तक़रीर की जिस के एक एक लफ़्ज़ में उन के दिल की धड़कनें थीं। जलसे में हंगामा बरपा हो गया। गहना मल लिखते हैं,

> इस जलसे में ख़ुदा के रूह ने बड़ी क़ुदरत के साथ काम किया। हाज़िरीन ने चीख़ मार कर अपने गुनाहों का इकरार करने शुरू कर दिए और ख़ुदा से सच्चा वादा किया कि वह उस से फ़ज़्ल पा कर नई ज़िंदगी बसर करेंगे।

अगले रोज़ जब लोगों को पता लगा कि एहसानुल्लाह आए हैं और जलसे का एहतिमाम शहर वाले अम्रीकन मिशन स्कूल में होगा तो स्कूल का इहाता खचाखच भर गया। भीड़ इस कसरत से थी कि खवे से खवा छलता था। मुख़्तलिफ़ जमातों के शुरका इस जलसे में हाज़िर थे। स्काच मिशन के मर्दाना और ज़नाना मिशनरी, यू.पी. मिशन के मर्दाना और ज़नाना मिशनरी, हाजीपुरा स्कूल की प्रिंसिपल मिस ऐम.जे. कैम्बल, टहल सिंह अपने मुबल्लिग़ों और उस्तादों समेत, नीज़ इर्दगिर्द के देहात के मसीही मुबल्लिग़ सब के सब वहाँ जमा थे।

जलसा दुआ और गीत से शुरू हुआ। इंजील जलील का हिस्सा पढ़ा गया। फिर एहसानुल्लाह तक़रीर करने के लिए उठे। उन के अलफ़ाज़ सादा थे, लेकिन उन में गर्मी और गुदाज़ था जिस ने बेसाख़्ता जज़्बात का इज़्हार पैदा करना शुरू कर दिया। उन की क़ियामत-ख़ेज़ तक़रीर चलती हुई शम्शीर थी जो सामिईन के दिलों और गुर्दों के पार होती जाती थी। उन के असर ने एक महशर बरपा कर दिया। गहना मल लिखते हैं,

इबादत में रूह की बारिश बड़ी कसरत से हुई। मिशनरियों ने अपने कपड़े फाड़डाले और उन्हों ने निहायत आजिज़ी से अपनी दुनियादारी और दुनियावी शान क़ायम रखने का इकरार किया। ज़िला वाल के ऐंडरसन ने कालर-नेकटाई उतार फैंकी। मिस कैम्बल ने उस दिन से ख़ालिस पंजाबी लिबास शलवार, कुरता और दुपट्टा पहनना शुरू कर दिया। ख़ादिमों ने भी अपने गुनाहों का इकरार किया और उन से तौबा करके मसीह के हक़ीक़ी ख़ादिमुद-दीन बनने का ख़ुदा के हुज़ूर वादा किया। लब्भू मल और मल्लू चंद उस रोज़ से बुज़ुर्ग एहसानुल्लाह के पक्के चेले बन गए और आज तक उन्हें पीर से अपना उस्ताद मानते चले आए हैं।

इस जलसे के बाद बहुत ख़ादिमुद-दीन ने हुक़्क़ा पीना छोड़दिया और दीगर मुनश्शी अश्या से परहेज़करने का वादा किया। शहबाज़साहब जिन्हों ने ज़ूरों को पंजाबी और उर्दू ज़बानों में मंज़ूम किया है बुज़ुर्ग मियाँ साहब की तक़रीर की गर्मी और तेज़ीसे आपे से बाहर हो गए और अपने जज़्बात का बेसाख़्ता इज़हार करने लगे। बैरिस्टर पी.डी. सिंघा ने शराबनोशी का इकरार किया और एक दिन अंग्रेज़ी लिबास उतार कर जोगिया रंग की धोती पहन कर जलसे में आए।

सियालकोट से हम गुजराँवाला आए और यहाँ के देहात के मसीहियों में भी जलसे किए। हम जहाँ कहीं गए बुज़ुर्ग एहसानुल्लाह के पुर-तासीर वाज़ेके बाद हर जगह गुनाहों का इकरार और नालो-फ़रियाद की आवाज़ें बुलंद होतीं, हर जगह रूहुल-क़ुद्स की हुज़ूरत बड़ी क़ुव्वत के साथ ज़ाहिर होती। हर मक़ामी जमात ने तहिया कर लिया कि वह मसीह ख़ुदावंद का बदन हो कर ज़िंदगी गुज़ारेगी और ख़ुदा के फ़ज़्ल से हिंदुओं और मुसलमानों में नजात का पैग़ाम फैलाएगी। गुजराँवाला के बाद हम नारोवाल वापस आ गए।

सियालकोट के जलसों का सब से ज़्यादा और पाएदार असर मिस कैम्बल, मल्लू चंद और लब्भू मल पर हुआ। मिस कैम्बल एहसानुल्लाह

की चेली बन गईं जिस का ज़िक्र आगे चल कर किया जाएगा। मल्लू चंद अपने लड़कपन ही से एहसानुल्लाह के चेले थे। वह लिखते हैं,

> एहसानुल्लाह ख़ुदावंद में मेरे बाप हैं, और मुझे उन के वसीले से नया जन्म मिला है। मेरा गाँव मौज़ा मीरकपुर था जो मौज़ा धरग से निस्फ़ मील के फ़ासिले पर वाक़े है। जब चौधरी मन्सबदार साहब ने ख़ुदावंद मसीह को क़बूल किया मैं वहाँ मौजूद था। जनरल बूथ के जलसों के बाद जब वह धरग आए तो उन्हों ने मुझे बुलाया। हम दोनों जंगल में एक दरख़्त के नीचे बैठ गए। उन्हों ने मुझ से मेरी ज़िंदगी की निस्बत ऐसी बातें कीं कि मैं बेइख़्तियार रोने लगा। मैं ने अपने गुनाहों से पशेमान हो कर ख़ालिस नीयत से तौबा की।
>
> तब उन्हों ने मुझे लब्भू मल को बुलाने के लिए भेजा जो बद्दो मलही में रहते थे। मैं उन्हें अपने हमराह ले कर रइय्या आया। बुज़ुर्ग मियाँ साहब ने उन से भी बड़ी सन्जीदगी और सरगर्मी से उन की रूहानी ज़िंदगी के मुताल्लिक़ गुफ़्तगू की। वह भी अपने गुनाहों के क़ायल हो गए और ख़ुदा से सच्चे दिल से माफ़ी माँगने लगे।
>
> फिर हम सब नारोवाल आए जहाँ चर्च मिशन के तमाम कारिंदे जमा थे। बुज़ुर्ग एहसानुल्लाह ने वहाँ ऐसी तक़रीरें कीं जो पहले कभी सुनी भी न गई थीं। इस का नतीजा यह हुआ कि वहाँ रूहानी बेदारी की एक बड़ी ज़बरदस्त लहर पैदा हो गई जिस ने सब मुनादों और उस्तादों की ज़िंदगियों पर हमेशा क़ायम रहने वाला असर डाला।
>
> इस वाक़िए के बाद बुज़ुर्ग मियाँ साहब जनरल बूथ के हमराह इंगलैंड चले गए, और मैं और लब्भू मल सियालकोट की सेमिनरी में जा दाख़िल हुए ताकि हम इंजील की ख़िदमत कर सकें। जब मियाँ साहब इंगलैंड से वापस आए और रइय्या में समर स्कूल के लिए गए तो हम दोनों ने उन्हें सियालकोट की सेमिनरी में आने की दावत दी। मियाँ साहब पैदल नंगे-पाँओ जोगिया रंग के साधुओं के लिबास में रइय्या से सियालकोट पहुँचे। हम जो वहाँ पढ़ते थे डिप्टी वज़ीर अली की हवेली में रहते थे। सब

> तुलबा रात को जमा हुए। मियाँ साहब की पुरजोश धुआँ-दार तक़रीर के वक़्त बहुत मातम हुआ और सब ने अपना दिल ख़ुदा को दे दिया। उगला रोज़ इतवार था। इमामुद-दीन शहबाज़ साहब सियालकोट की जमात के पासबान थे, और मिस कैम्बल हाजीपुर गर्लज़ स्कूल की प्रिंसिपल थीं। मियाँ साहब के वाज़ों और जलसों का बड़ा असर हुआ, और ख़ुदा की अजीब क़ुदरत ज़ाहिर हुई।

इन जलसों में बारह पत्थर स्कूल के तुलबा को हाज़िर होने का मौक़ा न मिला था। यह मल्लू चंद और लब्भू मल का पुराना स्कूल था। क़ुदरतन उन की यह ख़्वाहिश थी कि यह लड़के भी उस बरकत में शामिल हों जो उन्हें और सियालकोट के दीगर ईसाइयों को एहसानुल्लाह के वाज़ों के ज़रीए मिली थी। लेकिन स्कूल के प्रिंसिपल ने दोनों जवानों को लड़कों से मिलने का मौक़ा न दिया। उस का ख़याल था कि यह जलसे महज़ जज़्बाती क़िस्म के थे जिन का असर देरपा नहीं रहेगा और झाग की तरह बैठ जाएगा। उस ने यह भी सुना था कि उन जलसों में अम्रीकन मिशनरियों का क्या हाल हुआ था, और वह नहीं चाहता था कि लड़कों को उन बातों का पता लगे। चुनाँचे दोनों जवान मक़्सद हासिल किए बग़ैर वापस चले गए। लेकिन उन्हों ने बारह पत्थर स्कूल के लिए दुआ करनी न छोड़ी। हम आगे चल कर उन की दुआओं का नतीजा देखेंगे।

यहाँ हम नाज़रीन पर एक बात को वाज़िह कर देना मुनासिब समझते हैं। एहसानुल्लाह शोला-अंगेज़ तक़रीरें और वाज़ फ़रमाया करते थे, लेकिन वह जज़्बाती शख़्स न थे और न महज़ जज़्बात से काम लेते थे। उन का यह मक़्सद ही न था कि लोग वक़्ती जज़्बात से मग़लूब हो कर ख़ुदा के हुज़ूर अपने गुनाहों के लिए नालाो-फ़रियाद करें और उन से तौबा करें।[1] वह ख़ूब जानते थे कि इस क़िस्म की तौबा देरपा नहीं होती और न इस क़िस्म के जज़्बात से गुनाहगार इनसान नया जन्म पा सकता है। मियाँ साहब की तक़रीरों और वाज़ों के अलफ़ाज़ निहायत सादा होते

[1] 1 कुरिनथियों 14:33

थे और हर तरह के तसन्नु और मुरस्सा-साज़ी से पाक होते थे। लेकिन वह हर एक में आग लगा देते थे, क्योंकि वह दिल से निकलते थे और उन के दिल की गर्मी और गुदाज़ के तर्जुमान होते थे। उन में हर सुनने वाले को दिल की धड़कनें सुनाई देती थीं जिन की सदाए-बाज़गश्त उन के अपने दिलों में सुनाई देती थी।

हम बता चुके हैं कि मियाँ साहब दलीलो-बुर्हान के ज़ोर से आजिज़ हो कर मसीही ईमान के क़ायल हुए थे। बपतिस्मे के दो साल बाद ही उन्हें यह तजरिबा हुआ था कि ख़ुदावंद मसीह गुनाहगारों को गुनाह के ज़ोर से रिहाई दे कर अज़सरे-नौ ज़िंदा करता है। इन की तबीअत जज़्बाती न थी और न वह महज़जज़्बात से मज्बूर हो कर कभी मज्नूनाना हरकतें करते थे। वह इस जुनून के क़ायल थे जो बाशऊर भी हो। वह पौलुस रसूल जैसे "दीवाना" थे।[1] उन की ज़बान "शोले की लौएँ जैसी" ज़बान [2] थी जो उन बेड़कामों का बयान करती थी जो उन के अपने तजरिबे में आए थे। उन के अलफ़ाज़ इबतिदाई रसूलों के अलफ़ाज़ की तरह कलाम के तक़ाज़े के मुताबिक़ निहायत सादा होते थे। लेकिन उन से हाज़िरीन के "दिल छिद" जाते थे, [3] और वह बेइख़्तियार हो कर तौबा करते और गुनाहों की मग़फ़िरत पा कर रूहुल-क़ुद्स इनाम में पाते थे।

मियाँ साहब के अलफ़ाज़ इबतिदाई रसूलों के अलफ़ाज़ की तरह थे। वह बेमानी बातें नहीं होते थे बल्कि उन का कलाम क़ुदरत के साथ होता था।

> क्योंकि अल्लाह की बादशाही ख़ाली बातों से ज़ाहिर नहीं होती बल्कि अल्लाह की क़ुदरत से। (1 कुरिनथियों 4:20)

[1] आमाल 26:25
[2] आमाल 2:3
[3] आमाल 2:37

उन के अलफ़ाज़ की हड्डियों पर नसें और गोश्त चढ़ जाते थे।[1] औगुस्तीन ने ख़ूब कहा है,

> जिस की ज़िंदगी बिजली और बर्क़ है उस के कलाम में कड़क और गरज होता है।

उन की आवाज़ नरसिंगे की सी थी। जब लोग उन के साथ इबादत करते थे तो वह यह महसूस करते थे कि ख़ुदा का जलाल उन के चारों तरफ़ है। वह फ़लीहुल-बयान शख़्स न थे और न उन के वाज़ों में मुख़्तलिफ़ क़िस्म की रंगीनियाँ और वज़ा-दारियाँ पाई जाती थीं। बिलकुल उसी तरह जिस तरह पौलुस रसूल फ़रमाता है,

> मैं ने इरादा कर रखा था कि आप के दरमियान होते हुए मैं ईसा मसीह के सिवा और कुछ न जानूँ, खासकर यह कि उसे मस्लूब किया गया। (1 कुरिन्थियों 2:2)

रसूल की तरह उन की मुनादी रूह की क़ुदरत से साबित होती थी जिस वजह से उन की तक़रीरें हंगामा-आरा होती थीं। जब वह गुनाह और शैतान के ज़ेर का बयान करते थे तो वह खरी-खरी सुनाया करते थे, लेकिन उन में जली-कटी सुनाने का अंदाज़ न होता था। उन का असर बेसाख़्ता जज़्बात में हैजान पैदा कर देता था, लेकिन इन जज़्बात को पैदा करना मियाँ साहब का मक़सद न होता था। उन के जलसों में सॉल्वेशन आर्मी के से जज़्बाती नारे मसलन "हैलेलूवयाह" वग़ैरा बुलंद नहीं होते थे, क्योंकि उन्हें अब तजरिबे से मालूम हो चुका था कि आला रूहानियत इस क़िस्म की वायज़ाना बेक़ारी से अलाहिदा है। वह ख़ुश-गुफ़्तार थे और किताबे-मुक़द्दस के निकातो-रुमूज़ को किताबे-मुक़द्दस के मुतालए के वक़्त ऐसे दिलचस्प तरीक़े से पेश किया करते थे कि बात में जान पड़ जाती और सुनने वालों पर महवियत तारी हो जाती थी। दिलकशी ऐसी कि बस कुछ न पूछिए।

[1] हिज़्क़ीएल 37:8

> वह कहीं और सुना करे कोई।

मैं ने लब्भू मल साहब से ख़ुद सुना है कि उन्हों ने किताबे-मुक़द्दस के हक़ाइक़ का इल्म सेमिनरी से नहीं बल्कि एहसानुल्लाह से हासिल किया है। ख़ुदा यरमियाह नबी की मारिफ़त फ़रमाता है,

> जिस पर मेरा कलाम नाज़िल हुआ हो वह वफ़ादारी से मेरा कलाम सुनाए। भूसे का गंदुम से क्या वास्ता है? रब फ़रमाता है, क्या मेरा कलाम आग की मानिंद नहीं? क्या वह हथौड़े की तरह चटान को टुकड़े टुकड़े नहीं करता? (यरमियाह 23:28-29)

एहसानुल्लाह एक दियानतदार नबी थे। उन के चेले मरते दम तक फ़ख़्र से उन्हें अपना उस्ताद मानते रहे। गहना मल भी लिखते हैं,

> जब कभी कोई शख़्स हम में से किसी को मुनादी करते सुन लेता है तो फ़ौरन पहचान लेता है कि हम बुज़ुर्ग एहसानुल्लाह के शागिर्द हैं।

> इसी चराग़ से रोशन चराग़ भी हुए।

इस क़िस्म के मुस्तक़िल नतायज़ महज़ वक़्ती जज़्बात के शोलों का नतीजा नहीं होते। यह बेख़ुदी ज़िंदगी भर उस इनसान की क़िस्मत में लिखी होती है जिस ने रूहुल-क़ुद्स के ज़िंदगी-नवाज़ अस्सुरात का ज़ाती तजरिबा किया हो। वह लोग इन रुमूज़ को नहीं समझ सकते जो हक़ीक़ी तसव्वुफ़ और मारिफ़त का लिबास पहनने के बजाए बरहनगी पसंद करके इस बात पर फ़ख़्र करते हैं कि

> मेरी उल्फ़त में कभी रंगे-जुनूँ आ न सका।

मियाँ साहब को मस्नूई फ़ाक़ाहतो-बलाग़त और लफ़्फ़ाज़ी से नफ़रत थी। वह कहा करते थे कि कलामुल्लाह में ख़ुद ही ऐसी कशिश है कि उसे किसी चमकीली ज़बान की ज़रूरत ही नहीं।

> آب و رنگ و خال و خط چہ حاجت روے زیبا را۔
> आब-ताब, रंग, ख़ाल और ख़त के हिसाब से ख़ूबसूरत चेहरे को किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं।

उन के वाज़ सादे थे, लेकिन वह लोगों को अबदियत के हमकिनार कर देते थे। वह शायराना बुलंदियाँ नहीं बल्कि हक़ीक़त बयान करते थे। उन के वाज़ों में ज़िंदगी थी और अपने आक़ की तरह लोगों से उन की समझ के मुताबिक़ कलाम किया करते थे।

उन हज़ारों लोगों में जो उन का कलाम सुनते थे हर एक यही ख़याल करता था कि उन का वाज़ मेरे ही लिए है और मैं ही वह गुनाहगार हूँ जिस का वह ज़िक्र कर रहे हैं। उन का हर वाज़ ज़ोरदार था, लेकिन वह ठनठनाता पीतल या झनझनाती झाँझ न था, क्योंकि वह एक दर्द भरे दिल से निकलता था। जिस तरह लोहा आग में दहक कर ख़ुद अंगारा हो जाता है उसी तरह वाज़ के सुनने वाले दहक उठते थे। [1] हक़ीक़त तो यह है कि कलामे-इलाही का क़दीम कोहे-होरब की तरह होता है जो एक नंगी चटान थी लेकिन जब ख़ुदा का हाथ उसे छूता है तो उस में से ज़िंदगी के पानी के चश्मे फूट निकलते हैं जो दश्तो-सहरा को सेराब कर देते हैं।

एहसानुल्लाह की मुनादी पर ख़ुदा की मुहर लगी हुई थी। वह अपने आक़ की तरह ख़ुदा और इनसान की मक़बूलियत में बढ़ते गए। मौजूदा नसल के लिए उन की हर-दिल-अज़ीज़ी का अंदाज़ा लगाना निहायत मुशकिल है। लोग चारों तरफ़ उन के चेले बनते चले जा रहे थे, और जो उन के चेले नहीं थे वह उन से हद से ज़्यादा की अक़ीदत और दिली उन्स रखते थे। मियाँ साहब का हाल हिज़्कीएल नबी का सा था,

[1] ब-मुक़ाबला यरमियाह 20:9; 5:14

> ऐ आदमज़ाद, तेरे हम-वतन अपने घरों की दीवारों और दरवाज़ों के पास खड़े हो कर तेरा ज़िक्र करते हैं। वह कहते हैं, आओ, हम नबी के पास जा कर वह पैग़ाम सुनें जो रब की तरफ़ से आया है। (हिज़्क़ीएल 33:30)

हर शख़्स जो इस क़दर और इतनी जल्दी हर-दिल-अज़ीज़ हो जाए ऐसी आज़माइशों में गिरिफ़्तार हो जाता है जिन का मुक़ाबला करना आसान नहीं होता। ग़रूर और तकब्बुर उसे आसमान की बुलंदियों से पाताल में बड़े जल्दी से गिरा देते हैं। उस की रूहानी ज़िंदगी ढीली हो जाती है। तब वह किसी काम का नहीं रहता। लेकिन मियाँ साहब इन आज़माइशों में न गिरे और ख़ुदा से तौफ़ीक़ पा कर उन पर हमेशा ग़ालिब आए। उन्हें ख़ुशामद से परले दर्जे की नफ़रत थी। वह कहा करते थे कि जब मैं किसी को अपनी तारीफ़ करते सुनता हूँ तो मुझ पर ऐसी उदासी छा जाती है कि मेरा रोने को जी करता है। क्योंकि उस का ध्यान मसीह की तरफ़ नहीं होता जिस के क़दमों में मैं उसे ले जाना चाहता हूँ बल्कि उस का ध्यान एक कमज़ोर इनसान की तरफ़ होता है। वह अक्सर मोरेवियन [1] नमाज़ की किताब की यह दुआ पढ़ा करते थे,

> अपनी बड़ाई और शोहरत हासिल करने की ख़ाब ख़्वाहिश से, ऐ करीम ख़ुदावंद, हमें बचा।

वह ख़ुदा का हमेशा शुक्र करते थे कि

> ख़ुदावंद का कलाम ज़बरदस्त तरीक़े से बढ़ा और ज़ोर पकड़ा गया। (आमाल 19:20)

पौलुस रसूल के हम-ज़बान हो कर वह कहते थे,

[1] Moravian

> लेकिन ख़ुदा का शुक्र है! वही हमारे आगे आगे चलता है और हम मसीह के क़ैदी बन कर उस की फ़तह मनाते हुए उस के पीछे पीछे चलते हैं। यों अल्लाह हमारे वसीले से हर जगह मसीह के बारे में इल्म ख़ुशबू की तरह फैलाता है। (2 कुरिनथियों 2:14)

9 सियालकोट कंवेंशन : आग़ाज़

नारोवाल

> अपने कमरबंद में पैसे न रखना—न सोने, न चाँदी और न ताँबे के सिक्के। न सफ़र के लिए बैग हो, न एक से ज़्यादा सूट, न जूते, न लाठी। क्योंकि मज़दूर अपनी रोज़ी का हक़दार है। (मत्ती 10:9-10 ब-मुक़ाबला लूक़ा 10)
> कौन सा फ़ौजी अपने ख़र्च पर जंग लड़ा है? कौन अंगूर का बाग़ लगा कर उस के फल से अपना हिस्सा नहीं पाता? या कौन रेवड़ की गल्लाबानी करके उस के दूध से अपना हिस्सा नहीं पाता? ...हम ने आप के लिए रूहानी बीज बोया है। तो क्या यह नामुनासिब है अगर हम आप से जिस्मानी फ़सल काटें? ...ख़ुदावंद ने मुक़र्रर किया है कि इंजील की ख़ुश-ख़बरी की मुनादी करने वालों की ज़रूरियात उन से पूरी की जाएँ जो इस ख़िदमत से फ़ायदा उठाते हैं। (1 कुरिन्थियों 9:7,11,14)

1896 का साल पंजाब की जमात की ज़िंदगी में नुमायाँ तौर पर संगे-मील है। क्योंकि इस साल ख़ुदा ने एहसानुल्लाह के ज़रीए सियालकोट कंवेंशन की बुनियाद डाली और पंजाब की जमातों और ख़ादिमाने-दीन को यह एहसास दिलाया कि अपना बोझ ख़ुद उठाने की ज़िम्मेदारी को पहचान कर नजात का पैग़ाम फैलाना अपना पहला फ़रीज़ा ख़याल करें।

गुज़श्ता बाब में हम बता चुके हैं कि ख़ुदा ने सियालकोट में मियाँ साहब के ज़रीए अप्रैल और मई 1896 में जमात को और उस के ख़ादिमाने-दीन को ग़फ़लत की नींद से बेदार किया। जब मियाँ साहब मई में नारोवाल वापस आए तो मिस कैम्बल उन के हमराह थीं। नारोवाल में जलसों का इंतज़ाम किया गया। सुब्ह के वक़्त मियाँ साहब और रात के वक़्त मिस

कैम्बल की तक़रीरें होती थीं। मियाँ साहब सुब्ह की इबादत में ईसाइयों को बार बार अल्लाह और उस के पैग़म्बरों के हुक़ूक़ की याद दिलाते थे। हसबे-मामूल उन की तक़रीरें वलवले पैदा कर देती थीं और उन के आतिशीं अलफ़ाज़ नापाक दिलों को ख़ाकिस्तर बना देते थे। उन के वाज़ नीमगर्म दिलों को हिला कर उन में जुम्बिश पैदा करते और उन्हें हस्सास बना देते थे।

नारोवाल की बड़ी इबादतगाह सुब्ह-सवेरे मर्दों, औरतों और बच्चों से खचाखच भरी होती थी। वह दिन भर शहर के बाज़ारों में खड़े हो कर या दोस्तों और रिश्तेदारों की दुकानों में बैठ कर नजात का पैग़ाम सुनाते और गुनाहगारों को उन के नजात-दहिंदे की दावत ऐसे अलफ़ाज़ में देते कि सुनने वाले थर्रा उठते और उन के जान-पहचान एक दूसरे को कहते, "क्या वह यही एहसान है जिस को हम बचपन से जानते थे और जब वह ईसाई हुआ तो हम कहते थे कि उसे दुकान के सौदे में ख़सारा हुआ है? ईसाई हो कर उस के हाथ क्या आया? अब तो यह साधू फ़क़ीर हो गया है। यक़ीनन हमारा ख़याल ग़लत था।"

बहुत लोगों ने उन की मुनादी सुन कर किताबे-मुक़द्दस को पढ़ना शुरू कर दिया। खासकर उन के छोटे भाई शेख़ रहमत अली का दिल उन की मौजूदा तर्ज़े-ज़िंदगी से बहुत मुतअस्सिर हुआ, और वह ज़्यादा से ज़्यादा वक़्त शौक़ से क़ानो-किताबे-मुक़द्दस का मुतालआ और मुवाज़ना करने लगे। वह कहते हैं,

> जब भाई जी इस्लाम को तर्क करके ईसाई हो गए तो सब ख़ानदान के दिलों पर कारी सदमा हुआ। मेरे दिल पर तो बहुत चोट लगी, क्योंकि मुझे उन से दिली उन्स था। हम उन्हें अपना दुश्मन समझने लगे, क्योंकि हमारे नज़्दीक उन्हों ने अल्लाह को, अल्लाह के रसूल को, अल्लाह की किताब को और शिया मज़्हब को तर्क कर दिया था। हम इस बात के दर पै हो गए थे कि अगर मौक़ा मिले तो उन्हें जान से मार दें। चंद मुद्दत के बाद यह ख़याल तो न रहा, लेकिन ग़म ने इस की जगह ले ली कि हाय मेरा

अज़ीज़ भाई जिस पर हमारी सब उम्मीदें बंधी थीं, वह हम से जुदा हो गया है, और हम उस से अलग-थलग हो गए हैं। एक दूसरे के दुख-सुख, ख़ुशी और ग़म तक में शरीक नहीं हो सकते। हम उसे अपनी दास्तान नहीं सुना सकते। वह हम को अपनी कहानी नहीं बता सकता।

फिर कई साल बाद वह नारोवाल आए और ख़ादिम बन कर हम को नजात की ख़ुश-ख़बरी सुनाने लगे। मैं उन दिनों में हक़ की तलाश में निहायत परेशान था। फिर जब वह फ़क़ीराना ज़िंदगी बसर करने लगे और हज़ारों मर्दो-ज़न उन की ज़ियारत को आने लगे तो हमारे दिलों में यह ख़्याल पैदा हुआ कि हम तो उन्हें मुर्तद और काफ़िर समझते हैं, लेकिन तमाम दुनिया उन से बरकत पाने को उन के क़दमों में गिरती है। वह किस तरह रांदाए-दरगाहे-इलाही हो सकते हैं? लोग उन का नाम जपते हैं और घरबार छोड़कर उन्हें पीरो-मुरशिद मान कर उन के चेले बनते जा रहे हैं और उन की बैअत कर रहे हैं। तब हमारी क़ौम के बाज़ लोगों के दिलों में भी यह ख़्याल आने लगा कि कहीं हम ही तो भूले-भटके नहीं फिरते? आख़िर क्या वजह है कि उन का दिल मुहब्बत और ख़ुशी से भरा नज़र आता है? उन का चेहरा हर वक़्त नूर की तरह चमकता रहता है और फूल की तरह शगुफ़्ता और बश्शाश रहता है।

> उग रहा है दरो-दीवार से सब्ज़ा ग़ालिब
> हम ब्याबान में हैं और घर में बहार आई है।

उन की ज़िंदगी को देख कर मैं ने यह मुसम्मम इरादा कर लिया कि जो भी हो, मैं अपनी तलाश को जारी रखूँगा जब तक गौहरे-मक़्सूद मेरे हाथ न लग जाए।

क़िबला वायज़ भी लिखते हैं,

एक और बड़ा कारनामा एहसानुल्लाह का ऐसा है जिस के वास्ते हम ख़ुदा का शुक्र किए बग़ैर नहीं रह सकते। उमूमन देखा जाता है, और है भी सच, कि नबी अपने वतन में इज़्ज़त नहीं पाता। “घर का जोगी जो गड़ा, बाहर का जोगी सिद्ध।” बाहर के लोग हम को हाथों-हाथ उठा लेते

हैं लेकिन घर के लोग क़बूल नहीं करते। मगर एहसानुल्लाह का असर अपनी क़ौम और खासकर अपने क़रीबी रिश्तेदारों पर बहुत अच्छा था। जिस का नतीजा यह हुआ कि उन का सगा भाई रहमतुल्लाह उन की रूहानी तासीर से ख़ानदान समेत ईसाई हो गया। यह सिर्फ़ एहसानुल्लाह की ज़िंदगी का, हाँ उन की मसीही ज़िंदगी का फल है।

रात के वक़्त जलसे "झंडा" के वसी इहाते में होते और मिस कैम्बल तक़रीर करती थीं। वह एक निहायत शरीफ़-नफ़्स और मसीही तबीअत की ख़ातून थीं जो एहसानुल्लाह की चेली बन गई थीं। उन की सादा ज़िंदगी और पंजाबी लिबास ने लोगों के दिलों को मोह लिया था, और उन की सादा लेकिन पुर-मग़ज़ तक़रीरों के ज़रीए खासकर जमात की औरतें बहुत मुतअस्सिर हुईं।

जून और जुलाई 1896 के महीनों में शिद्दत की गर्मी थी। लेकिन मसीह के इस आशिक़-ज़ार को न गर्मी की पर्वा थी, न धूप की। वह नंगे-पाँओ नारोवाल के इलाक़े के देहात में दौरा करते रहे। और गाँव-गाँव जा कर हिंदुओं, मुसलमानों, सिक्खों और बुतपरस्तों को ज़िंदा ख़ुदा-ए-वाहिद और नजात-दहिंदा मसीह का पैग़ाम सुनाते रहे। रात को वह जमात के ईसाइयों को जमा करके सादा पंजाबी ज़बान में उन के ईमान को मज़बूत करते। उन्हें रूहानी ज़िंदगी बसर करने और ख़ुदावंद मसीह के ज़िंदा अज़ु बनने की तलक़ीन करते थे। यह जमातें वह थीं जिन की हालते-हरकतो-अमल ढीली हो चुकी थी और जिन में मियाँ साहब ने गुज़श्ता पाँच साल काम करके अज़सरे-नौ जान डाली थी। उन के शुरका ख़ुदावंद में उन के बच्चे थे जिन को उन्हों ने जना था और जिन के लिए उन्हें दर्दे-ज़ह से ज़्यादा दर्द लगे थे। हम क़ियास कर सकते हैं कि मियाँ साहब ने उन में रह कर इन दो माह में किस क़दर मेहनत और मशक़्क़त की होगी ताकि वह ख़ुदावंद में तरबियत पा कर रूह में तरक़्क़ी करते जाएँ।

सियालकोट

मई के वुस्त में ज़फ़रवाल के यू.पी. मिशन के इलोक़े के मुबल्लिग़ समर स्कूल के लिए जमा हुए तो मियाँ साहब एक दिन के लिए वहाँ लेक्चर देने के लिए गए। वहाँ उन्हों ने रूहुल-क़ुद्स की मामूरी पर ऐसे जोश और सरगर्मी के साथ लेक्चर दिया कि परदेसी और देसी मुबल्लिग़ीन मर्दो-ख़वातीन और उस्ताद सब के सब निहायत मुतअस्सिर हुए। उन्हों ने उन से वादा ले लिया कि वह फिर सियालकोट जाएँगे और इस के बाद यू.पी. के इलोक़े के गाँव और क़स्बों का दौरा करेंगे।

चुनाँचे एहसानुल्लाह अगस्त के शुरू में सियालकोट पहुँचे और इमामुद-दीन शहबाज़ साहब के हाँ ठहरे। दोनों साहबे-इल्म थे और मुसलमानों में से ईसाई हुए थे।

शहबाज़ साहब ग़ाज़ीवाल गाँव के थे जो नारोवाल से एक मील के फ़ासिले पर वोक़े है। वह अच्छे शायर थे और उन्हों ने ज़बूर की किताब को पंजाबी और उर्दू में मंज़ूम किया था। पंजाब की तमाम जमातें तब से उन के मंज़ूम ज़बूर को इबादत में गाती हैं जिस से उन्हें ग़ैर-फ़ानी शोहरत नसीब हो गई है। अफ़सोस है कि उन के उर्दू "नज़्मुल-मज़ामीर" की किताब उर्दू बोलने वाली जमातों में मुरव्वज न हुई वर्ना उन जमातों को भी उन से रूहानी फ़ायदा हासिल होता। मैं ने 1938 में इस किताब की सदहा जिल्दें गुजराँवाला सेमिनरी में पड़ी देखीं। मालूम नहीं कि उन का क्या हशर हुआ।

शहबाज़ साहब शायर थे तो एहसानुल्लाह सुख़न-फ़हम थे जिन के हाफ़िज़े में बेशुमार अशआर महफ़ूज़ थे। दोनों किताबे-मुक़द्दस के रुमूज़े-निकात के माहिर थे। दोनों तसव्वुफ़ और मारिफ़त के लिबास से मुज़य्यन थे। हम क़ियास कर सकते हैं कि दोनों एक दूसरे की मुलाक़ात से किस क़दर महज़ूज़ हुए होंगे।

गुज़श्ता अप्रैल जब एहसानुल्लाह साहब ने सियालकोट के जलसों में वाज़ किए थे तो जैसा गहना मल बता चुके हैं शहबाज़ साहब निहायत मुतअस्सिर हुए थे। अब उन्हों ने सियालकोट के जलसों का बड़े पैमाने पर इंतज़ाम कर दिया था ताकि सियालकोट के तमाम इदारे और मसीही और इर्दगिर्द के देहात के मसीही, सब के सब एहसानुल्लाह के वाज़ो-नसीहत से फ़ायदा उठा सकें।

सेमिनरी के तुलबा खासकर लब्भू मल और मल्लू चंद ने उन की आमद से पहले दुआओं का लगातार सिलसिला जारी कर रखा था ताकि सब तुलबा को ज़्यादा से ज़्यादा बरकात हासिल हों। मिस कैम्बल ने हाजीपुरा स्कूल की लड़कियों को दुआ के वसीले से तैयार किया। इस वसी तैयारी ने बीज बोने के लिए ज़मीन पहले से तैयार कर रखी थी जिस का नतीजा यह हुआ कि ख़ुदा के रूह ने एहसानुल्लाह को ख़ूब अच्छी तरह इस्तेमाल किया। एक ख़ादिम लिखते हैं,

> जब सियालकोट में रूहानी बेदारी के लिए जलसे हुए तो ख़ुदा ने बुज़ुर्ग मियाँ साहब के काम और ख़िदमत पर बड़ी बरकत की बारिश बरसाई। यह जलसे बड़े कामयाब साबित हुए। सेमिनरी तुलबा और उस्तादों को, स्कूलों के लड़कों और लड़कियों को, उन के उस्तादों और उस्तानियों को, शुरकाए-जमात और उन के पासबानों को अज़सरे-नौ नई ज़िंदगी हासिल हुई। वह सब के सब रूहानी जोश से भर गए, और उन्हों ने नीयत बांध ली कि आइंदा हम नए तौर पर ज़िंदगी बसर करेंगे। उन्हों ने ख़ुदा और जमात के रू-ब-रू अलानिया अपनी नीयत और इरादा का इक़रार करके अपने आप को ख़ुदा की ख़िदमत के लिए मख़सूस किया। शहर के ईसाई हर तरफ़ ख़ुशो-ख़ुर्रम नज़र आते थे, क्योंकि उन के दिल रूहानी शुक्र-गुज़ारी से मामूर थे।

सियालकोट के जलसों की रूहानी बेदारी की शोहरत पंजाब के दीगर शहरों और क़स्बों में दूर दूर तक फैल गई। जिन लोगों ने ख़ुदावंद में नई ज़िंदगी गुज़ारने का पक्का इरादा कर लिया था उन्हों ने अपने रिश्तेदारों,

दोस्तों और पुराने रफ़ीक़ों को उन बड़ी बरकतों की ख़बर दी जो उन्हों ने एहसानुल्लाह के ज़रीए पाई थीं और हर जगह के ख़ादिमाने-दीन को भी तरग़ीब दी कि वह रख-रखाओ और वज़ादारी की ज़िंदगी छोड़कर हक़ीक़ी तौर पर ख़ुदावंद मसीह पर ईमान ला कर नई ज़िंदगी गुज़ारें। यों सियालकोट के जलसों की ख़ुशबू दूर दूर तक पंजाब की जमातों की फ़िज़ा को मुअत्तर करती रही।

ज़फ़रवाल

जब एहसानुल्लाह सियालकोट की रूहानी बेदारी के काम और इंजील की ख़िदमत से फ़ारिग़ हुए और उन्हों ने देखा कि जमात में रूहानी बेदारी की लहरें मौजज़न हो रही हैं और काम ख़ूब-ब-ख़ूब तरक़्क़ी करने लगा है तो वह मिस कैम्बल और चंद दीगर मसीही तबीअत और जोश रखने वाली औरतों और मर्दों के साथ ज़फ़रवाल के लिए रवाना हुए। सेमिनरी के तुलबा लब्भू मल और मल्लू चंद अपने हम-जमातों के साथ उन के हमराह थे। डाक्टर ऐंडर्सन इलाक़े के मिशनरी थे जिन्हों ने एहसानुल्लाह और उन के रुफ़क़ा के लिए पहले ही तैयारी कर रखी थी। उन्हों ने यू.पी. मिशन के इलाक़े के ख़ादिमाने-दीन और उस्तादों, मुबल्लिग़ों और मुबश्शिरों को ज़फ़रवाल बुला लिया था ताकि मियाँ साहब के वाज़ो-नसीहत से फ़ैज़ पाएँ। ज़फ़रवाल की जमात के शुरका भी मदऊ किए गए। मियाँ साहब सरे-शाम ज़फ़रवाल पहुँचे और रात को जलसा शुरू हुआ। गंडा मल साहब लिखते हैं,

> मैं भी मौज़ा नडाला से बीवी बच्चों समेत उन जलसों में शरीक होने के लिए ज़फ़रवाल गया। जिस वक़्त मैं वहाँ पहुँचा तो रात का एक बज चुका था और अभी जलसा हो रहा था। मैं भी बैठ गया। बुज़ुर्ग मियाँ साहब वाज़ कर रहे थे और लोग अपने गुनाहों को याद करके तौबा कर रहे थे। जब जलसा ख़त्म हुआ तो वह मुझ से बेड़तपाक से मिले और बग़लगीर हो

कर फ़रमाने लगे, “भाई मल, आप का बड़ा इंतज़ार हो रहा था। बहुत अच्छा हुआ कि आख़िर आप आ गए। ख़ुदा का शुक्र हो।” जलसे के बाद हम सब अपनी अपनी जगहों को सोने के लिए चले गए।

अगली सुब्ह 20 अगस्त का दिन था। मैं सुब्ह-सवेरे उठा और वहाँ की तरफ़ गया। क्या देखता हूँ कि बुज़ुर्ग मियाँ साहब फ़र्श पर बैठे हुए हैं और लोग उन के चौगिर्द हलक़ा बनाए बैठे, उन की बातें निहायत दिलचस्पी से सुन रहे हैं। मैं भी ख़ामोश एक तरफ़ बैठ कर उन की बातें ग़ौर से सुनने लगा। वह पंजाब की जमातों में अपनी मदद आप की ज़रूरत पर इतनी ज़ोर से गुफ़्तगू कर रहे थे कि सेमिनरी का एक तालिब-इल्म बेसाख़्ता बोल उठा, “हाँ, मियाँ साहब। हम दिल से चाहते हैं और दुआ भी करते रहते हैं कि हमारी तमाम जमातें अपना माली बोझ ख़ुद उठाएँ और हम अपनी ही मिशन क़ायम करें ताकि हम भी अपने मिशनरी ग़ैर-ममालिक में भेज कर उन में मसीह का झंडा गाड़ें” एहसानुल्लाह ने बड़े प्यार से उस की तरफ़ देखा और उस का हाथ अपने हाथ में ले कर निहायत नर्मी और मुलायमत के साथ फ़रमाया, “हाँ, भाई। तुम वह हो जो कहते हो पर करते नहीं।” बुज़ुर्ग मियाँ साहब के ये अलफ़ाज़ उस तेज़ तीर की मानिंद जिस को किसी तजरिबाकार और माहिर तीरअंदाज़ ने कमान से छोड़ा हो, सीधे मेरे दिल पर लगे और आर-पार हो गए और मुझे कारी ज़ख़्म लगा कर घायल कर गए। उन का यह सीधा-सादा फ़िक़रा मेरे दिलो-दिमाग़ बल्कि तमाम वुजूद में लगातार ज़ोर के साथ हर वक़्त गूँजने लगा। मैं जिस जगह भी जाता शख़्सी तौर पर और अलानिया उन की आवाज़ सुनता रहता, “तुम वह हो जो कहते हो, पर करते नहीं।”

जलसे के इख़्तिताम पर उन्हों ने फ़रमाया कि आज रात का मज़्मून अपनी मदद आप की ज़रूरत के मुताल्लिक़ होगा और गंडा मल साहब इस मौज़ू पर तक़रीर करेंगे।

उन का एलान सुनते ही उस एक फ़िक़रे के अलफ़ाज़ मेरे दिल में फिर बुरी तरह चुभने लगे, “तुम वह हो जो कहते हो पर करते नहीं।” और मुझे

ऐसा मालूम हुआ कि कोई इस गहरे लगे हुए तीर को पकड़कर ज़ोर के साथ बुरी तरह हिलाता और मुझे ज़्यादा घायल करता चला जाता है। मैं बड़ी मुशकिल से उठा और काँपते हुए अर्ज़ किया, "जनाब, इस वक़्त मुझे माफ़ फ़रमाएँ। मैं अभी इस मौज़ू पर कुछ भी कहने को तैयार नहीं।" मेरे इन्कार की वजह यह थी कि मैं ख़ुद मिशन से तनख़्वाह लेता था इस लिए मैं अपने हम-ख़िदमतों को यह तालीम नहीं देना चाहता था। क्योंकि यों मैं ऐसे भारी बोझ बांध कर लोगों के कंधों पर रखता जिन को मैं अपनी उंगली से भी हिलाना न चाहता।

दिन के दस बजे जलसा शुरू हुआ। बुज़ुर्ग मियाँ साहब ने ऐसा मुअस्सिर वाज़ किया कि लोगों पर बेख़ुदी छा गई और वह ख़ुद-फ़रामोशी की हालत में आ कर अलानिया अपने गुनाहों का इकरार करने लगे। आपस की मुद्दत की दुश्मनियाँ उन के कलाम से दूर हो गईं। बहुतों में सुलह-सफ़ाई हो गई और हर एक शख़्स का दिल मुहब्बत और शुक्र-गुज़ारी से मामूर हो गया। यह जलसा ढाई बजे तक होता रहा। रात के वक़्त फिर इबादत शुरू हुई। बुज़ुर्ग मियाँ साहब ख़ुद इबादत में हादी हुए। अगरचे दिन भर आंधी और बारिश का तूफ़ान रहा ताहम लोग पेश-अज़-वक़्त हाल में जमा हो गए और तिल भर जगह न रही।

मियाँ साहब ने अपनी मदद आप की ज़रूरत के मज़मून पर तक़रीर शुरू की और बराबर दो घंटे तक बादल की गरज और बिजली की तड़प की तरह जैसे रूह ने उन की हिदायत की बोलते रहे। उन के अलफ़ाज़ निहायत चीदा और सन्जीदा थे। उन के फ़िक़रे जचे-तुले हुए थे। उन्हों ने आम-फहम लेकिन मुअस्सिर कहानियों और तम्सीलों के ज़रीए जमात पर इस अहम मज़मून के मुख़्तलिफ़ तारीक पहलू रोशन कर दिए। गो उन का अंदाज़-ए-बयान सादा था लेकिन तक़रीर हंगामा-आरा थी। सुनने वालों पर रिक़्क़त तारी हो गई। उन के दिल पिघल गए और लोग फूट फूट कर रोने लगे। जलसे के हाल का नक़्शा "बोकीम" का सा हो गया।[1] लोगों ने

[1] क़ुज़ात 2:5

रो रो कर अपनी ग़फ़लतों, कमियों और कोताहियों का इकरार किया और वादा किया कि आइंदा वह अपनी ज़िम्मेदारियों को निबाहेंगे और अपनी ज़िंदगियों को अपने नजात-दहिंदे मसीह की ख़िदमत में गुज़ारेंगे।

यह जलसा रात के डेढ़बजे तक होता रहा। लोग उठने का नाम नहीं लेते थे। जोशे-अक़ीदत से सब यही चाहते थे कि बुज़ुर्ग मियाँ साहब बोलते जाएँ और वह उन के क़दमों में बैठे सुना करें। सब हाज़िरीन उन के ख़ानदान से वाक़िफ़ थे और इस से भी वाक़िफ़ थे कि नारोवाल के मुसलमान उन के वालिद का कितना एहतिराम किया करते थे। ऐसे ख़ानदान के चशमो-चराग़का ईसाई हो कर नंगे-पाँओ फिरना और भीक माँगने से न शरमाना, ख़ुदा एक ऐसा सबक़था जो जलसे में सब के दिलों को मजरूह कर रहा था। उन की ज़िंगी सब के लिए एक चलती फुर्ती ज़िंदा मलामत थी। गो उन के अलफ़ाज़सीधे-सादे थे, लेकिन वह उन के दिल से निकलते थे और सुनने वालों के दिलों पर चोट लगा कर बेसाख़्ता हैजान पैदा कर रहे थे। सब के दिलों में वलवले उठ रहे थे और सब ख़ादिमाने-दीन का यही जी चाहता था कि सब कुछ छोड़छाड़कर उन के चेले बन जाएँ। लेकिन बुज़ुर्ग मियाँ साहब चाहते थे कि वह मसीह के हक़ीक़ीचेले बनें।

इस इज्लास में ख़ुदा मुझे बड़ी बरकत मिली। मेरा पक्का इरादा हो गया कि मैं मिशन की तनख़्वाह छोड़दूँगा और जो कुछ मुझे जमात से मिलेगा उस पर क़ानाअत करूँगा। मैं यही दुआ करता था कि ख़ुदा मेरी रफ़ीक़ए-हयात को यह तौफ़ीक़दे कि वह मेरे साथ इत्तफ़ाक़करे। लब्भू मल और मल्लू चंद ने भी ख़ुदा से वादा कर दिया कि वह जब सेमिनरी को छोड़ कर इंजील जलील की ख़िदमत पर मामूर होंगे तो वह भी मिशन से एक कौड़ी तनख़्वाह नहीं लेंगे बल्कि जो जमातों से मिलेगा उस पर ही गुज़ारा करेंगे।

अगले रोज़फिर जलसा हुआ जिस में बुज़ुर्ग मियाँ साहब ने वाज़ फ़रमाया। उन की शोला-अंगेज़तक़रीर के तअस्सुरात ने सब सामिईन

के ईमान को मुस्तह्कम कर दिया और उन के इरादों को जो वह ख़ुदा के हुज़ूर कर चुके थे तक़्वियत दी।

नडाला

जलसा बर्ख़ास्त होने से पहले एलान किया गया कि आज रात को जलसा मेरे गाँव मौज़ा नडाला में होगा और मियाँ साहब अपने साथियों समेत वहाँ जाएँगे। हाज़िरीन में से जो ख़ुशी से जाना चाहे वह भी वहाँ पहुँच जाए। चुनाँचे जलसे के बाद बुज़ुर्ग मियाँ साहब अपने हमराहियों और बहुत से और लोगों के साथ मेरे और मेरी बीवी के हमराह हमारे गाँव की तरफ़ रवाना हुए। राह में हसबे-मामूल वह किताबे-मुक़द्दस की आयात और मक़ामात को समझाते और उन के निकातो-रुमूज़ बताते रहे। जब हम नडाला पहुँचे तो मैं ने आदमियों को क़रीब के गाँव में भेजा ताकि वहाँ के ईसाइयों को बुज़ुर्ग मियाँ साहब की आमद की इत्तिला हो जाए।

इस अचानक और ग़ैर-मामूली जलसे की ख़बर सुन कर बहुत से मसीही जमा हो गए। रात के खाने के बाद जलसा शुरू हुआ। अगरचे हम पैदल सफ़र करने की वजह से और गाँव के ईसाई दिन भर की मेहनत और मशक़्क़त से थके हुए थे ताहम हर शख़्स उन की तक़रीर सुनने का ख़ाहिशमंद था। इबादत के शुरू में गीत और ज़बूर गाए गए। बड़े दिल-सोज़ी से दुआएँ हुईं और मियाँ साहब ने पंजाबी में सादा लेकिन ऐसा पुरमानी दर्स दिया जिस ने हाज़िरीन में बेख़ुदी पैदा कर दी। वाज़ के बाद उन्हों ने लोगों को दुआ माँगने के लिए कहा और चंद एक ने दिली दर्द के साथ दुआएँ कीं। चूँकि रात बहुत गुज़र चुकी थी उन्हों ने बरकत का कलिमा पढ़कर सब को रुख़्सत किया।

अगले रोज़ सुब्ह के वक़्त पाक कलाम की तिलावत के बाद जलसा शुरू हुआ जो तमाम दिन होता रहा। लोग सिर्फ़ रोटी खाने और ज़रूरी हाजात से फ़ारिग़ होने के लिए चंद लम्हों के लिए जलसे में से उठ कर

गए। सारा दिन ख़ुदा की हम्दो-तारीफ़के ज़ूर और गीत गाने में, दुआएँ माँगने में, कलामे-पाक का ग़ौरो-फ़िक्र से मुतालआ करने में सर्फ़हुआ। बुज़ुर्ग मियाँ साहब ने बहुत से लोगों से शख़्सी तौर पर मुलाक़ात करके उन की रूहानी मुशकिलात को हल करने में अपना वक़्त गुज़ारा।

जब शाम हुई तो लोगों ने जल्दी जल्दी अपने खाने वग़ैरा को ख़त्म किया ताकि जलसे में शिर्कत करें। मुक़र्ररा वक़्त से बहुत पहले जमात के लोगों की एक बड़ी तादाद जमा हो गई। बुज़ुर्ग मियाँ साहब दुआ माँगने के लिए बाहर वीराने में चले गए थे। जब वापस आए तो इबादत शुरू हुई। उस रात उन्हों ने एक मुख़्तसिर सी तक़रीर की जिस से लोग बहुत मुतअस्सिर हुए। उन्हों ने फ़रमाया कि आज दुआ के वक़्त मुझे यह हिदायत हुई है कि मैं इस से ज़्यादा न बोलूँ ताकि आप सब ज़्यादा वक़्त दुआ और मुनाजात में सर्फ़करें। ख़ुदा की हम्दो-तारीफ़के गीत बुलंद आवाज़से गाएँ। एक दूसरे को अपने रूहानी तजरिबों से मुस्तफ़ीद करें। एक दूसरे को नसीहत दें। और मेरी बजाए ख़ुदा का रूह आप का हादी हो। यह कह कर जनाब मियाँ साहब फ़र्श पर बैठ गए।

चंद मिनटों तक कामिल ख़ामोशी तारी रही। इस के बाद बहुतों ने उन बरकतों का बयान किया जो ख़ुदा ने उन्हें उस हफ़्ते में बख़्शी थीं और उन के लिए ख़ुदा का शुक्र किया। बाज़ने नसीहत के चंद फ़िक़्रे टूटी फूटी ज़बान में कहे जिन का हाज़िरीन पर बहुत असर हुआ। किसी ने कोई आयत पढ़ी जो हसबे-मौक़ा थी। किसी ने दरख़्वास्त की कि मेरे साथ फ़लाँ ज़ूर या गीत गाया जाए। अगरचे अक्सर लोगों ने कुछ न कुछ कहा लेकिन जलसे में किसी क़िस्म का शोर या ग़ौग़ा न हुआ और न किसी क़िस्म की गड़बड़मची। हर एक का दिल ख़ुदा की नजात के बाइस शादमान था। मगर न जज़्बात का मुज़हरा हुआ और न जज़्बाती नारे लगाए गए। ऐसा मालूम होता था कि रूहुल-क़ुद्स के ज़ेरे-एहतिमाम हर बात क़रीने से हो रही है। इबादत का यह हिस्सा बड़ जलाली और निहायत सन्जीदा और शानदार था। इबादत के आख़िर में एक शख़्स ने

दरख़्वास्त की कि मेरे साथ सोलहवें ज़बूर का पहला हिस्सा गाया जाए। जमात खड़ी हो गई और बुलंद आवाज़ से रूहानी जोश में मामूर हो कर यह ज़बूर गाने लगी। जब इन आयात पर पहुँचे कि

> तूँ मीरास है मेरी, मेरा तू प्याला, जेहड़ मेरा हिस्सा,
> ओहदा तूँ रखवाला थाँ है मनिया गया, मेरे वास्ते जेहड़
> ओह है जगह सोहणी, सुथरा हिस्सा मेरा

उस वक़्त मैं उन बरकतों के लिए जो मुझे मिली थीं ख़ुदा का शुक्र कर रहा था और खासकर इस बात पर ख़ुशी कर रहा था कि ख़ुदा ने मेरे दिल में अपनी मदद आप का पासबान होने का इरादा पक्का कर दिया है और मेरी बीवी को भी मेरा हम-ख़याल बना दिया है। मैं ख़ुशी से झूम-झूम कर गा रहा था और मेरा दिल मुझ में निहायत मसरूर था। मुझे ऐसा मालूम हो रहा था गोया कोई नादीदनी ताक़त और ज़ेर-आवर हाथ मुझे आलमे-बाला की जानिब उठा रहा है। मेरे दहने हाथ एक ख़ादिम ने मेरे चेहरे पर ग़ैर-मामूली ख़ुशी के आसार देख कर मुझ से पूछा, "भाई जी, क्या हुआ?"

मैं ने उसे कहा, "भाई, इस वक़्त मेरा दिल ख़ुदा की बेशुमार बरकतों के बाइस बेबयान ख़ुशी से मामूर हो रहा है। और मेरी रूह ख़ुदा की शुक्र-गुज़ारी में ख़ुशी-ख़ुशी रक़्म हो रही है।"

जब ज़बूर का गाना ख़त्म हुआ तो एहसानुल्लाह ने एक मुख़्तसिर लेकिन मुअस्सिर दुआ की और बरकत के कलिमे से जमात को रुख़्सत किया। लोग अपने अपने घरों को चले गए, मगर मियाँ साहब घर से बाहर दुआ करने के लिए निकल गए और तमाम रात दुआ में गुज़ार दी। जब मुर्ग़े ने बाँग दी तो वह घर के अंदर आए। उन के चेहरे पर ख़ुशी के आसार थे। थकावट का नामो-निशान भी न था। उन का चेहरा फ़रिश्ते के चेहरे की तरह नूरानी था और चमक रहा था।[1]

[1] ब-मक़ाबला ख़ुरूज 34:29

शक्करगढ़

यह दिन[1] पंजाब की जमात में एक तारीख़ी दिन है। उस रोज़ मियाँ साहब, मिस कैम्बल, सियालकोट की सेमिनरी के तुलबा और बहुत से मर्दों और औरतों के साथ शक्करगढ़ की तरफ़ रवाना हुए जो आठ मील पर वाक़े है। हम सब भी उन के हमराह हो लिए और राह में मियाँ साहब की रूहानी बरकात में हिस्सादार हुए। हम सब पैदल थे लेकिन मुक़र्ररा वक़्त पर जलसे में पहुँच गए, क्योंकि बुज़ुर्ग जनाब को वक़्त की पाबंद का हमेशा ख़याल रहता था। यह उन की आदत में दाख़िल था कि वक़्त के पाबंद रहें, और ता-हयात यही उन की आदत रही। जलसा मियाँ साहब की ज़ेर-सदारत शुरू हुआ। उन्हों ने दुआ और गीत के बाद एक मुख़्तसिर लेकिन पुर-तासीर तक़रीर की और कल की इबादत की तरह जलसे की कार-रवाई को हाज़िरीन पर छोड़ दिया ताकि वह रूहुल-क़ुद्स की ज़ेर-हिदायत दुआएँ करें, अपने तजरिबे लोगों को सुनाएँ, हमदो-सताइश के गीत और ज़बूर गाएँ और किताबे-मुक़द्दस की आयात को पढ़कर एक दूसरे को नसीहत दें।

जब वह बैठ गए तो बहुतों ने मुख़्तसिर तौर पर उन बरकतों का ज़िक्र किया जो उन्हों ने ख़ुदा से उन अय्याम में पाई थीं और बड़ी सन्जीदगी से अपने आप को नए सिरे से ख़ुदा की और इंजील की दिलो-जान से ख़िदमत करने के लिए मख़्सूस किया। बाज़ ने दुआएँ और मुनाजातें कीं, और बाज़ ने ख़ुदा की तम्जीद के गीत और ज़बूर गाय।

उस वक़्त मेरी बीवी उठी और कलामुल्लाह में से आस्तर 4:16 पढ़ी,

> (मैं) बादशाह के पास जाऊँगी, गो यह क़ानून के ख़िलाफ़ है। अगर मरना है तो मर ही जाऊँगी।

[1] यानी 24 अगस्त 1896

उस की आवाज़ भर्राई हुई थी। वह जमात की तरफ़ मुतवज्जिह हो कर जमात की ग़ुर्बतो-नादारी और अपनी मदद आप की ज़रूरत का ज़िक्र करके बोली, "चूँकि जमात को अपने पाँओ पर खड़ा होना लाज़िमी है गो वह अपने इफ़्लास की वजह से हमारी मौजूदा तनख़्वाहें नहीं दे सकती फिर भी मैं ने और मेरे ख़ावंद ने यह फ़ैसला कर लिया है कि हम मिशन की तनख़्वाह को छोड़देंगे और ख़ुदा की मदद से उस आम्दनी पर किफ़ायत करेंगे जो हम को जमात से मिलेगी, ख़्वाह वह थोड़ी ही क्यों न हो। मैं अपनी ज़िंदगी हाथों में ले कर बादशाह के पास जाऊँगी। अगर ऐसा करने से मैं मारी गई तो मारी गई। आप सब हमारे लिए दुआ करें।"

जमात पर ख़ामोशी तारी हो गई। फिर चंद मिनटों के बाद एक शख़्स उठा लेकिन रिक़्क़त के ग़लबे की वजह से कुछ बोल न सका और "भाइयो" कह कर ज़ार ज़ार रोने लगा। उस के साथ सारी जमात फूट फूट कर रोने लगी।

बुज़ुर्ग मियाँ साहब ने कलामे-पाक में से आयात सुनाईं और ईमानदारों की मिसालें दीं जिन का ईमान हर आज़माइश में साबित-क़दम रहा। तब जमात के बहुत से लोगों ने हमारे वास्ते दुआएँ कीं।

दुआ के बाद एक ख़िदमे-दीन ने बेड़जोश से कहा, "मैं बहुत चाहता हूँ कि जमात में अपनी मदद आप की तहरीक को तरक़्क़ी मिले, लेकिन गंडा मल हम सब से ज़्यादा दिलेर हैं। मेरा जी तो बहुत करता है कि मैं भी उन की तरह सारी तनख़्वाह क़ुर्बान कर दूँ, लेकिन हालात से लाचार हूँ। चुनाँचे मैं अपनी तनख़्वाह का तीसरा हिस्सा छोड़देता हूँ।"

एक और ख़िदमे-दीन ने उठ कर कहा, "मैं तनख़्वाह तो नहीं छोड़ सकता, पर अपना सफ़र-ख़र्च छोड़दूँगा और आइंदा ख़ुद अपने ख़र्च से जमातों में फिरा करूँगा।"

एक शख़्स ने कहा, "मैं अपनी मदद आप की तहरीक की तरक़्क़ी के लिए अपनी तमाम आम्दनी का दसवाँ हिस्सा दिया करूँगा।"

इस तरह जलसे के अक्सर हाज़िरीन ने ख़ुद-इन्कारी और ईसार के वादे ख़ुदा के हुज़ूर किए। तमाम जमात के चेहरों पर बशाशत और ख़ुशी नज़र आती थी, क्योंकि उन के दिल मसरूर थे। चारों तरफ़ से ख़ुदा की तम्जीद और तारीफ़ की आवाज़ें बुलंद हुईं।

मियाँ साहब के चेहरे पर एक ख़ास क़िस्म की ख़ुशी नज़र आती थी जो रूहुल-क़ुद्स की तरफ़ से थी। उन का चेहरा एक अजीब नूर से चमक रहा था। उन्हों ने खड़े हो कर फ़रमाया, “भाइयो, यह वक़्त ख़ुदा बाप का ख़ुदावंद मसीह के वसीले शुक्र करने का वक़्त है जिस ने अपना रूह बख़्श कर हमारे दिलों में नेक इरादे डाले हैं। हम सब पर वाजिब है कि भाई मल और उन के ख़ानदान के लिए खासतौर पर दुआ करें जिन्हों ने दुआ के बाद ख़ुदा की मरज़ी को मालूम करके सब कुछ छोड़ दिया है। हम अपने तजरिबे से जानते हैं कि ख़ुदा उन की हर मुशकिल को आसान करेगा। हम बाक़ि भाइयों के लिए भी दुआ करें जिन्हों ने ख़ुदा के हुज़ूर वादे किए हैं कि ख़ुदा उन के इरादों को मज़बूती बख़्शे।”

इस के बाद उन्हों ने ऐसी दुआ की जो दिल से निकलती थी, क्योंकि उन्हों ने अपनी कोशिशों को फलदार होते देखा था। शुक्र-गुज़ारी और हमद के ज़बूर गाए गए और फिर हाज़िरीन की ज़िंदगियों की तक़दीस के लिए दुआएँ की गईं। आख़िर में बुज़ुर्ग मियाँ साहब ने सब को बरकत दे कर जलसा बर्ख़ास्त किया।

दूसरे रोज़ सुब्ह-सवेरे फिर जलसा शुरू हुआ। एहसानुल्लाह ने निहायत सन्जीदगी से एक ऐसा दर्स दिया जो सुनने वालों को उम्र भर न भूला। जमात का दिल जोशे-अक़ीदत से मामूर था। सब उन की तरफ़ टिकटिकी लगाए बड़े ग़ौर से उन के अलफ़ाज़ को सुन रहे थे। सब महसूस कर रहे थे कि वह नहीं बल्कि रूहुल-क़ुद्स उन के ज़रीए हम से कलाम कर रहा है। यह आख़िरी जलसा था, और लोग उन के एक एक लफ़्ज़ को महवियत के आलम में आ कर अपने दिलों में जगह दे रहे थे। क्योंकि उन के अलफ़ाज़ इंजील शरीफ़ के हक़ीक़ी तर्जुमान हो कर जलसे में आबो-रंग पैदा कर

रहे थे। जज़्बाती नारों के बुलंद होने के बजाए दिल से दुआएँ और शुक्र-गुज़ारियाँ उठ रही थीं जो उन्हें ख़ुदा की मुहब्बत की क़ुर्बत में ले जा रही थीं। मियाँ साहब के जज़्बात का बेसाख़्ता इज़हार, उन की शुक्र-गुज़ारी की गर्मी और गुदाज़ के अलफ़ाज़ लोगों के दिलों को फ़िर्दौस की जानिब उड़ाए लिए जा रहे थे।

उन के वाज़ के बाद हमदो-तारीफ़ के गीत और ज़बूर गाए गए। इस के बाद जमात के चंद लोगों ने एक दूसरे की हिम्मत बढ़ाई और ईमान की मज़बूती और इरादों की तक्मील तक पहुँचाने की नसीहत की। यह जलसा दोपहर तक जारी रहा। आख़िरकार एहसानुल्लाह ने दुआ और कलिमाते-बरकत से जमात को रुख़्सत किया। जलसे के बाद एक शख़्स ने जिस का हमें गुमान भी न था सब को खाने की दावत दी। सब ने मिल कर उसे बड़ी ख़ुशी के साथ खाया। अगरचे खाना सादा और बग़ैर किसी क़िस्म के तकल्लुफ़ के तैयार किया गया था फिर भी हम उसे उम्र भर न भूले। क्योंकि वह प्यार के साथ तैयार किया गया था। बाहमी मुहब्बत और मेल-मिलाप ने उसे लज़ीज़ और मर्ग़ूब कर दिया था। वह हक़ीक़ी प्रेम-भोजन था जिस को हम कभी न भूले। चुनाँचे 53 साल के बाद जब मिस कैम्बल फ़रवरी 1949 में मुझे गुरदासपुर में मिलीं तो शक्करगढ़ के जलसे का ज़िक्र करते हुए बोलीं, “भाई जी, आप को शक्करगढ़वाला खाना याद है?” मैं ने जवाब दिया, “बेशक, उस मुहब्बत की ज़ियाफ़त को कौन भूल सकता है?”

खाने के बाद सब लोग ख़ुशी और बरकत, प्यार और मुहब्बत से आपस में बग़लगीर हो कर अपने अपने गाँव को चले गए। सब अपने अपने इलाक़े और गाँव में उन बरकतों का चर्चा करने लगे जो उन्हें उस एक हफ़्ते के दौरान मिलीं। हर जगह जलसे होते गए और जमातों में रूहानी बेदारी की लहर चल पड़ी। लोग जगह जगह ख़ुदा के हुज़ूर गुज़श्ता गुनाहों से तौबा करके नई ज़िंदगी बसर करने का वादा करने लगे। नीम-जान पज़-मुर्दा रूहों में ज़िंदगी के आसार नज़र आने लगे।

> अपनी मदद आप की जो तहरीक शक्करगढ़के जलसे में शुरू हुई थी वह दिन-ब-दिन ज़ोर पकडती और तरक़्क़ीकरती गई। देहात की जमातों के ईसाई दिलो-जान से ख़ुदा के काम और ख़िदमत में हिस्सा लेने लगे। वह दिल खोल कर अपने ख़ादिमाने-दीन की माली मदद करने लगे। न देने के रुज्हान और कंजूसी को हर जगह शिकस्त होने लगी, और ईसाई ख़ुदा के घर में इबादत के वक़्त अच्छे से अच्छे नज़राने और क़ीमती से क़ीमती हदिये लाने लगे। ख़ादिमाने-दीन के भी हौसले बुलंद हो गए, और वह जमात के लोगों को दिलो-जान से कलामे-पाक की तालीम देने और ज़ौक़-शौक़से इंजील सुनाने लगे। हर काम मेहनत, मुहब्बत और जाँ-फ़िशानी से होता गया। नतीजा यह हुआ कि ख़ुदा ने भी उन के काम में कामयाबी और उन के कलाम पर बरकत बख़्शी।

शक्करगढ़के जलसे के बाद मिस कैम्बल दीगर औरतों और मर्दों समेत सियालकोट चली गईं। वहाँ जा कर उन्हों ने उन वाक़िआत का ज़िक्र किया जो ज़फ़रवाल, नडाला और शक्करगढ़में ख़ुदा के रूह के ज़रीए ज़ुहूर में आए थे। जिस किसी ने उन्हें सुना उस ने ख़ुदा का शुक्र किया कि अब पंजाब की जमात मग़रिब की माली इम्दाद से आज़ाद हो कर अपने पाँओ पर आप खड़ी हो जाएगी। साथ साथ मग़रिबी जमातों की पाबंदियों की ज़ंजीरें भी टूट जाएँगी और जमातें आज़ाद हो जाएँगी और ख़ुदावंद की ख़िदमत से मामूर हो कर ज़िंदगी बसर करेंगी। हाँ, वह ग़ैर-मसीहियों को मसीह ख़ुदावंद के क़दमों में ला कर उन्हें इबलीस की ग़ुलामी से रिहाई देंगी। जो इन जलसों के हालात सुनता वह ख़ुदा का शुक्र करता कि उस ने एहसानुल्लाह जैसा शख़्स पंजाब में बरपा किया है जो मूसा की मानिंद बनी इस्राईल को ग़ुलामी से निकाल रहा है। गंडा मल लिखते हैं,

> मौसमे-सरमा के शुरू में गुरदासपुर की जमात ने एहसानुल्लाह को और मुझे बुलाया। हम दोनों मियाँ साहब के दो चेलों के हमराह वहाँ पहुँचे। जलसे शुरू हुए। मियाँ साहब की आला रूहानियत के पुरजोश वाज़ें

> ने एक अजीब समाँ बांध दिया। उन के अलफ़ाज़ में अबदी कशिश थी, क्योंकि वह अबदी ज़िंदगी की बातें करते थे। उन की हैजान-अंगेज़ तक़रीरों ने लोगों के दिलों में वलवला पैदा कर दिया। सब छोटे बड़े गुनाहों से क़ायल हो कर नादिम और पशेमान हो रहे थे। उन्हों ने रो रो कर बड़ी फ़रोतनी के साथ ख़ुदा के हुज़ूर अपने गुनाहों का इकरार किया। जमात की मुद्दतों की पज़्ज़-मुर्दा और ठंडी पड़ी हुई मुहब्बत दुबारा ज़िंदा हो गई, और मियाँ साहब के शोलेदार वाज़ों की गर्मी ने उस में जान डाल दी। सुस्ती और ग़फ़लत ने पिछाड़ खाई और शैतानी फ़ौज को हर तरफ़ शिकस्त मिलने लगी। हाज़िरीन के दिल रूहानी जोश से भर गए, और शहरी और देहाती ईसाइयों ने ख़ुदा के हुज़ूर नई ज़िंदगी गुज़ारने का पक्का वादा किया। इंजील के मुबल्लिग़ीन ने अज़-सरे-नौ दिलो-जान से नजात की ख़िदमत करने का अलानिया तौर पर मुसम्मम इरादा ज़ाहिर किया। जलसे के चारों तरफ़ लोगों के चेहरों पर वह ख़ुशी नज़र आ रही थी जो गुनाहों से रिहाई पाने का लाज़िमी नतीजा है। सब जमातों के लोग जो गुरदासपुर में जमा थे ख़ुदा का शुक्र करके वादा करने लगे कि वह अपनी ज़िंदगियों को मसीह के लिए मख़्सूस करके अपने रिश्तेदारों और दोस्तों को भी मसीही ज़िंदगी बसर करने की तरग़ीब देंगे बल्कि हिंदुओं मुसलमानों को इंजील का पैग़ाम सुनाएँगे।

गुरदासपुर से वापस आ कर एहसानुल्लाह नारोवाल के इलाक़े के देहात में निकल गए। वह जहाँ जाते थे ख़ुदा का पाक रूह उन्हें इस्तेमाल करता था। उन के जलसों के नतायज ऐसे कामयाब और शानदार थे कि उन्हें पढ़कर बेइख़्तियार आँखों के सामने रसूलों के आमाल की किताब के इबतिदाई अब्वाब का समाँ बंध जाता है। जब राबर्ट क्लार्क ने दिसंबर में नारोवाल जा कर उन वाक़ियात को अपने कानों से सुना और आँखों से देखा तो वह ख़ुदा का शुक्र बजा लाए। उन्हों ने उस वक़्त लिखा,

> ख़ुदा ने एहसानुल्लाह को बुलाया है ताकि वह नारोवाल को अपना सदर-मक़ाम बना कर जगह जगह जाएँ, जमातों को जगाएँ और उन की पज़्ज़-

> मुर्दा ज़िंदगियों को अज़सरे-नौ शगुफ़्ता करें। यहाँ इर्दगिर्द के चर्च मिशन के गाँव में भी डेढ़हज़ार के क़रीब ईसाई बस्ते हैं जिन की ज़िंदगियों में वह ख़ुदा के फ़ज़्ल से जान डाल सकते हैं।

सालाना रिपोर्ट में लिखा है,

> ख़ुदा ने एहसानुल्लाह को नारोवाल और उस के इर्दगिर्द के देहात में अजीब तौर से इस्तेमाल किया है। उन्हों ने अपनी तनख़्वाह छोड़ दी हुई है, क्योंकि वह इस बात को ज़्यादा पसंद करते हैं कि हिंदुस्तानी जमात उन के अख़राजात बरदाश्त करे। अमरीकन मिशन की एक ख़ातून लिखती हैं, “मैं ने अपनी ज़िंदगी भर ऐसी रूहानियत कहीं नहीं देखी जैसी सियालकोट ज़िला में देखी है। इस रूहानी ज़िंदगी का सहरा नारोवाल के एहसानुल्लाह के सर पर है जिस ने अपना सब कुछ मसीह पर निसार कर दिया है। उस के वाज़ में क़ुदरत है। सख़्त दिलों में आग लग जाती है। गुनाहगारों के सीने ज़ख़्मी हो जाते हैं, और वह बेख़ुदी के आलम में अपने उन गुनाहों का इकरार करते हैं जो पहले कभी सुने न गए थे। हमारे इल्मे-इलाहियात के तुलबा इस क़दर मुतअस्सिर हुए हैं कि वह हर रात को जलसे करते हैं। उन के दिलों में रूहों के लिए एक ग़ैर-फ़ानी तड़प पैदा हो गई है।”

दिल्ली तक का दौरा

क्रिस्मस के अय्याम बटाला में अपने ख़ानदान में काट कर एहसानुल्लाह ने जनवरी 1897 के शुरू में पंजाब के शहरों और क़स्बों की जमातों की जानिब रुख़ किया। वह अमृतसर, जालंधर, होशियारपुर, लुधियाना, अम्बाला और दिल्ली वग़ैरा शहरों में गए। उन्हों ने इन जगहों की जमातों में उन की बेदारी के लिए जलसे किए। तमाम पंजाब, सूबा सरहद, बलोचिस्तान, सिंध और दिल्ली के सूबों में दूर दूर तक उन की शोहरत फैल चुकी थी। अख़बारों में उन के जलसों के ठोस नतीजों का ज़िक्र उमूमन होता रहता था। उन दिनों में रजब अली अमृतसर से अख़बार

"सफ़ीरे-हिंद" निकालते थे और लुधियाना से वेरी साहब अख़्बार "नूर-अफ़्शाँ" शाए करते थे। इन दोनों अख़्बारों के वसीले और सियालकोट, गुजराँवाला के अज़्ला के ईमानदारों के ख़ुतूत वग़ैरा के ज़रीए शहरों की जमातें उन के काम से ख़ूब वाक़िफ़ थीं। चुनाँचे वह जिस क़स्बे और शहर में गए उन का ख़ैर-मुक़द्दम निहायत तपाक के साथ किया गया।

अमृतसर के ईमानदार उन के तबलीग़ी जोश और रूहानी ज़िंदगी को जानते थे। जालंधर में गोलक नाथ और दीगर सरबराह अस्हाब बेगम एहसानुल्लाह की वजह से उन के दोस्त और दूर के रिश्तेदार थे। होशियारपुर में उन के देरीना दोस्त डाक्टर दीना नाथ प्रेतू दित्ता थे जो पंजाब मिशनरी सोसायटी के सेक्रेटरी भी थे जो उन के ख़ानदान की क़ाबिल आम्दनी का ज़िम्मा उठा चुकी थी। लुधियाना में वेरी साहब जैसे ज़बरदस्त मिशनरी, जोशीले मुबल्लिग़ और ज़ेर-आवर आलिम थे जो मियाँ साहब के बेड़मद्दाह थे। अम्बाला में अम्रीकन मिशन के ग़यूर मिशनरी रहते थे। दिल्ली में उन के पुराने हेड-मास्टर भोला नाथ घोष के फ़र्ज़न्द एस.ए.सी. घोष ख़ादिमे-दीन थे। वहाँ एस.एस. आल्नट और लीफ़्राए जैसे तबलीग़ी और रूहानी जोश से भरे हुए मिशनरी भी रहते थे। इन और दीगर अस्हाब ने उन की आमद पर बड़ी ख़ुशी की और अपने अपने शहरों में बेड़एहतिमाम के साथ जलसे किए।

सियालकोट और गुजराँवाला के अज़्ला के जलसों की तरह इन शहरों के जलसे बेड़कामयाब साबित हुए। एहसानुल्लाह की तक़रीरों ने हर जगह आग लगा दी। यह जमातें अपने ख़ादिमाने-दीन के मीकानिकी ख़ुश्क-बयान वाज़ों की आदी हो चुकी थीं। उन के ख़ादिमाने-दीन की ज़बानें मख़्मल की तरह नर्म थीं। उन के अलफ़ाज़ की तराश में शायराना मुरस्सा-साज़ी और मुख़्तलिफ़ फ़िक्रों की रंगीनियाँ होती थीं। लेकिन मियाँ साहब जली-कटी सुनाए बग़ैर खरी खरी बातें करते थे। उन की साफ़गोई में मुहब्बत की झलक थी। उन के चुने तुले मगर सादे अलफ़ाज़ में बिजली की तड़प थी। उन के जज़्बात के इज़्हार में बला की गर्मी

थी। उन की तक़रीरें शोला-असर थीं, क्योंकि रूहुल-क़ुद्स की आग उन का असली और हक़ीक़ी सरचश्मा थी। यह जमातें गहरी नींद सो रही थीं, और उन का पिछला हाल पहले से बदतर हो रहा था, क्योंकि यह इस दुनिया की आलूदगी से बच निकले थे

> बाद में एक बार फिर इस में फंस कर मग़लूब हो गए थे। (2 पतरस 2:20)

एहसानुल्लाह ने इन जलसों में उन की ज़िम्मेदारियों को उन्हें याद दिलाया और तबलीग़ की ज़रूरत की जानिब उन की तवज्जुह दिला कर उन्हें "अंग्रेज़ियात" के नतायज से आगाह किया। उन्हों ने उन्हें मग़रिब के ईसाई फ़िर्क़ों की पाबंदियों और ज़ंजीरों से आज़ाद होने और हिंदुस्तानी ईमानदारों को मुत्तहिद हो कर ग़ैर-मसीही फ़िर्क़ा-बंदियों से जंग करने की ज़रूरत पर हंगामा-ख़ेज़ तक़रीरें कीं जिन से हर शहर और क़स्बे के लोग निहायत मुतअस्सिर हुए। क्योंकि यह तल्ख़ हक़ीक़त एक ऐसे शख़्स की ज़बान से निकलते थे जो ख़ुद सब कुछ छोड़कर नंगे-पाँओ खड़े उन से बातें करता था। मियाँ साहब इस बात पर हर शहर में ज़ोर देते थे कि जमातों को मग़रिब के रुपए से आज़ाद हो कर ख़ुद अपने अख़राजात का बोझ उठाना है, वर्ना वह आज़ाद और मुख़्तार नहीं हो सकतीं। यही अमल उन्हें ज़िंदा रखेगा। जब तक मग़रिब का रुपया है जमात बंदर की तरफ़ बंदर के इशारों पर नाचती रहेगी। उन्हों ने जा-ब-जा अलानिया कहा कि जमातों के लिए यह अज़हद ज़रूरी है कि वह मग़रिब के ख़यालात की भड़कीली पोशाकें उतार फैंकें और मसीह के अक़ायद का नए सिरे से मुतालआ करके हिंदुस्तान के ख़यालात और तहज़ीब-ओ-सक़ाफ़त के मुताबिक़ उन्हें हिंदुओं और मुसलमानों के सामने पेश करें ताकि जो अक़ायद अब पेचीदा मुअम्मे ख़याल करके रद्द किए जाते हैं वह हिंदी और इस्लामी फ़लसफ़े की रोशनी में क़ाबिले-क़बूल हो सकें।

मियाँ साहब अक्सर कहा करते थे कि मसीह का ईमान हिंदू और मुस्लिम तह्ज़ीबों का संगम है जिस तरह इलाहाबाद में गंगा और जमुना दरियाओं का संगम है और कि हिंदू फ़लसफ़ा और इस्लामी ख़यालात सिर्फ़ मसीही ईमान के गहवारे में ही सही नश्वो-नुमा पा सकते हैं। जिस तरह यहूदीयत पौलुस रसूल के लिए मसीह तक लाने में उस्ताद बनी उसी तरह यूनान और उपनिशद हिंदुस्तान के लोगों को इंजील तक ला सकते हैं। इस से नाज़रीन पर ज़ाहिर हो गया होगा कि इज्तिहादे-फ़िक्र और तज्दीदे-उस्लूब एहसानुल्लाह की हमागीर ख़ुसूसियत थी। उन्हों ने कहा कि यह बातें शहर की जमात के इल्मदोस्त ईसाई ही कर सकते हैं, क्योंकि वह ऐसे तबक़े से आए हैं जिन का पसमंज़र इस्लामी और हिंदी फ़लसफ़ा हैं। उन में से बाज़ बड़े ज़बरदस्त आलम हैं जो ख़ुद हिंदूमत और इस्लाम के अक़ायद को परख कर मसीही हुए हैं। चुनाँचे वह इस अज़ीम काम को सरअन्जाम देने के अहल भी हैं। उन्हों ने कहा कि गाँव और देहात के मसीही जो अलिफ़ बे से भी नावाक़िफ़ हैं इस पेचीदा चैलेंज को सर नहीं कर सकते।

यह जलसे क़ाबिले-यादगार थे, क्योंकि गो मुख़्तलिफ़ जमातों के सरबराह इन बातों को महसूस करके आपस में बह्स करते रहते थे कि क्या करें, लेकिन मियाँ साहब से पहले किसी ने जगह जगह जा कर जलसों में अलानिया ऐसी साफ़गोई से इन मज़ामीन पर तक़रीरें नहीं की थीं। उन की जोशीली तक़रीरों ने हर जगह महशर बरपा कर दिया, क्योंकि यह बातें उन के दिल से निकलती थीं और सुनने वालों पर क़रतन असर करती थीं। अब जमात के राहनुमाओं ने इन बातों की तरफ़ तवज्जुह दे कर चंद तजावीज़ तैयार कीं जिन का ज़िक्र आगे चल कर किया जाएगा।

दिल्ली के शरीफ़ुन-नफ़्स मिशनरी मियाँ साहब के लेक्चरों से बहुत मुतअस्सिर हुए। खासकर लीफ़ाए जो बाद में लाहौर के तीसरे बिशप बने, एहसानुल्लाह के बेड़मद्दाह हो गए और ता-हयात उन की क़दर

और एहतिराम करते रहे। वह जब कभी मियाँ साहब को ख़त लिखते तो "बरादरे-अज़ीज़" से शुरू करते और "आप का मुहिब्बे-सादिक़ लीफ़्राए" से ख़त्म करते। एहसानुल्लाह दिल्ली के दौरे में एस.ए.सी. घोष के घर मेहमान थे। घोष लिखते हैं,

> जब एहसानुल्लाह फ़क़ीराना लिबास में दौरा करते दिल्ली आए तो वह मेरे पास ठहरे। उन दिनों में मेरी शादी नहीं हुई थी। मैं बी.ए. के बाद एस.पी.जी. और कैंब्रिज मिशन का मेंबर हो गया था। मियाँ साहब नंगे-पाँओ साधुओं का लिबास पहने मेरे पास आए। उन की तक़रीरों में ग़ज़ब का जोश होता था जिन की गर्मी और तेज़ी मदहोश कर देती थी। मैं उन का चेला हो गया। मेरा महबूबतरीन मश्ग़ला यही था कि उन के क़दमों में बैठा रहूँ। उन की बातें ऐसी होती थीं जैसे आसमान का कोई फ़रिश्ता बात कर रहा हो। एक दिन कहीं मैं ने उन के सामने अपने भंगी को "ओ भंगी" कहकर बुलाया। बस मेरी शामत आ गई। उन्हों ने मुझ से पूछा "उस का क्या नाम है?"
>
> मैं ने कहा, "केवल।"
>
> उन्हों ने मुझे हुक्म दिया कि उसे बुलाओ। वह आया और हम दोनों के सामने फ़र्श पर बैठ गया। उन्हों ने फ़रमाया, "तुम कुर्सी पर से उठ कर उस के साथ फ़र्श पर बैठो और उसे भाई केवल कहो।"
>
> मैं ने कहा, "आप का फ़रमान बरसरो-चशम।" मैं उस के पास बैठ गया और कहा, "भाई केवल। कहो, तबीअत कैसी है।"
>
> तब उन्हों ने फ़रमाया, "उसे ख़ुदावंद मसीह की नजात की ख़ुश-ख़बरी सुनाओ।"
>
> मैं ने उसे बताया कि हमारा ख़ुदावंद दुनिया में ख़ुदा का अवतार हो कर आया ताकि जहान के लोगों को शैतान की ग़ुलामी से नजात दे।
>
> वह इन बातों से ऐसा मुतअस्सिर हुआ कि उस रोज़ के बाद वह ईसाई हो कर ख़ुदावंद में मेरा भाई हो गया।

मैं हमेशा मग़रिबी तहज़ीब से जिस ने जमात में घर कर रखा था और मग़रिबी फ़िक्र की जुमूद से बेज़ार था। मुहिब्बे-वतन होने की वजह से मैं मुख़्तलिफ़ मिशनों की पाबंदियों से और सिविल और फ़ौजी हुक्काम और अंग्रेज़ मसीहियों के दस्तूरों से सख़्त नालाँ था। चुनाँचे मियाँ साहब की तक़रीरों ने मेरे दिल में घर कर लिया और मैं अपने ख़यालात में पक्का हो गया। एहसानुल्लाह में इल्यास नबी और यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले की रूह कारफ़रमा थी, और वह इन नबियों की तरह निडर और बेबाक हो कर साफ़गोई से काम लेते थे। अगरचे इस क़िस्म की साफ़गोई मिशनरी हलक़ों में वैसी ही नापसंद की जाती थी जिस तरह इल्यास नबी की बेबाकी शाहे-इस्राईल अख़ियाब को और यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले की साफ़गोई हेरोदेस और हेरोदियास को पसंद न आई थी। उन की तक़रीरें एक आंधी थीं जो भूसे को गेहूँ से जुदा कर देती थीं। वह आग थीं जिस में भूसी जल जाती थी। ख़ालिस दिल इस आग में से ख़ालिस सोना हो कर निकलते थे। अब तक मियाँ साहब जैसा आदमी पंजाब के मसीहियों में पैदा नहीं हुआ।

बूबक मिराली

शहरों और क़स्बों का दौरा करने के बाद एहसानुल्लाह नारोवाल वापस लौट आए। अय्यामे-रोज़ा में यू.पी. मिशन के इलोक़े के गाँव बूबक मिराली की जमात ने उन्हें और गंडा मल को दावत दी। यह गाँव नारोवाल से तक़रीबन 5 मील के फ़ासिले पर है। मुक़द्दस हफ़्ता नज़्दीक था। वहाँ के निसार अली साहब ने अपने इलोक़े के तमाम मुबश्शिरों, मुबल्लिग़ों, उस्तादों, देहात के मसीहियों और इर्दगिर्द के यू.पी. मिशन के इलाक़े के ख़ादिमाने-दीन को इकट्ठा कर लिया। गंडा मल साहब लिखते हैं,

> जब हम दोनों बूबक मिराली पहुँचे तो वहाँ एक बड़ी जमात जमा थी। इबादत शुरू हुई। दुआ के बाद ज़ूर गाए गए। फिर बुज़ुर्ग एहसानुल्लाह

ने देहाती भाइयों की समझ के मुताबिक़ पंजाबी ज़बान में ख़ुदावंद मसीह की सलीबी मौत पर वाज़ करना शुरू किया। उन्हों ने नजात-दहिंदे के दुख को जमात के सामने ऐसे दर्द-नाक अलफ़ाज़ और लहजे में पेश किया कि सुनने वाले बेइख़्तियार रोने लगे। वह निहायत मौज़ूँ और मुअस्सिर मिसालों से ख़ुदावंद की सलीबी मौत का बयान कर रहे थे, ऐसा कि हाज़िरीन महसूस कर रहे थे कि वह अपनी आँखों से उस नज़ारे को देख रहे हैं। उन का एक ही मज़्मून था कि अगरचे जहान का नजात-दहिंदा हमारे गुनाहों की ख़ातिर सलीब पर मुआ तो भी हम अब भी अपने गुनाहों से मुहब्बत रख कर उन्हें अपने सीनों से लगाए रखते हैं। न हम उन्हें छोड़ते हैं और न ही उन्हें तर्क करना चाहते हैं। जमात के लोग दहाड़ें मार कर रो रहे थे। ख़ुदावंद के दुखों को याद करके वह आँसू बहा रहे और अपने दिलों को इन आँसुओं से पाक कर रहे थे।

जब रोने की आवाज़ ज़रा धीमी हुई तो एक ख़ादिमे-दीन उठा। लेकिन उस पर ऐसी रिक़्क़त तारी थी कि एक लफ़्ज़ भी न बोल सका। उस के आँसू बहते जा रहे थे और वह आख़िर में मज्बूर हो कर बैठ गया। जमात के लोगों की नज़रें उन के अपने अपने गुनाहों पर लगी थीं और तमाम लोग सोगवार हो कर ख़ामोश बैठे थे। चंद मिनटों के बाद लोग दुआ करने लगे। उन्हों ने ख़ुदा से अपने गुनाहों की मुआफ़ी और सच्ची तौबा की तौफ़ीक़ माँगी। बाज़ लोगों ने अलानिया दूसरों के सामने अपनी दुश्मनी का इकरार किया और एक दूसरे के गले लग कर अपने क़ुसूरों की मुआफ़ी माँगी और बाहमी मेलो-मुहब्बत के साथ रहने का अह्द किया। नतीजा यह हुआ कि मातम के बाद गुनाहों की मुआफ़ी के एहसास ने उन के दिलों को रूहानी ख़ुशी से मामूर कर दिया। जब मियाँ साहब ने दुआए-बरकत से जलसा बर्ख़ास्त किया तो देहात के ख़ादिमाने-दीन और दीगर लोग ख़ुदा की हम्दो-तारीफ़ के गीत, ज़बूर और रूहानी ग़ज़लें गाहते हुए अपने अपने गाँव की तरफ़ चले गए।

वायज़ के साथ ख़िदमत

उन ही सालों में रहमत मसीह वायज़ ने चर्च मिशन से क़ताए-ताल्लुक़ कर लिया। उस वक़्त वह बटाला में गफ़्फ़ार साहब के साथ काम करते थे। गफ़्फ़ार साहब ने उन्हें बहुतेरा ऊँच नीच समझाया मगर उन पर कोई असर न हुआ। जब बाबू सिंघा को इस मुआमले की ख़बर हुई तो उन्हों ने मियाँ साहब को बुलाया। वायज़ साहब ने उन्हें सब कुछ बताया कि किस तरह ख़ुदा के साथ उन्हों ने इंजील की ख़िदमत करने का वादा किया हुआ है और अब वह आज़ादाना एहसानुल्लाह की तरह ख़ुदा की ख़िदमत करेंगे। बाबू सिंघा और वारिसुद-दीन ने भी उन्हें बहुतेरा समझाया, लेकिन सब बेहासिल। वह यही कहते गए,

> मत कहो कुछ भी मसीह यिसू के मस्ताने को
> शमा साँ जलना सिखाता है वह परवाने को

आख़िरकार पंजाब मिशनरी सोसायटी उन के बीवी बच्चों के अख़राजात की कफ़ील हो गई, और वह भी साधुआना न लिबास पहन कर ख़ुदा का नाम ले कर घर से निकल पड़े। क़िबला वायज़ लिखते हैं,

ख़ुदावंद के क़ौल पर मेरा ईमान पुख़्ता था कि

> मैं तुझे कभी नहीं छोड़ूँगा, मैं तुझे कभी तर्क नहीं करूँगा
> (इब्रानियों 13:5)

हबक़्क़ूक़ नबी की ग़ज़ल के अलफ़ाज़ मेरी तसल्ली का बाइस थे,

> अभी तक कोंपलें अन्जीर के दरख़्त पर नज़र नहीं आतीं, अंगूर की बेलें बेफल हैं। अभी तक ज़ैतून के दरख़्त फल से महरूम हैं और खेतों में फ़सलें नहीं उगतीं। बाड़ों में न भेड़बकरियाँ, न मवेशी हैं। ताहम मैं रब की ख़ुशी मनाऊँगा, अपने नजातदहिंदा अल्लाह के बाइस

> शादियाना बजाऊँगा। रब क़ादिरे-मुतलक़ मेरी क़ुव्वत है। वही मुझे हिरनों के से तेज़ पाँओ मुहय्या करता है, वही मुझे बुलंदियों पर से गुज़रने देता है।
> (हबक़्क़ूक़ 3:17-19)

क़ाबिला वायज़ भी एहसानुल्लाह की तरह जा-ब-जा ख़ुदावंद की नजात की मुनादी करने और जमातों को जगाने लगे। बाज़ औक़ात ख़ुदावंद मसीह के यह दोनों आशिक़ इकट्ठे काम करते थे, लेकिन अक्सर औक़ात ऐसा होता था कि अगर एक पंजाब की एक तरफ़ जाता तो दूसरा दूसरे कोने में इंजील की ख़िदमत करता था।

काँगड़ा

अप्रैल 1897 में चर्च मिशन ने एहसानुल्लाह को काँगड़ा के इलाक़े की जमातों को बेदार करने की ख़ातिर बुलाया। इन जमातों की धड़ेबाज़ियों और बाहमी झगड़ों ने उन की रूहानी ज़िंदगी को तबाह-हाल कर रखा था। मियाँ साहब ने काँगड़ा में जलसे किए। पहले जलसे का नतीजा यह हुआ कि जगह जगह के ईसाई अलानिया अपने क़ुसूरों का इकरार करके एक दूसरे के गले लगे। हर जगह बाहमी मेल-मिलाप हो गया। लोगों ने ख़ुदा के हुज़ूर सच्चे दिल से तौबा करके मसीह के ज़िंदा बदन के अज़ु होने का वादा किया। एहसानुल्लाह के साथ मल्लू चंद भी थे। उन्हों ने वायज़ साहब को भी बुला लिया था। यह जलसे एक हफ़्ते तक होते रहे। क़ाबिला वायज़ लिखते हैं।

> एक जलसे में एहसानुल्लाह ने ख़ुदावंद मसीह की अजीब क़ुदरतों का बयान किया और रूहुल-क़ुद्स की तासीर पर निहायत पुरजोश वाज़ किया। उन्हों ने बताया कि मसीही ईमान मैं किस क़दर क़ुव्वत और क़ुदरत है जो दुनिया की और हर इनसान की ज़िंदगी की काया पलट देता है। उन्हों ने तारीखे-आलम से मिसालें दे दे कर उन अजाइब का ज़िक्र किया जो

> रूहुल-क़ुद्स के वसीले वुजूद में आते चले आए हैं। रूहुल-क़ुद्स की क़ुदरत की मिसाल दुनिया भर के मज़ाहिब में नहीं मिलती, और अगर हम इस क़ुदरत का अपनी शख़्सी ज़िंदगी में इस्तेमाल न करें तो हम से ज़्यादा बदनसीब कोई इनसान नहीं हो सकता।

काँगड़ा में जलसे करने के बाद एहसानुल्लाह मल्लू चंद के साथ पालमपुर, बैजनाथ और धरमशाला गए। वहाँ की जमातों में जलसे हुए जिन का नतीजा यह हुआ कि इन जमातों में यह एहसास पैदा हो गया कि वह इस कोहिस्तानी इलाक़े के कट्टर हिंदू आबादी की रूहों के ज़िम्मेदार हैं। ईमानदारों ने अज़सरे-नौ ख़ुदावंद मसीह की इंजील के मुताबिक़ ज़िंदगी गुज़ारने का तहिया कर लिया।

राजा शाम सिंह के हाँ ताजपुरा में

एहसानुल्लाह ने वापस नारोवाल पहुँच कर एक प्रोग्राम तैयार किया ताकि वह और वायज़साहब पंजाब और यू.पी. का दौरा करें ताकि जमातें हर जगह ख़ाबे-ग़फ़लत से बेदार हो कर ख़ुदावंद मसीह का हक़ीक़ी बदन बन जाएँ। वायज़साहब लिखते हैं,

> एहसानुल्लाह दूर दूर दौरे करते थे। एक दफ़ा उन्हों ने मुझे लिखा कि कलिका आओ। वहाँ से हम ताजपुरा गए। वहाँ का रईस राजा शाम सिंह ईसाई हो गया था, लेकिन बक़ी तमाम ख़ानदान हिंदूमत का पैरोकार था। एक दिन मैं ने राजा साहब से उन के ईसाई होने का हाल पूछा। उन्हों ने अपनी दास्तान सुनाई, "मैं आम हिंदुस्तानी रईसों की सी दुनियादार ज़िंदगी गुज़ारता था और ऐश उड़ाने के लिए इंगलैंड पहुँचा। पर ख़ुदा का करना ऐसा हुआ कि वहाँ मेरा ऐसे लोगों से वास्ता पड़ा जो आला दर्जे की रूहानी तबीअत रखते थे। उन की ज़िंदगी और इंजील की तालीम का मुझ पर ऐसा असर हुआ कि मैं मसीह का पैरोकार हो गया। अब मेरा

छोटा भाई रूमी फ़िरके में है और मेरे बेटे ने इंगलैंड में बपतिस्मा पा लिया है। मेरी यही ख़्वाहिश है कि मेरी रानी भी मसीह के क़दमों में आ जाए।

एहसानुल्लाह भी मेरे साथ ताजबुरा में थे। इतवार के रोज़ इबादत हुई जिस में उन्हों ने जोशीला मगर निहायत मौज़ूँ दर्स दिया जिस से सुनने वाले वज्द में आ गए। इबादत के बाद राजा साहब ने अहलकारों को बुलाया। वह दीवानख़ाने में जमा हो गए। महल के बाहर शहर के हिंदू भी दीनी गुफ़्तगू करने के लिए आए हुए थे। मियाँ साहब ने मुझे कहा कि आप इन अहलकारों को नजात का पैग़ाम सुनाएँ और मैं बाहर जा कर हिंदुओं को ख़ुदावंद के नाम की बिशारत देता हूँ। वह उन्हें इंजील का पैग़ाम सुना रहे थे कि एक आर्या पंडित ने उन की तक़रीर में बार बार ख़लल डालना शुरू कर दिया। शोर और ग़ौग़ा की आवाज़ सुन कर मैं बाहर आया। पंडित बेचारा हक़ीक़त में बेइल्म बल्कि बेहूदा बातें कर रहा था। मैं ने मियाँ साहब को अंदर भेज दिया ताकि वह अहलकारों से बात करें और मैं ने दस-पंद्रह मिनट में पंडित की ज़बान ऐसी बंद कर दी कि लोगों ने उस ग़रीब पर तालियाँ बजानी शुरू कर दीं। पंडित अपना सा मुँह ले कर भाग गया।

राजा शाम सिंह के महल से हम दोनों रियासत के गाँव में गए। यहाँ मैथोडिस्ट मिशन का काम बहुत फैला हुआ है। मियाँ साहब एक तरफ़ को चले गए और मैं दूसरी तरफ़ निकल गया। मैं एक गाँव में गया जहाँ एक पुराने उम्र-रसीदा बल्कि यों कहो कि बोसीदा ख़ादिमुद-दीन सुकूनत करते थे। रात को मैं उन के हाँ ठहरा। खाने के बाद मैं ने उन से उन के मसीही तजरिबे और रूहानी ज़िंदगी की बातें करने को कहा। जवाब मिला, “अरे मियाँ, कैसा तजरिबा और कैसी नजात। तुम से पहले एहसानुल्लाह नजात लिए फिरता था, अब तुम आए हो और नजात नजात करते फिरते हो। हम क्या जानें कि नजात मिली है या नहीं। जब मरेंगे तो देखा जाएगा।” यह आदमी हज़ारों ऐसे ईसाइयों के ख़ादिम थे जो पहले चमार और भंगी थे।

एक दिन गुफ़्तगू के दौरान राजा साहब ने बयान किया, “यहाँ से चार कोस के फ़ासिले पर एक ईसाई कुठिया [1] में रहता है जो पहले भंगी हुआ करता था। लेकिन उस की मसीही ज़िंदगी ऐसी है कि मैं उस के पाँओ धोने के लायक़ भी नहीं।” चुनाँचे एहसानुल्लाह और मैं वहाँ गए। क्या देखते हैं कि गाँव के बाहर एक छोटी सी कुठिया में एक फ़क़ीर बैठा है जिस के इर्दगिर्द बहुत से हिंदू और मुसलमान मर्द और औरतें जमा हैं जो उस से दुआए-सेहत के तालिब हैं। क्योंकि उस की दुआ से बीमार शिफ़ा पाते हैं। अक्सर माएँ अपने बच्चों को उस के क़दमों में डाल कर उस से दुआए-बरकत माँगती हैं। इस नज़्ज़ारे को देख कर हम ने ख़ुदा का शुक्र किया।

राजा साहब की ख़ाकसारी का यह आलम था कि एक मौक़े पर उन्हों ने एहसानुल्लाह के वलवला-अंगेज़ वाज़ के बाद तमाम ईसाई भाइयों के जो इबादत में हाज़िर थे पाँओ धोए। यही हाल मैं ने डाक्टर बरख़ुर्दार ख़ाँ का देखा है। चम्बा के हस्पताल में वज़ीर आए या अमीर, किसी की उठ कर ताज़ीम नहीं करते थे। लेकिन जब कोई ग़रीब बीमार या कोढ़ी आता तो पैरन खेड़ हो कर उस के हाल की तरफ़ मुतवज्जिह हो कर उसे इज़्ज़त से बिठलाते। वह कहते थे कि मेरा ख़ावंद अमीरों के भेस में नहीं आता बल्कि ग़रीबों की सूरत में आता है। क्या मालूम कि वह किस मौक़े पर आ जाए और मैं उस की ख़िदमत से महरूम रहूँ।

एहसानुल्लाह ताजपुरा से देहरादून, रुड़की और सहारनपुर आए। हर मक़ाम में उन का बेड़तपाक से ख़ैर-मुक़द्दम किया गया। ईसाई उन के क़दमों में इस अक़ीदत से बैठते थे गोया पौलुस रसूल उन के दरमियान आ गए हैं। देहरादून की एक ख़ातून ने मुझे बताया, “जब कभी वह देहरादून आते तो वह हमारे घर मेहमान होते और मैं एक पीढ़ी ले कर उन के क़दमों में बैठ जाती और उन की बातें सुनती रहती। वह हर बात को ऐसे दिलकश तरीक़े से पेश करते कि मेरा यही जी करता था कि

[1] अनाज की कोठड़ी। गोदाम

बस वह बोलते रहें और मैं सुनती रहूँ। वह मुझे बहुत प्यार करते थे। मेरी उम्र उस वक़्त नौ या दस साल की थी, लेकिन उन में ऐसी कशिश थी कि मुझ पर उन से एक मिनट के लिए भी जुदा होना बुरा लगता था।"

हर जगह मियाँ साहब के जलसे बेड़एहतिमाम से किए जाते थे और निहायत कामयाब साबित होते थे। यह जलसे कई कई दिन होते रहते और उन जगहों की जमातों के लिए बरकत का बाइस हुए। ईमानदारों ने उन की हंगामा-ख़ेज़तक़रीरों से मुतअस्सिर हो कर एक दूसरे से कीना रखने के लिए मफ़िमाँगी बल्कि मियाँ साहब ने बहुतों के घरों में ख़ुद जा कर सुलह-सफ़ाई करवा दी। जमातें अज़सरे-नौ जोश में आ गईं। उन्हों ने ख़ुदा के हुज़ूर वादा किया कि आइंदा हम मसीह की हो कर रहेंगी और उस पर दिलो-जान क़ुर्बान करके हिंदुओं और मुसलमानों को नजात का पैग़ाम सुनाएँगी। ग़लत-फ़हमियों के दूर होने से उन जमातों में दिली मुहब्बत वापस आई और ख़ुदा का हर जगह जलाल ज़ाहिर हुआ।

एहसानुल्लाह के वाज़ और नसाइह गाँव और शहरों की जमातों, दोनों को हर जगह मस्हूर कर लेते थे। अक़्लियत और रूहानियत के ज़ौक़ ने एक ही दिल में बहुत कम आशयाना बनाया है। क़ुदरत ने उन्हें न सिर्फ़ औसत-मामूली ज़हानत बख़्शी थी बल्कि उन्हें रूहानियत की नेमते-लाज़वाल भी अता की थी। चुनाँचे शहरों की जमातें जो अपने ख़ादिमाने-दीन के यकसाँ और बेकैफ़ख़ुश्क वाज़ोंसे थक गई थीं निहायत ज़ौक़े-शौक़से एहसानुल्लाह की जिद्दते-फ़िक्र और रूह की नक़्श-आराइयों की तरफ़ध्यान लगाती थीं। क्योंकि उन का मुज्तहिदाना अंदाज़निराला था। उन बेचारे ख़ादिमाने-दीन का जोश भी जमातों की बेकैफ़और ख़ुश्क मशग़ूलियतों के बारे-मुसलसल से थक गया था और ऐसा ठंडा पड़गया था कि उन की रूहानी क़ुव्वत ढीली हो चुकी थी। चुनाँचे वह भी उस अज़ीम शख़्सियत की जादू-निगार तक़रीरों और वाज़ोंको सुन कर ख़ुद मुतअस्सिर होते थे। वह उन के लिए ख़ुदा का शुक्र करते थे और दुआ माँगते थे कि जो रोयाएँ उन की जमातें देखती हैं वह देरपा हों

और उन की ज़िंदगियों का मुस्तक़िल हिस्सा बन जाएँ ताकि वह रोज़मर्रा के भागने, चलने, उठने, बैठने, लेटने और मरने के चक्कर के पेशे-नज़र महफ़ूज़ रह कर ख़ुदा के जलाल का वसीला हों।

ऐसे जलसे इस क़दर कामयाब होते थे कि सुनने वाले बेइख़्तियार ख़ुद-फ़रामोश हो कर महशर बरपा कर देते थे और बेख़ुदी में आ कर आपे से बाहर हो कर ख़ुदा के हुज़ूर अपने गुनाहों का इकरार करके उस से माफ़ी माँगते थे। अगरचे मियाँ साहब हमेशा जज़्बात के मुज़ाहरों के ख़िलाफ़ थे, क्योंकि वह जानते थे कि ऐसी बातें वक़्ती और ना-पाएदार होती हैं, कि वह उन काँटों की तरह हैं जो जलते वक़्त बहुत शोर मचाते हैं पर जब वह जल उठते हैं तो सिर्फ़ राख का ढेर हो कर रह जाते हैं। इस के मुक़ाबले में रूहुल-क़ुद्स के फल मसीहियों की ज़िंदगियों में मुस्तक़िल तौर पर हमेशा नज़र आते हैं। चुनाँचे वह नहीं चाहते थे कि उन की तक़रीरों का असर जज़्बाती नारों में मुंतक़िल हो। लेकिन उन के वलवला-अंगेज़ अलफ़ाज़ सामिईन को महवो-मदहोश कर देते थे।

क़िबला वायज़ लिखते हैं,

> मैं ने ख़ुद बार बार देखा है कि जहाँ एहसानुल्लाह ने कलाम बोना शुरू किया और बोलने को खड़े हुए वहाँ गिरियाो-ज़ारी शुरू हो जाती थी। मैं ने उन के वाज़ों में मिशनरियों को रोते देखा है और ऐन जलसे में खड़े हो कर अपने गुनाहों का इकरार करते सुना है। लोग बिलकुल हवास खो कर मब्हूत हो जाते थे।

यही वजह है कि मुझे बार बार इस का ज़िक्र करना पड़ता है। आजकल इस क़िस्म के वायज़ शाज़ ही मिलते हैं, अगरचे ग़ुल-ग़पाड़ा मचाने वाले बहुतेरे होते हैं। इस की वजह यह है कि सिर्फ़ वही एहसानुल्लाह के से वाज़ कर सकता है जिस के सीने में उन का सा दिल हो और दिल भी मसीह की मुहब्बत से सरशार हो। एहसानुल्लाह की फ़साहत उन की रूहानी क़ुव्वत की फ़साहत थी। उन के वाज़ महज़ अलफ़ाज़ और फ़िक़रात की ख़ूबियों से पुर नहीं होते थे बल्कि जब वह वाज़ करते थे

तो गुनाहगारों को मसीह का चेहरा और उस की लाज़वाल मुहब्बत की ख़ूबी आँखों के सामने नज़र आ जाती थी। वह हमेशा यही तस्वीर पेश करके गुनाहगारों को सलीब की तरफ़ आने की दावत देते थे।

उन का दिल हस्सास था, और इस हस्सास दिल से शोर निकलता था जिस को वह दिलेरी के साथ निडर हो कर कह देते थे। क्योंकि वह कहे बग़ैर रह नहीं सकते थे। ऐसा मालूम होता था कि ख़ुदावंद ने उन्हें कहा था,

> गला फाड़कर आवाज़ दे, रुक रुक कर बात न कर! नरसिंगे की सी बुलंद आवाज़ के साथ मेरी क़ौम को उस की सरकशी सुना, याक़ूब के घराने को उस के गुनाहों की फ़हरिस्त बयान कर। (यसायाह 58:1)

इन बातों को ब-रह्ना करने के लिए बेख़ौफ़ी और दिलेरी की ज़रूरत थी। वह इल्मे-रियाज़ी की बुनियादी बातों की तरह 2+2=4 की मानिंद नहीं होतीं जिन के एलान के लिए कोई जुरअत दरकार नहीं होती। मियाँ साहब ख़ुदा की आवाज़ को सुन कर निडर हो कर कहते थे,

> सिय्यून की ख़ातिर मैं ख़ामोश नहीं रहूँगा, यरूशलम की ख़ातिर तब तक आराम नहीं करूँगा जब तक उस की रास्ती तुलूए-सुब्ह की तरह न चमके और उस की नजात मशअल की तरह न भड़के। (यसायाह 62:1)

बक़िया ख़ादिमाने-दीन भी यह सब कुछ देखते थे लेकिन ख़ामोश रहते थे।

चेतराम का असर

एहसानुल्लाह को फ़क़ीरी के अय्याम में अक्सर साधुओं, फ़क़ीरों, दरवेशों और गोशानशीनों से मिलने का इत्तफ़ाक़ हुआ, और उन्हों ने उन से अपनी

फ़क़ीराना ज़िंदगी के लिए बहुतेरे सबक़ सीखे। वह चेतरामी फ़क़ीरों की ज़िंदगी से बहुत मुतअस्सिर हुए जिन का अस्थान मौज़ा भुच्चू के तहसील शरक़पुर में था। वहाँ गुज़श्ता सदी में एक तारिक-ऊद-दुनिया मुसलमान महबूबतरीन शाह था जिस ने इंजील की तालीम से मुतअस्सिर हो कर गोशा-नशीनी इख़्तियार कर ली थी। इस के बाद उस का चेला चेतराम गद्दी पर बैठा। वह अनपढ़ लेकिन ख़ुदा रसीदा शख़्स था और उमूमन अपने “मलंगों” के साथ दौरा किया करता था। हिंदू, मुसलमान, सिक्ख, चूहड़े चमार, शरीफ़ और कमीने, सब ही उस के मुरीद थे। मगर उस के ख़ास चेलों की तादाद चालीस थी जिन को उस ने “मलंग” का नाम दिया था। वह सलीबें हमेशा हाथ में रखते थे।

उस की मुनादी का तरीक़ भी निराला था। एक दफ़ा वह अपने मलंगों समेत लाहौर के एक बाज़ार में से गुज़रा और एक चौक में खड़ा हो गया। सलीबें सब के हाथों में थीं। उस ने एक चेले को हुक्म दिया कि हीर वारिस शाह सुनाओ। सैंकड़ों का मज्मा हो गया। फिर उस ने हुक्म दिया कि अब क़ुरआन सुनाओ। सामिईन की तादाद चालीस-पचास रह गई। फिर हुक्म हुआ कि अब इंजील पढ़ो। सिर्फ़ पाँच-सात आदमी खड़े रह गए। तब चेतराम ने उन से मुख़ातिब हो कर कहा, “भाइयो, दुनिया को दुनियादार किस क़दर प्यार करते हैं। लोग हीर के पीछे दीवाना-वार आते हैं मगर क़ुरआन के पीछे जिस में दुनिया और दीन दोनों हैं थोड़े लोग जाते हैं। लेकिन इंजील के पीछे गिनती के चंद आदमी जाते हैं। क्योंकि उस में ख़ालिस रूहानियत का पैग़ाम और मुक्ति का संदेसा है।”

चेतराम ख़ुदावंद मसीह का चेला था, अगरचे वह सब मज़ाहिब की क़दर करता था। वह मसीहियों से और खासकर ख़ादिमाने-दीन से मुलाक़ात रखता था। वह कहता था कि बपतिस्मा पानी का नहीं बल्कि रूह का होना चाहिए, क्योंकि रूहुल-क़ुद्स आग है और जो यह बपतिस्मा पाता है वह फ़िराक़-प्यार यानी मसीह की आग में जलता है। उसे विसाल

की ज़रूरत है जो अशाए-रब्बानी है जिस को हक़ीक़ी तौर पर पा कर रूह को आरामे-जान हासिल होता है।

एहसानुल्लाह ख़ुसूसन ऐसी बातों से मुतअस्सिर होते थे। मैं ने भी 1908 में उन मलंगों को देखा है। एक दफ़ा मैं इतवार के रोज़ लाहौर में था कि मलंग इबादत के बाद सलीबों को हाथ में लिए इकतारा बजाते वहाँ आ गए। उन्हों ने ख़ुदावंद मसीह की पैदाइश, मोजिज़ात, तालीम, सलीबी मौत और फ़तहयाब क़ियामत को अपने साज़ पर गा कर सुनाया जिस से बाज़ हाज़िरीन वज्द में आ गए।

पेशावर

अक्तूबर 1897 में एहसानुल्लाह ने नादिया के ख़ादिम डब्लयू चार्ल्टन के साथ पेशावर और आगरा में जलसे किए। पेशावर में इमाम शाह साहब जैसे हलीम और शरीफ़ शख़्स जमात के ख़ादिम थे। उन्हों ने दोनों का ख़ैर-मुक़द्दम किया और बड़े एहतिमाम से जलसों का इंतज़ाम किया। एहसानुल्लाह की तक़रीरों ने हसबे-मामूल सुनने वालों के दिलों को जोश से भर दिया, क्योंकि उन की इन्फ़िरादी ज़िंदगी का असर उन की अपनी ज़ात तक ही महदूद नहीं था। उन का रूहानी जोश दूसरों तक भी हर जगह पहुँच जाता था। पेशावर के ईसाइयों की ज़िंदगी की काया पलट गई, और उन में रूहानी ज़िंदगी ऐसी लौट कर आई कि जमात तबलीग़े-इंजील की ख़िदमत निहायत जाँ-फ़िशानी से करने लगी। सब ने अपनी ज़िंदगियों की तक़दीस की।

उन के वाज़ों का असर ऐसा देरपा रहा कि जब मैं 17 साल के बाद 1914 में वहाँ के मिशन कॉलेज में फ़लसफ़े का प्रोफ़ेसर मामूर हुआ और पेशावर की जमात को मालूम हुआ कि मैं मियाँ साहब का भतीजा हूँ तो उन्हों ने निहायत तपाक से मेरी आओ-भगत की और हर घर के दरवाज़े मुझ पर खुल गए। उन दिनों में वहाँ क़िस्सा-ख़्वानी बाज़ार में

लूक़ख़ान आर्मीनी रहते थे। वह मुझे जब देखते कहते, “एहसानुल्लाह ख़ान के वाज़ों ने हम सभों पर बड़ा असर किया था। हम उन्हें भूल नहीं सकते।”

आगरा

पेशावर से मियाँ साहब आगरा गए। वहाँ के लोगों ने उन का नाम सुना हुआ था और उन की आमद के मुंतज़िर थे। वहाँ भी जलसे ऐसे कामयाब हुए कि शहर के कोने कोने से लोग आ गए। इफ़्तिताही जलसे में एहसानुल्लाह ने एक मुख़्तसिर तक़रीर के बाद कहा, “कोई भाई दुआ करे।”

एक शख़्स ने दुआ शुरू की, “ऐ ख़ुदा, तू ने आदम को बनाया और उसे हव्वा दे कर बाग़े-अदन में रखा। फिर तू ने बकाए-नसल के लिए उसे सेत दिया और तू ने हनूक पैदा किया जो तेरे साथ साथ चलता था और फिर मतूसलह को लमक और लमक को नूह दिया जिस के ज़माने में तूफ़ान आया ...”

मियाँ साहब से रहा न गया। वह उठ खड़े हुए और फ़रमाया कि जब तक यह भाई मूसा तक पहुँचे जमात फ़लाँ गीत गाए!”

इस क़िस्म के वाक़िआत न सिर्फ़ ज़ाहिर करते हैं कि मियाँ साहब ज़ाहिर-परस्ती के दुश्मन थे बल्कि वह उन की ज़बान की शोख़ी और तबीअत की शगुफ़्तगी को भी मंज़रे-आम पर रख देते हैं। आम तौर पर यही ख़याल किया जाता है कि आदमी का जितना ज़्यादा बुझा दिल और सूखा चेहरा होगा उतना ही ज़्यादा वह मज़हबी होगा। गोया तक़द्दुस और मातमी ज़िंदगी लाज़िमो-मलज़ूम हैं। दीनदारी और आज़ुर्दा तबीअत मुतरादिफ़-अलफ़ाज़ गर्दाने जाते हैं, क्योंकि हर जगह ज़ुहदे-ख़ुश्क और तबअे-सर्द की गर्म-बाज़ारी नज़र आती है। लोग भूल जाते हैं कि ज़ुहद-

मिज़ाजी और हक़आगाही के साथ हँसता हुआ चेहरा क़ुदरत के मन्शा के ऐन मुताबिक़ है। यों इंजील जलील में लिखा है,

> रूहुल-क़ुद्स का फल यह है। वह मुहब्बत, ख़ुशी, सुलह-सलामती, सब्र, मेहरबानी, नेकी, वफ़ादारी, नर्मी और ज़ब्ते-नफ़्स पैदा करता है। (गलतियों 5:22-23)

हाँ, लूक़ा की इंजील और आमाल की किताब का शायद कोई सफ़्हा हो जिस में लफ़्ज़ "ख़ुशी" मौजूद न हो। जमात में पहली सदियों की तरह रूहानी ख़ुशी उमूमन ज़ुहद और तक़्वा के साथ नहीं पाई जाती।

> गोया न वह ज़मीं है, न वह आसमान है अब!

ख़ैर, इफ़्तिताही जलसे के बाद किसी ने इस क़िस्म की दुआ करने की जुरअत न की।

> जिस के इज़्हार की हिम्मत भी नहीं होंटों पर वह दुआ क्या कभी मम्नूने-असर होगी?

इस क़िस्म की दुआएँ और तक़रीरें बाँसुरी की तरह अंदर से ख़ाली लेकिन आवाज़ों से भरी होती हैं।

इस के बाद जो जलसे हुए उन में दुआएँ निहायत दिल-सोज़ी से की गईं। मियाँ साहब के वाज़ों में दिलों की बातिनी हालत को और हक़ हक़ को इस तल्ख़नवाई के साथ बयान किया गया और ऐसी साफ़गोई से काम लिया गया कि उन के अलफ़ाज़ तीरो-नश्तर का काम कर गए और दिलों के आर-पार हो गए। जामिद दिल पिघल गए और लोग अपने गुनाहों का इकरार करके ख़ुदा से मग़फ़िरत के तलबगार हुए। देरीना दुश्मनियों की जगह जमात के शुरका के दिल मुहब्बत और शुक्र-गुज़ारी से मामूर हो गए। हर मसीही ख़ुदा का शुक्र करता था जिस ने एहसानुल्लाह को उन के दरमियान भेज कर उन्हें दुबारा अपनी ज़िम्मेदारी का एहसास दिलाया। सब ने सच्चे दिल से वादा किया कि

हम पुरानी ज़िंदगी को भूल कर नई आसमानी ज़िंदगी इख़्तियार करेंगे, हम जमात की ख़िदमत करके इंजील की ख़ुश-ख़बरी फैलाएँगे।

इलाहाबाद

आगरा के बाद एहसानुल्लाह इलाहाबाद गए। वहाँ जलसों का इंतज़ाम बड़े पैमाने पर किया गया था और उन की आमद से पहले दुआइया जलसे जा-ब-जा किए गए। खासकर मेवराबाद के लोग दिलो-जान से दुआ करते थे कि ख़ुदा मियाँ साहब के वसीले उन्हें रूहानी बरकतों से मालामाल कर दे। इस का नतीजा यह हुआ कि जब वह इलाहाबाद पहुँचे तो कलाम के बोने के लिए ज़मीन तैयार थी। मियाँ साहब आठ दिन वहाँ रहे। हर जलसे में पहले से ज़्यादा लोग हाज़िर होते थे। जलसागाह ऐसा खचाखच भर जाता था कि तिल रखने की जगह बाक़ी न रहती थी। इस का क़ुदरती नतीजा यह हुआ कि मियाँ साहब के रूहानी वाज़ों ने हाज़िरीन के दिलों को मदहोश कर दिया।

उन पर बेख़ुदी का आलम तारी हो गया। मियाँ साहब के लफ़्ज़ चलती हुई शम्शीरें और आतिशी तीर थे जो हस्सास तबीअतों को घायल करते चले गए। लोगों ने बेख़ुदी में आ कर बेसाख़्ता अलानिया ख़ुदा के हुज़ूर और जमात के रू-ब-रू अपने गुनाहों का इकरार किया और ख़ुलूस-दिली से ख़ुदा से और एक दूसरे से माफ़ी माँगी। दोनों मक़ामों की जमातों के दिल रूहानी ख़ुशी और जोश से भर गए। लोग ख़लवत में आ कर मियाँ साहब से रूहानी मश्वरा हासिल करते थे और उन की सोह्बत में अपनी रूहों के लिए बरकात पाते थे। उन के मुरीदों का हलक़ा रोज़-ब-रोज़ वसी होता गया। मियाँ साहब हर एक की दास्तान सुनते और उस की हाजत के मुताबिक़ मुनासिब अलफ़ाज़ में नसीहत फ़रमाते रहे। जलसों के इख़्तिताम पर उन्हों ने निहायत दिल-सोज़ी से सब हाज़िरीन के लिए दुआ की, ऐसा कि सब की आँखों में आँसू आ गए। उन की

रुख़सत के वक़्त लोगों का इज़्दहाम स्टेशन पर जमा था, और उन्हों ने बा-दिले-नख़्वास्ता उन्हें रुख़सत करके ख़ुदा के सपुर्द किया।

पसरूर

नवंबर 1897 में पसरूर की जमात ने फिर एक बार एहसानुल्लाह को आने की दावत दी। उन के साथ गंडा मल और मल्लू चंद को भी पसरूर बुलाया गया। पसरूर के मिशनरी ने अपने तमाम इलोक़के ख़ादिमाने-दीन, मुबल्लिग़ीन और उस्तादों को देहात के दीगर मसीहियों समेत पसरूर बुलाया ताकि वह मियाँ साहब की तक़रीरों और वाज़ों से रूहानी बरकतें पाएँ। जलसा बेड़एहतिमाम से बेड़पैमाने पर किया गया। गंडा मल लिखते हैं,

> एहसानुल्लाह ने सब जलसों का प्रोग्राम ख़ुद तैयार किया। पहले जलसे में उन्हों ने इफ़्तिताही वाज़किया और साफ़गोई से काम ले कर पुर-ज़ोर और रूह-परवर अलफ़ाज़में ऐसी जोशीली तक़रीर की कि उसी जलसे में ऐसे नतायज़बरामद हुए जो उमूमन बेदारी के तीन चार जलसों के बाद ज़ाहिर होते हैं। क्योंकि पहले ही जलसे में हाज़िरीन के दिल टूट गए। जलसे के बाद लोग बाहर खेतों और वीरानों में निकल गए और ख़ुदा के कलाम के मुतालए और पोशीदा दुआ में मसरूफ़हो गए। हर एक ने कलामुल्लाह के साफ़और शफ़्फ़ाफ़आईने में अपनी भयानक सूरत को देखा।
>
> जब दूसरा जलसा शुरू हुआ और मियाँ साहब वाज़करने लगे तो हाज़िरीन पर अजीब असर हुआ। क्योंकि दिलों के परखने से उन के पहले ही दिल नर्म हो गए थे और उन के लिए ज़मीन तैयार थी। उन्हों ने इनसान की गुनाह-गारी और ख़ुदा की क़ुदूसियत पर ऐसा दर्स दिया कि लोगों को यह मालूम हो रहा था कि ख़ुदा उन के वसीले हर एक पर उस के दिली राज़ज़ाहिर कर रहा है ताकि वह अपनी घिनौनी हालत को देख

कर क़ायल हो जाए। तक़रीर के बाद चंद लम्हों के लिए ख़ामोशी तारी हो गई।

फिर एक बूढ़े एल्डर ने निहायत करब और रंज की हालत में दर्द-भरी आहों के साथ अपने हाले-ज़ार के लिए दुआ की और जमात की औरतें और मर्द, जवान और बूढ़े सब के सब अपने अपने वास्ते दुआ माँगने और गिरिया के ग़लबे से बेइख़्तियारी की हालत में ज़ार ज़ार रोने लगे। जब नालो-बका की आवाज़ें ज़रा धीमी हुई तो एक शख़्स काँपता हुआ उठा और कहने लगा, "भाइयो, आज मुझे मेरा गुनाह बुरी तरह सताता है गो वह मुद्दत से मेरे दिल में काँटे की तरह चुभ रहा है। अगरचे उस के इकरार करने में मुझे अपनी जान का ख़तरा है लेकिन मैं मज्बूर हूँ, बाज़ नहीं रह सकता। कुछ अर्सा हुआ मेरे गाँव के दो जाटों के माबैन सख़्त दुश्मनी हो गई। एक ने मुझे बुला कर कहा कि अगर तुम मेरे दुश्मन को मार डालो तो मैं तुम को एक सौ रुपए इनाम दूँगा। लालच ने मुझे अंधा कर दिया। मैं पहले ही लड़ाकू और झगड़ालू था जिस वजह से लोग डर के मारे मुझ से दूर रहते थे। मैं ने रुपया वसूल कर लिया, लेकिन उस के दुश्मन को क़त्ल करने का मुझे मौक़ा न मिला। हाय मेरा यह गुनाह यहूदाह इस्करियोती के गुनाह से कम नहीं है। मैं किस तरह मुंसिफ़ ख़ुदा को क़ियामत के दिन अपना मुँह दिखा सकूँगा। मैं अब जाट का रुपया वापस कर दूँगा और अपनी ज़िंदगी को जो हदे-दर्जा घिनौनी है सलीब के क़दमों में रख दूँगा ताकि मसीह के ख़ून से साफ़ हो जाए। अगर मेरी मकरूह हरकतों के वास्ते सरकार मुझे सज़ा भी दे तो मैं इस को ख़ुशी से क़बूल करूँगा। क्योंकि इनसानी अदालत में सज़ा पाना अदालते-इलाही में रू-सियाह हो कर जाने से हज़ार दर्जा बेहतर है। मेरे वास्ते दुआ करें कि मैं अपने इकरार पर और अपनी ज़िंदगी को तबदील करने की नीयत पर क़ायम रहने की तौफ़ीक़ पाऊँ।"

इस पर जमात के दिल भर गए और सब अपने अपने गुनाहों, बदकारियों और बदियों के लिए और अपनी तबीअतों के बदलने के लिए ख़ुदा से

सच्चे दिल से दुआ करने लगे। फिर बुज़ुर्ग मियाँ साहब उठे और बड़ी मुहब्बत और मुलायमत से कहने लगे, “मेरे अज़ीज़ भाइयो और बहनो। यह निहायत वाजिब और मुनासिब है कि हम अपने गुनाहों का ख़ुदा के हुज़ूर इकरार करें और उस से मग़फ़िरत माँगें। लेकिन जब तक इकरार के साथ सच्ची तौबा न हो, उन का इकरार करना और नाला-ज़ारी करना, सब लाहासिल और बेफ़ायदा है। अब सच्चे दिल से

> तौबा करें और अल्लाह की तरफ़ रुजू लाएँ ताकि आप के गुनाहों को मिटाया जाए। फिर आप को रब के हुज़ूर से ताज़गी के दिन मुयस्सर आएँगे। (आमाल 3:19-20)

यह आयत पढ़कर उन्हों ने निहायत मौज़ूँ अलफ़ाज़ में हक़ीक़ी तौबा पर एक मुख़्तसिर और पुर-मतलब नसीहत की जिस का ऐसा असर हुआ कि जमात ने ख़ुदा से सच्ची तौबा की तौफ़ीक़ के लिए दिलो-जान से दुआ की। हर एक ने जो वहाँ हाज़िर था ख़ुदा से अह्द किया कि वह उस के हुज़ूर नई ज़िंदगी बसर करेगा, अपनी ज़िंदगी को ख़ुदा की रूहों की नजात के लिए गुज़ारेगा। हर एक ने दूसरे के साथ वादा और अह्द किया कि वह अपने हमसाय के साथ अपने बराबर मुहब्बत रखेगा और ख़ुदावंद मसीह के सुनहरे उसूलों के मुताबिक़ अपनी ज़िंदगी को ढालेगा। इस के बाद ख़ुशी और फ़हमंदी के ज़बूर गाए गए, ख़ुदा की सताइश के नारे बुलंद हुए। दुआएँ और मुनाजातें ख़ुशबू की मानिंद ख़ुदा के हुज़ूर पेश की गईं। हर एक चेहरा ख़ुशी और बश्शाश था, हर दिल रूहानी ख़ुशी से भरा था। लोग गीत गाते, ढोलक बजाते अपने अपने गाँव को रवाना हो गए। गाँव की जमातों में नई ज़िंदगी और मसीही जोश पैदा हो गया और लोग हद से ज़्यादा शौक़ और ज़ौक़ से अपने ख़ादिमाने-दीन से ख़ुदा का कलाम सुनते और इबादत के वक़्त नज़राने और हदिये लाते थे। ख़ादिमाने-दीन का भी हौसला बढ़ा गया, और वह भी दिलो-जान से इंजील शरीफ़ की ख़िदमत करने लगे।

बारह पत्थर स्कूल

क़री को याद होगा कि जब 1896 में सियालकोट शहर में एहसानुल्लाह ने रूहानी जलसे किए थे तो उन का यह नतीजा हुआ था कि वहाँ की सेमिनरी के तुलबा पर उन का बहुत असर हुआ था। लब्भू मल और मल्लू चंद तो उन के चेले बन गए थे। दोनों हर वक़्त कलाम की तिलावत करने और दुआ में मश्ग़ूल रहने लगे थे। उन की दुआ थी कि उन का स्कूल, बारह पत्थर स्कूल ख़ुदा के लिए ऐसा मख़्सूस हो कि वह दुआ का मर्कज़ हो जाए।

उन की दुआओं ने ख़ुदा की बारगाह में क़बूलियत का शरफ़ पाया। ऐंडरसन ज़फ़रवाल से तबदील हो कर बारह पत्थर स्कूल के प्रिंसिपल हो गए। वह एहसानुल्लाह के चेले थे। उन्हों ने यू.पी. मिशन के तमाम इलाक़ें के ख़ादिमाने-दीन, मुबल्लिग़ीन, उस्तादों और मुबश्शिरों को जमा करके मियाँ साहब को बुलाया। मिस कैम्बल जो मियाँ साहब की चेली बन चुकी थी वहीं थी। तमाम मर्दो-ख़वातीन जिन्हों ने उस साल सियालकोट, ज़फ़रवाल, नडाला और शक्करगढ़ के जलसों में उन से रूहानी बरकात पाई थीं, जमा हो कर दुआ में मश्ग़ूल हो गए। बेदारी और रूहानी जोश की लहर ऐसे ज़ोरों पर आई कि गाँव और शहरों की जमातों को बहा कर ले गई। क्योंकि दरिया की सतह पर जब एक लहर ज़ोर-शोर से उठती है तो उस एक लहर से बेशुमार लहरें बनती चली जाती हैं। गंडा मल लिखते हैं,

> बेदारी की यह लहर सियालकोट से शुरू हो कर पंजाब के हर हिस्से में बह निकली। जो लोग रूहानी बेदारी के जलसों में बरकत पा कर वापस जाते थे वह हर कहीं उन अजीब तजरिबों का चर्चा करते थे और अपनी ख़तो-किताबत में भी उन अजीब कामों का ज़िक्र करते थे जो ख़ुदा ने मियाँ साहब के ज़रीए उन में किए। उन के अपने दिल तबदील हो गए थे,

और वह चाहते थे कि उन के अज़ीज़ों और वाक़िफ़कारों के दिल भी ख़ुदा की तरफ़ रुजू करें।

सियालकोट की मशहूर कंवेंशन उसी बड़ी बेदारी के जलसे से शुरू हुई थी जो उन्हों ने 1896 में सियालकोट शहर में किया था। सच तो यह है कि यह मशहूरो-मारूफ़ कंवेंशन बुज़ुर्ग एहसानुल्लाह की मेहनतों-मशक़्क़तों और जाँ-फ़िशानी का ही नतीजा है। इस का असल मम्बा और सरचश्मा उन की अपनी रूहानी ज़िंदगी, उन का ज़बरदस्त जोश और उन के वाज़ हैं जो दिलों को घायल करके लोगों को ख़ुदा के पास लाते थे।

क़ाबिला वायज़ लिखते हैं,

यू.पी. मिशन के लोग एहसानुल्लाह के गिरवीदा हो गए थे। अमरीकन यू.पी. की जमात की लेडीज़ और मिशनरी और दीगर जवान उन के पीछे पीछे फिरते रहते थे। उन के जलसों ने तमाम पंजाब में उमूमन और यू.पी. की जमात में ख़ुसूसन आग लगा दी। उन की मिशनरी लेडीज़ और ख़ुसूसन मिस कैम्बल देसी लिबास में उन के साथ रहती थीं। लायटल[1] और चंद देसी जवान उन के मुरीद मिस मुरीद हो गए। उन के जलसों का नतीजा सियालकोट कंवेंशन है।

यक़ीनन यह सच है कि एहसानुल्लाह के वाज़ों के वक़्त कंवेंशन की हवा आसमानी होती थी, क्योंकि वह रूह की हिदायत से बोलते थे। उन ही के वाज़ों की वजह से मेरा शुरू से कंवेंशन के साथ दिली लगाओ रहा है। एहसानुल्लाह चला गया। वह अब हमारे साथ नहीं, मगर वह अब तक कलाम करता है। जब तक सियालकोट कंवेंशन है एहसानुल्लाह का नाम ज़िंदा रहेगा। [2]

[1] Lytle
[2] मसीही बाबत, नवंबर 1929

यू.पी. मिशन में अपनी मदद आप की तहरीक

हम बता चुके हैं कि एहसानुल्लाह की यह दिली आरज़ू थी कि हिंदुस्तान की जमातें मग़रिब के रुपए से बेनियाज़ हो कर और मग़रिब के फ़िक्र की मज़बूत ज़ंजीरों को तोड़कर आज़ाद ज़िंदगी गुज़ारें, कि वह अपने बोझ ख़ुद बरदाश्त करके तमाम अख़राजात की ज़िम्मेदार हो जाएँ। मगर पंजाब के ख़ादिमाने-दीन को यह एहसास न था। वह अपनी खाल में मस्त थे।

वह बेबालो-पर होने पर ही नाज़ाँ थे, क्योंकि इस हालत में उन्हें कोई खटका न था।

> हवसे-गुल का तसव्वुर में भी खटका न रहा
> अजब आराम दिया बेपरो-बाली ने मुझे

मियाँ साहब अपनी चारों तरफ़ निगाह करते थे। जमातों और ख़ादिमाने-दीन को देखते थे और हैरत से कहते थे,

> बेशक लोग बिगल बजा कर जंग की तैयारियाँ करें, लेकिन क्या फ़ायदा? लड़ने के लिए कोई नहीं निकलेगा। (हिज़्कीएल 7:14)

वह जिस ख़ादिम से बात करते वह बात टाल देता और उन बातों से गुफ़्तगू करने से गुरेज़ करता।

> उड़ने से पेशतर ही मेरा रंग ज़र्द था!

आख़िर उन्हें यह एहसास हुआ कि पहले वह ख़ुद चर्च मिशन की क़ानील तनख़्वाह के बोझ से आज़ाद हों। फिर ही वह ख़ादिमों और जमातों की तवज्जुह उन की अहम ज़िम्मेदारियों की तरफ़ खैंच सकेंगे। चुनाँचे उन्हों ने अल्लाह तवक्कुल अपनी तनख़्वाह छोड़दी। तब ख़ुदा ने पंजाब मिशनरी सोसायटी के ज़रीए उन के कुम्बे को पालने का इंतज़ाम कर

दिया, और उन्हों ने फ़क़ीरी लिबास पहन कर फ़क़ीराना ज़िंदगी बसर करने का इरादा कर लिया। तो भी चर्च मिशन के ख़ादिमों और मुबल्लिग़ीन में से सिवाए रहमत मसीह वायज़ के किसी ने भी उन का साथ न दिया।

शक्करगढ़ के जलसे में एहसानुल्लाह ने जमातों की ज़िम्मेदारियों और ख़ादिमों के ईमान की कमी पर जो दर्स दिए तो सब के दिल छिद गए। नतीजे में पहले-पहल गंडा मल की ख़ुद-इन्कारी और ईसार-नफ़्सी की वजह से नडाला तहसील शक्करगढ़ की जमात अपने पाँओ पर खड़ी हो गई। फिर रावलपिंडी की जमात ने तमाम अख़राजात अपने ज़िम्मे ले लिए। इस के बाद ढोडा तहसील पसरूर और पसरूर की शहरी जमात अपना ख़र्च उठाने पर आमादा हुई। अब अपनी मदद आप की जमातों की तादाद पंजाब के यू.पी. मिशन के इलाक़े में दो सौ के क़रीब हो गई है। 1910 से पंजाब की यू.पी. की जमात ने अपना "होम मिशन" भी क़ायम कर लिया है जिस में मुतअद्दिद कामों और मुबल्लिग़ीन मुख़्तलिफ़ मर्कज़ों में काम करते हैं। इस मिशन का सालाना ख़र्च हज़ारों रुपए होता है।

इन पहले ख़ादिमों को अपनी मदद आप के तहत चलने के बाइस मुख़्तलिफ़ अक़्साम की तक्लीफ़ें और आज़माइशों का दलेराना मुक़ाबला करना पड़ा, लेकिन उन का ईमान पुख़्ता था, और वह हर रुकावट पर ग़ालिब आए। यह सब कुछ एहसानुल्लाह के ज़बरदस्त ईमान और लोहे के से मुसम्मम इरादे का नतीजा था कि उन्हों ने यह नई राह निकाली।

चर्च मिशन का इख़्तिलाफ़

चर्च मिशन की आँखों के सामने पंजाब की जमात की काया पलट रही थी और ख़ुदा एहसानुल्लाह को गाँव, क़स्बों और शहरों की जमातों को बेदार करने के लिए और उन में ज़िंदगी का दम फूँकने के लिए इस्तेमाल कर रहा था। यू.पी. मिशन के मर्दाना और ज़नाना मिशनरी, ख़ादिम

और जमातें उन की अज़ीम शख़्सियत से हर तरफ़ मुतअस्सिर हो रहे थे। सियालकोट कंवेंशन की बुनियाद हो चुकी थी। यू.पी. मिशन की जमातें रूहानी जोश से मामूर हो कर ख़ुद-मुख़्तार हो रही थीं। इस के बावुजूद चर्च मिशन ने उन्हें इस्तेमाल न किया। लेकिन इस से मियाँ साहब के माथे पर बल न पड़ा। उन्हें तो मुख़्तलिफ़ मिशनों की हद-बंदियों से लगाओ ही न था। वह हर फ़िर्क़े और ज़ात के ईसाइयों की ख़िदमत करना इज़्ज़त का बाइस ख़याल करते थे, लेकिन चर्च के बिशप और मिशनरी उन की तहरीकों को पसंदीदगी की नज़र से नहीं देखते थे। वायज़ साहब लिखते हैं,

> एहसानुल्लाह जगह जगह बेदारी के जलसे करते थे, पर जिस तरह वेस्ली साहब की बेदारी को चर्च आफ़इंगलैंड ने रद्द कर दिया उसी तरह एहसानुल्लाह की बेदारी को चर्च आफ़इंगलैंड ने ठुकरा दिया जिस का नतीजा यह हुआ कि यू.पी. मिशन की जमातों में जान पड़ गई। सियालकोट कंवेंशन शुरू हो गई और हर जगह अपनी मदद आप का तरीक़ राइज हो गया। ख़ुदा हर एक को उस के ईमान और नीयत के मुताबिक़ फल देता है। उन सब तहरीकों की कामयाबी का सहरा उन के सर पर है।

आख़िर में हिंदुस्तानी मसीहियों के कहने सुनने से चर्च मिशन ने एहसानुल्लाह को दिसंबर 1897 और जनवरी 1898 में अंग्रेज़ एस.ए. सेलविन[1] का मुतर्जिम बनने को कहा जिस को मियाँ साहब ने बड़ी ख़ुशी से मंज़ूर कर लिया। लेकिन ऐसा मालूम होता है कि मुक़र्रिर से ज़्यादा मुतर्जिम का जमातों पर असर हुआ।[2]

---

[1] Selwyn

[2] यूजीन स्टाक, हिस्ट्री आफ़ सी.एम.एस, जिल्द सिवुम, सफ़हा 759।

रावलपिंडी

सेलविन की तक़रीरों का तर्जुमा ख़त्म हो चुका तो एहसानुल्लाह रावलपिंडी गए। क्योंकि वहाँ की जमात ने भी अपने अख़राजात ख़ुद उठाने का फ़ैसला करके गंडा मल को अपना ख़ादिम मुंतख़िब कर लिया था। गंडा मल लिखते हैं,

> बुज़ुर्ग मियाँ साहब मेरे पास रावलपिंडी आए और फ़रमाने लगे, "भाई गंडा मल। मैं सिर्फ़ इस ख़याल से यहाँ आया हूँ कि इस नए काम में जिस का आप ने ज़िम्मा उठाया है आप की मदद करूँ और आप के हाथों को मज़बूत करूँ।"
>
> मैं ने शुक्रिया अदा किया। फिर पूछने लगे, "आप को इस ज़िम्मेदारी के अदा करने में किन किन तकालीफ़ का सामना करना पड़ा है?"
>
> मैं ने जवाब दिया, "जनाब, हर नए काम के शुरू में मुशकिलात और तकलीफ़ात आया ही करती हैं। पर ख़ुदा के फ़ज़्ल से और आप की दुआओं से वह सुब्ह के बादलों की मानिंद उड़ जाती हैं।"
>
> मेरे जवाब को सुन कर वह निहायत महज़ूज़ हुए और कहा, "शाबाश। हिम्मते-मर्दाँ, मददे-ख़ुदा।" [1] वह मेरे काम को देख कर बहुत ख़ुश हुए। जमात के लोग हर वक़्त उन के क़दमों में बैठ कर कलामे-पाक के निकातो-रुमूज़ से और उन के रूहानी तजरिबात से फ़ैज़ उठाते रहे।

रावलपिंडी की जमात में जलसे हूए। एहसानुल्लाह ख़ास-ो-आम की जाए-पनाह थे, चुनाँचे एस.पी.जी. मिशन और यू.पी. मिशन की जमातों के मसीही और इर्दगिर्द के इलोक़े के मसीही इस कसरत से शरीक हुए कि ग़ैर-मसीही हलक़े में धाक बैठ गई। मियाँ साहब का कलाम रोज़ब-रोज़ रंग पकड़ता गया जिस ने सब के दिलों को मोह लिया। क्योंकि उन के अलफ़ाज़ और दिल के क़िस्से, कहानियाँ नहीं थे। जो

[1] जो हिम्मत करे उस की मदद ख़ुदा करता है।

बात कही ख़ुदा-लगती कही। उन की तक़रीर का हर लफ़्ज़ दिल-गुदाज़ चलता हुआ जादू, दर्दमंद दिलों पर असर करने वाले तीरों का तर्कश था।

जिस जोश से सरशार हो कर मियाँ साहब तक़रीर करते थे वही जज़्बा सुनने वालों पर भी तारी हो जाता था। उन के वाज़ महज़ जोशीले नहीं होते थे, क्योंकि जज़्बाती और जोशीली बातें कुछ देर के बाद अपनी मौत आप मर जाती हैं। लेकिन उन की तक़रीरों से ऐसी तबदीली आई जो निस्फ़ सदी के बाद भी जमात की ज़िंदगी की पेचदार राहों के लिए हिदायत की मशअल है।

मियाँ साहब ने रावलपिंडी की जमात की ख़ातिर दिन रात ख़ूब पसीना एक कर दिया। क्योंकि इस शहर की जमात ने पंजाब में अपनी मदद आप की नई राह इख़्तियार करने में पहल की थी। उन्हों ने गंडा मल की हर तरह से हौसला-अफ़ज़ाई की और कहा,

> अज़्मे-जवाँ से काम ले, तूफ़ान से न डर
> माना कि टूटी नाओ है और बादबाँ नहीं।

मियाँ साहब के हंगामा-अंगेज़ वाज़ और नसाइह उस क़िस्म के हंगामे थे जो इस्लाही अक़्दाम से पहले रूनुमा होते हैं और ऐसे रूहानी और ज़हनी इन्क़िलाबात पैदा कर देते हैं जो तामीरी कामों के पेशरौ होते हैं। उन की तक़रीरों ने ख़ुदावंद मसीह की क़ुर्बत की अबदी शादमानी की इबतिदाई तरंगें पंजाब की जमातों के दिलों में डाल दीं। उन्हों ने रावलपिंडी की जमात की हिम्मत बढ़ाई और फ़रमाया कि आगे बढ़े चलो।

रावलपिंडी से वापस लौटते वक़्त एहसानुल्लाह ने यू.पी. मिशन और स्काच मिशन की शहरी जमातों का दौरा किया। उन्हों ने जहलुम, गुजरात और वज़ीर आबाद की जमातों में जलसे किए। हर जगह की जमात को ताज़गी और रूहानी शादाबी हासिल हुई। हर जलसे में गुनाहों का इकरार

ख़ुदा के हुज़ूर हुआ, और लोगों ने रोना और मातम शुरू कर दिया। उन के आँसुओं से उन के गुनाह धुल गए और उन्हें नई ज़िंदगी हासिल हुई।

जलसों के बाद ख़ामोशी तारी हो जाती थी जिस में हर गुनाहगार आसमान की तरफ़ नज़र करके अपने कान ख़ुदा की आवाज़ पर लगा कर समूएल नबी की तरह कहता था कि

> ऐ रब, फ़रमा। तेरा ख़ादिम सुन रहा है। (1 समूएल 3:10)

वह हर जमात को उभारते थे कि रावलपिंडी की जमात के नमूने पर चल कर मग़रिब के रुपए से बेनियाज़ हो जाओ और अपने पाँओ पर ख़ुद खड़े हो जाओ। उन के नसाइह का लुब्बे-लुबाब यही होता कि मग़रिब के तफ़रिक़े और उन की क़ुयूद पंजाब की जमात की ज़िंदगी की नश्वो-नुमा में रुकावट का बाइस हैं। इस लिए जमातों के लिए लाज़िम है कि इन ज़ंजीरों को तोड़कर आज़ाद हो जाएँ और मुत्तहिदा कोशिशें करके हिंदुस्तान को मसीह के क़दमों में लाएँ। यह लौ उन्हें हर दम बेचैन किए रखती थी, और वह दूर-दराज़ के सफ़र इख़तियार करते थे ताकि जमातों में इस का एहसास ज़िंदा करें।

अहलिया में जुनून के पहले निशान

जब मियाँ साहब अपने घर बटाला में वापस पहुँचे तो बीवी बच्चों को देख कर निहायत ख़ुश हुए। वहाँ उन्हों ने चंद दिन क़ियाम करना था, क्योंकि नारोवाल मिशन स्कूल के हेड-मास्टर चेटर्जी को अपने ख़ानदान समेत ईस्टर की छुट्टियाँ काटने के लिए उन के हाँ मेहमान हो कर आना था।

जब वह वहाँ थे तो उन के बड़े बेटे क़ुरबान ने बताया कि वालिदा चंद दिनों से अजीब हरकतें कर रही हैं जिन से तीनों बच्चों के दिल ख़ाइफ़ और हिरासाँ रहते हैं। उन का माथा ठनका, क्योंकि जब वह यू.पी. के

सूबे में दौरा कर रहे थे तो उन्हों ने उड़ती ख़बर सुनी थी कि उन के ससुर पर दीवानगी ग़ालिब हो गई है और वह जुनून की बीमारी में मुब्तला हैं।

> उड़ती सी एक ख़बर थी ज़बानी तुयूर की।

अब यह ख़ानदानी बीमारी उन की ज़ौजाए-मुहतरमा में आ रही थी। लेकिन उन्हों ने अपने पर जबर करके इज़्तिराब का इज़हार न होने दिया। क्योंकि चेटर्जी ख़ानदान समेत आ गए थे। उन्हों ने ख़ुदा से निहायत दिल-सोज़ी से दुआएँ कीं लेकिन ख़ुदा को यह मंज़ूर न था कि उन्हें घर का आराम कभी मुयस्सर हो। उन्हें बीवी बच्चों से वालहाना मुहब्बत थी, और इस से दिल पर ऐसा सदमा हुआ जो बयान से बाहर है। उन का दिमाग़ इस ख़याल से परेशान रहता था कि शायद वह मुस्तक़बिल में ख़ुदा की इस तरह ख़िदमत न कर सकेंगे जिस तरह वह गुज़श्ता दो साल से करते रहे थे।

मियाँ साहब अपनी रफ़ीक़ाए-हयात में जुनून के आसार देखते और बहुत कुढ़ते, क्योंकि उन की अहलिया की ज़िंदगी पर अब मुस्तक़बिल की परछाएँ पड़नी शुरू हो गई थीं। दीवानगी के आसार बाज़औक़ात ऐसे ज़ाहिर होने लगे कि चेटर्जी ने यही मुनासिब ख़याल किया कि वह वापस नारोवाल चले जाएँ। उन के जाने के बाद मियाँ साहब अपने देरीना दोस्त डाक्टर दीना नाथ प्रेतू दित्ता के पास गए और उन्हें यह दास्तान सुनाई। यह सब अहवाल सुन कर डाक्टर दित्ता को भी सदमा हुआ, क्योंकि उन्हों ने ही कह सुन कर यह शादी करवाई थी। लेकिन उन दिनों में किसी को यह गुमान भी न था, और न बेटी को ही इस बात का इल्म था कि उस के ख़ानदान में जुनून की बीमारी है वर्ना वह ख़ुद शादी न करती। आख़िर उस ने बड़ी मुशकिलों से शादी करने पर रज़ामंदी ज़ाहिर की थी। दोनों दोस्तों ने घुटने टेक कर निहायत आजिज़ी और ज़ारी से

ख़ुदा के हुज़ूर दुआ की कि अगर तेरी मरज़ी हो तो ख़ानदान को इस मूज़ीमर्ज़से नजात दे।

दिल्ली तक का दुबारा दौरा

दुआ के बाद सब ख़ानदान की ज़िंदगियाँ ख़ुदा के हाथों में सौंप कर एहसानुल्लाह रूह की हिदायत पा कर पंजाब की मशरिक़ीजानिब के शहरों में गए ताकि जालंधर, लुधियाना, अम्बाला, करनाल, दिल्ली वग़ैरा की जमातों में दौरा करके उन के ईमान को पुख़्ता करने का वसीला हों। अपनी रिफ़ाक़त-ए-हयात के मर्ज़की ख़बर से जो सुकून हिल गया था वह ख़ुदावंद के ग़ैर-फ़ानी अलफ़ाज़से फिर तवाज़ुन पर आ गया कि

> तुम्हारा दिल न घबराए ...मैं तुम को यतीम छोड़कर नहीं जाऊँगा ...मैं तुम्हारे पास सलामती छोड़जाता हूँ, अपनी ही सलामती तुम को दे देता हूँ। और मैं उसे यों नहीं देता जिस तरह दुनिया देती है। तुम्हारा दिल न घबराए और न डरे। ...मैं बाप को प्यार करता हूँ और वही कुछ करता हूँ जिस का हुक्म वह मुझे देता है। अब उठो, हम यहाँ से चलें। (यूहन्ना 14:1,18,27,31)

यह पेशे-नज़र रख कर वह उठे और जगह-ब-जगह गए। अब उन्हें एक और तरह का तजरिबा हासिल हो गया था जो अमीक़था। इस नए तजरिबे ने उन की रूहानी ज़िंदगी को और भी गहरा कर दिया। नतीजे में वह जहाँ भी गए उन के जोश की तड़प ने हर जगह आग लगा दी। उन्हों ने पहले भी इन जमातों को झंझोड़ा था ताकि वह ख़्वाब-ग़फ़लत से बेदार हों। लेकिन

> हैं ख़्वाब में हनूज़जो जागे हैं ख़्वाब में!

मियाँ साहब ने आगे से भी ज़्यादा जोशो-ख़रोश के अलफ़ाज़ में जमातों और उन के ख़ादिमों को उन की ज़िम्मेदारियों की तरफ़ मुतवज्जिह किया।

उन्हों ने उन्हें फिर याद दिलाया कि रूहानी आज़ादी हर जमात का हक़ है, और ज़िम्मेदारी और हक़ जुड़वाँ भाई हैं। हर हक़ के साथ ज़िम्मेदारी वाबस्ता है। अगर उस्ताद का यह हक़ है कि उसे माहवार आम्दनी मिले तो उस की यह ज़िम्मेदारी है कि वह तुलबा को दिलो-जान से पढ़ाए। अगर वालिदैन का हक़ है कि बच्चे उन की बातों पर कान धरें तो उन पर यह ज़िम्मेदारी आइद होती है कि वह ख़ुदा के हुक्मों के मुताबिक़ उन की तरबियत और परवरिश करें। इन ज़िम्मेदारियों के पूरा करने में हर क़िस्म की मुशकिलात जमात को पेश आएँगी। लेकिन ख़ुदा से तौफ़ीक़ पा कर वह उन पर ग़ालिब आ जाएँगे। मियाँ साहब ने रावलपिंडी की मिसाल दे कर कहा कि ख़ुदा करे कि आप में भी यही लहर चल जाए। उन की बेलाग सफ़ाई की बातें जमात के बाज़ राहनुमाओं को एक आँख न भातीं। क्योंकि उन में मसीही इख़्लास की जगह रयाकारी और दिखावे ने ले रखी थी। उन का सरमायाए-पेशवाई नुमाइश और चुपड़ी बातें करना था। ऐसे अस्हाब को रूहानी जोश किस तरह पसंद आ सकता था।

> दहन[1] का ज़िक्र किया याँ सर ही ग़ायब है गरीबाँ से!

मग़रिब-ज़दा और फैशन-परस्त ईसाई भी उन की जमात की आज़ादी की दास्तानों से उकता जाते थे। जब दीनी बुज़ुर्गों का यह हाल होगा तो उन के पीछे चलने वालों का क्या हाल होगा? एहसानुल्लाह बार बार ताकीदन समझाते कि जमात की ज़िंदगी के बक़ा के लिए निहायत ज़रूरी है कि वह मग़रिब के सोने की ज़ंजीरों और अंग्रेज़ी रुसूमो-रिवाज और बर्तानवी समाजी तर्ज़े मुआशरत से आज़ाद हो, कि वह हिंदुस्तानी बन कर रहें।

---

[1] मुँह

लेकिन लोगों की क़िस्म क़िस्म की रुकावटें जो एहसानुल्लाह के आगे हर शहर में आती थीं, उन के जोश को ठंडा करने की बजाए कोड़ का काम दे कर उन में हद से ज़्यादा जोश पैदा कर देती थीं। यह जोश हर जगह ज़ाज़ो और तूफ़ान बरपा करता चला जाता था।

कोई उन के वाज़ें और तक़रीरों को सुन कर ख़्याल भी न कर सकता था कि उन के दिल पर किस क़दर कारी ज़ख़्म लग चुका है जिस के निशान वह हर वक़्त अपने अंदर लिए फिरते थे। ख़ुदावंद का शिफ़ा का हाथ उस ज़ख़्म को मुंदमिल कर रहा था, और वह इस सदमे को पूरे सब्र और सुकून के साथ ख़ातिर-जमई से बरदाश्त कर रहे थे। उन की बेहाली और परेशानी ख़ुदा के फ़ज़्ल से ख़त्म हो चुकी थी, क्योंकि उन्हें ख़ुदा की मुहब्बत का एहसास रोज़ब-रोज़ ख़ुदा के ज़्यादा क़रीब लाता जा रहा था।

10 यूरोप और अमरीका का दौरा

अमरीका आने की दावत

गुज़रता बाब में हम बयान कर चुके हैं कि 1896 में जो जलसे एहसानुल्लाह ने सियालकोट में किए थे उन का मुस्तक़िल असर एक तो यह हुआ कि सियालकोट कंवेंशन का बुनियादी पत्थर क़ायम किया गया। दूसरा असर यह हुआ कि पंजाब की जमात में अपनी मदद आप की तहरीक शुरू हो गई। बेदारी की यह लहर यू.पी. मिशन के परदेसी मिशनरी मर्दों और औरतों को भी बहा ले गई। उन की ज़िंदगियों की काया पलट गई। खासकर मिस कैम्बल जो उन दिनों हाजीपुरा स्कूल की प्रिंसिपल थीं और बाद में पठानकोट के गर्लज़ स्कूल की प्रिंसिपल हुईं। वह मियाँ साहब की चेली हो गईं और उन के साथ साथ मुख़्तलिफ़ शहरों, क़स्बों और गाँव में दौरा करती रहीं। उन्हों ने अपने घर और ख़ानदान के अफ़राद को उस तबदीली की ख़बर दी जो मियाँ साहब की अज़ीम शख़्सियत ने उन की ज़िंदगी में पैदा कर दी थी। यह पढ़कर उन्हों ने मिस कैम्बल की जमात और उन की सहेलियों को उन का ख़त दिखाया जिस में मिस कैम्बल ने मियाँ साहब की ज़िंदगी के वाक़िआत, उन की गदायाना हालत, उन के रूहानी लेक्चरों की अज़मात और उन की अपनी ज़िंदगी की काया पलट जाने का ज़िक्र करके लिखा,

> उन से मेरी मुलाक़ात मेरी ज़िंदगी का अहमतरीन वाक़िआ है। उन्हों ने ख़ुदावंद मसीह की ख़ातिर सब कुछ छोड़दिया है। सियालकोट में जून 1896 में उन्हों ने जलसे किए। इन जलसों की हंगामाख़ेज़ तफ़सीलों में रूहुल-क़ुद्स की ज़बान थी जिन के अलफ़ाज़ में हैरत-अंगेज़ क़ुदरत थी। सेमिनरी के तुलबा में तो आग लगी, और जलसों से वापस आ कर वह हर वक़्त दुआ और इंजील के सुनाने में मशग़ूल रहने लगे। मियाँ साहब

> ने स्कूलों और इबादतगाहों में भी वाज़ किए जिन से सुनने वालों के दिल ज़ख़्मी हो गए। हर जगह गुनाहों के इकरार होने लगे और गिर्यो-ज़ारी की आवाज़ हर कोने से आती थी।

इस ख़त का नतीजा यह हुआ कि अमरीका के शहर पिट्सबर्ग की जमात एहसानुल्लाह से मिलने की निहायत मुश्ताक़ हो गई। वहाँ के ख़ैरख़्वाहों ने मिस कैम्बल को लिखा कि अगर एहसानुल्लाह यहाँ आएँ तो जमात उन के और उन के तमाम ख़ानदान के कुल अख़राजात ख़ुशी से बरदाश्त करेगी।

जब मिस कैम्बल को यह ख़त मिला तो वह फ़ौरन नारोवाल आई और उस ने कह सुन कर मियाँ साहब को ख़ानदान समेत अमरीका जाने पर रज़ामंद कर लिया। मियाँ साहब ने डाक्टर दित्ता को लिखा तो उन्हों ने भी इत्तफ़ाक़ किया और कहा कि मुम्किन है कि अमरीका के डाक्टर आप की रफ़्तार-ए-हयात का कोई इलाज भी कर सकें। चुनाँचे मियाँ साहब ने अमरीका जाने की तैयारियाँ शुरू कर दीं।

इंगलैंड का दौरा

इत्तफ़ाक़ से अप्रैल 1899 में लंदन की चर्च मिशन की सद-साला बरसी होने वाली थी।

जब यह सोसायटी शुरू हुई थी उन अय्याम में मिशनरियों को ब्रिटिश इंडिया के अंदर दाख़िला होने की ब्रिटिश सरकार की तरफ़ से ममानअत थी, लेकिन इस बात को अब सौ साल हो चुके थे और हिंदुस्तान में चर्च मिशन के 92 सदर-मक़ाम क़ायम हो गए थे। चुनाँचे सोसायटी के राहनुमाओं ने यह मुनासिब समझा कि हमारे मुल्क के नुमाइंदे भी इस सद-साला बरसी में हिस्सा लें।

क्लार्क पंजाब चर्च मिशन के सेक्रेटरी थे। जब उन्हों ने सुना कि मियाँ साहब अमरीका जा रहे हैं तो उन्हों ने यह तज्वीज़ की कि एहसानुल्लाह

रास्ते में इंगलैंड में कुछ देर के लिए रुक कर मार्च से मई तक जा-ब-जा लेक्चर दें ताकि लोग पंजाब की जमातों से वाक़िफ़ हों और कि मियाँ साहब सद-साला बरसी में पंजाब की तरफ़ से नुमाइंदा हों। इस तज्वीज़ को मियाँ साहब ने ख़ुशी से मंज़ूर कर लिया। क़िबला वायज़ लिखते हैं,

> उस वक़्त एहसानुल्लाह अमरीका जा रहे थे तो हमारी मिशन के कारकुनों ने सोचा कि उन्हों ने लंदन से हो कर जाना तो है ही। वह इस बेड़ेजलसे में भी मिशन के नुमाइंदा हो कर चले जाएँ। काम मुफ़्त में बन जाएगा।
>
> जब यह ख़बर लंदन पहुँची तो वहाँ क़ियामते-सुग़रा बरपा हो गई। एहसानुल्लाह की आज़ाद तबीअत की धूम मची हुई थी। जब वह पहले जनरल बूथ के साथ इंगलैंड गए थे तो उन के वहाँ होने से और उन की तक़रीरों से चर्च के लोग नालाँ थे। चुनाँचे उन्हों ने झटपट तार के ज़रीए पूछा कि वह यहाँ आ कर क्या बोलेगा? उसे मिशन के क़ायदों और क़ानून के ख़िलाफ़ बयान बंद करनी होगी।
>
> अब यह टेढ़ी खीर थी। एहसानुल्लाह ने मुझ से पूछा कि भाई वायज़ा मैं क्या जवाब लिख भेजूँ?
>
> मैं ने कहा, "जवाब साफ़ है जो नबी ने अख़ियाब के एलची को दिया था। लिख भेजो कि जो कुछ ख़ुदावंद मुझे फ़रमाएगा मैं वही कहूँगा।"
>
> बस उन्हों ने यही लिख भेजा। इस पर कोई एतराज़ ही नहीं कर सकता था। मिशन वालों को मंज़ूर करना पड़ा।

एहसानुल्लाह बीवी बच्चों समेत इंगलैंड पहुँचे। चर्च मिशन वालों ने मस्लहत इसी में देखी कि उन का ख़ैर-मुक़द्दम बेड़तपाक से किया जाए। उन्हों ने वहाँ तीन माह गुज़ारे और इंगलैंड के बेड़ेबड़ेशहरों में वाज़-नसीहत करते रहे। वह जिस जगह गए वहाँ की जमात में जुम्बिश आ गई।

अप्रैल की सद-साला बरसी में हिंदुस्तान की तरफ़ से चार हिंदुस्तानी ख़ादिमों ने नुमाइंदगी की। एक सीतल साहब और दूसरे एस. निहाल सिंह साहब थे। तीसरे मद्रास के मश्हूर रूहानी ख़ादिम डब्लयू.डी. क्लार्क

साहब और चौथे एहसानुल्लाह थे। हर एक ने ऐल्बर्ट हाल की इबादत में हिस्सा लिया जिस में ख़ुदा की तारीफ़ और शुक्रगुज़ारी की गई। इस के बाद के जलसों में चारों ख़ादिमों को दस दस मिनट तक तक़रीरें करने का मौक़ा दिया गया। जब एहसानुल्लाह की बारी आई तो उन्हों ने फ़रमाया,

> आप सुन चुके हैं कि मैं पहले मुसलमान हुआ करता था, और मुसलमान भी कट्टर क़िस्म का था। मेरे वालिदैन भी निहायत कट्टर और मुतअस्सिब मुसलमान थे। मौरूसी अक़ायद के जुमूद और तक़लीदी ईमान ने मुझे अंधा कर रखा था, और मैं इंजील का सख़्त मुख़ालिफ़ था। उस ख़ुदा की तारीफ़ हो जिस ने अपने बंदों की मसीही ज़िंदगी के ज़रीए मेरी आँखों पर से पट्टियाँ खोल दीं और मुझे धुंदले तौर पर राह का सुराग़ नज़र आने लगा। किताबे-मुक़द्दस और क़ुरान का मुवाज़ना करने पर मेरे दिल में शुकूक पैदा हो गए। उन्हों ने मेरे तक़लीदी अक़ायद की दीवारों में रख़्ने डाल दिए। सर-गश्तगियों के बहुत से मरहले तै करने के बाद मेरी अक़्ल ने मुझ पर ज़ाहिर कर दिया कि मसीही ईमान ही सच्चा मज़हब है, और उस के दलायलो-बुर्हान से मैं क़ायल हो गया। लेकिन मुझे यह शर्म से इक़रार करना पड़ा है कि जब मुझे बपतिस्मा मिला तो अक़्ल ही मेरी अकेली राहनुमा थी। इस वाक़िए के दो साल बाद मुझ पर यह हक़ीक़त खुली कि ख़ुदावंद मसीह गुनाहों से नजात दे कर हक़ीक़ी रूहानी ज़िंदगी भी अता फ़रमाता है।
>
> जब ख़ुदा ने मेरे दिल को छुआ तो मैं ने दिलो-जान से इस का शुक्रिया किया कि मैं अब उस का लेपालक बेटा होने पर फ़ख़्र कर सकता हूँ। ख़ुदा मुझे हल्काए-इस्लाम से निकाल कर अपने बेटे के नूर की हैरत-अंगेज़ रोशनी में ले आया है। उस ख़ुदा की अबदुल-आबाद तारीफ़ हो। मैं उस की मारिफ़त का न सिर्फ़ ज़्यादा इल्म हासिल करना चाहता हूँ बल्कि अपने दिल में उस का रोज़ब-रोज़ ज़्यादा एहसास करना चाहता हूँ। मेरी यही ख़्वाहिश है कि मैं हर एक को उस की नजात की ख़ुश-ख़बरी सुनाऊँ।

मेरे दो भाई और हैं जो ऐसे कट्टर नहीं हैं जैसा कट्टर मैं था। ख़ुदा करे कि वह भी मेरी तरह अपने नजात-दहिंदा के क़दमों में आ जाएँ ...

मैं सुनता हूँ कि बाज़लोग ऐसे भी हैं जो यह ख़याल करते हैं कि मुसलमानों को मसीही होने की ज़रूरत नहीं। मेरा ख़याल है कि वह इस्लाम की अलिफ़बे से भी वाक़िफ़नहीं होंगे। यह सच है कि मुसलमान मसीह को मानते हैं। लेकिन वह उसे सिर्फ़नबी ही जानते हैं पर उसे ख़ुदावंद नहीं मानते और न क़ुरआन की रू से उसे ख़ुदावंद मान सकते हैं। हम पर वाजिब है कि ख़ुदा की मुहब्बत से सरशार हो कर और मसीह की सी मुहब्बत से मज्बूर हो कर मुसलमानों के दरमियान नजात के पैग़ाम की ख़ुश-ख़बरी सुनाएँ और उन्हें मसीह के क़दमों में लाएँ ...

जमात में ऐसे लोगों की भी सख़्त ज़रूरत है जो ख़ुदा की क़ुदरत और इंजील के जोश से मामूर हो कर मुख़्तलिफ़ममालिक के नाम-निहाद मसीहियों को सलीब के पास लाएँ। मैं इकरार करता हूँ कि पंजाब के मसीहियों में अभी हर तरह से ख़ुदावंद मसीह की ख़िदमत करने की रूह नहीं आई। हमारे लिए दुआ करें ताकि हमारी जमातों में जोश पैदा हो और वह ख़ुश-ग़फ़लत से बेदार हो कर मसीह की रूह से मामूर होते जाएँ। उन्हें यह एहसास हो जाए और वह अपनी ज़िंदगियों को मसीह की ज़िंदगी के नमूने पर ढालें ...

मैं यह भी आप पर वाज़ेह कर देना चाहता हूँ कि हमारी जमातें तब ही मज़बूत और तवाना होंगी जब वह मग़रिब के ख़यालात के बंधनों से आज़ाद हो कर हिंदुस्तानी बन कर रहेंगी। मसीह मशरिक़के रहने वाले थे, और अगर मशरिक़ीममालिक के सामने मसीह को उस के मशरिक़ी लिबास में ही पेश किया जाए तो वह उसे ज़्यादा आसानी से क़बूल कर सकेंगे। हिंदुस्तान को इस बात की सख़्त ज़रूरत है कि मसीही ईमान में हिंदू मुस्लिम तहज़ीबों का संगम हो जिस तरह इलाहाबाद में दरयाए-गंगा और दरयाए-यमुना का संगम है। यह लाज़िमी है कि हमारे मुल्क में हिंदुस्तानी जमात क़ायम और ज़िंदा हो जाए। हिंदुस्तान को इंगलैंड

की चर्च आफ़इंगलैंड दरकार नहीं। हाँ, हमें इस बात की ज़रूरत है कि हिंदुस्तान की आज़ाद जमात चर्च आफ़इंगलैंड के साथ रिफ़ाक़त रखे।

मैं आप को ख़ुदा का वास्ता दे कर कहता हूँ कि अपने तफ़रक़े को हमारे मुल्क में न लाओ और मशरिक़ीममालिक में मशरिक़ीमसीह को अपना काम जमाने दो। तब हिंदुस्तान के लोग भी यह जान लेंगे कि मसीही ईमान हमारे अपने देश का मज़हब है और अंग्रेज़ीफ़ितीन का मज़हब नहीं है। वह मशरिक़ीमसीह के मज़हब को मग़रिब का बिदेशी मज़हब तसव्वुर करते हैं, क्योंकि मसीही ईमान का लिबास अंग्रेज़ी है। उस के अक़ायद अंग्रेज़ीख़यालात में रंगे हुए हैं, और उस की जमात की रुसूम सब की सब मग़रिब की हैं। उस के ख़ादिमों के मज़हबी लिबादे तक मग़रिबी हैं। काश कि वह दिन जल्द आए जब मशरिक़ के रहने वाले मसीह का नज़ारा हमारे लोगों को उन के अपने मशरिक़ीलिबास में नसीब होगा। तब वह ख़ुदावंद की नजात का इल्म हासिल करने में कज-फ़हमी से काम नहीं लेंगे ...

मैं आप सब का मम्नून हूँ कि आप ने निहायत सब्र और सुकून से मेरी बातें सुनी हैं। आप की चर्च मिशन के ज़रीए मैं अपने नजात-दहिंदे के क़दमों में आया ...मैं आप का शुक्रिया अदा करता हूँ और आख़िर में यह कहना चाहता हूँ कि हम अपनी शुक्रगुज़ारी सिर्फ़इस तरीक़े से ज़ाहिर कर सकते हैं कि हम अपनी ज़िंदगियों को नजात के पैग़ाम के फैलाव की ख़ातिर वक़्फ़कर दें। तब आप को भी हक़ीक़ीख़ुशी हासिल होगी और ख़ुदा के नाम की इज़्ज़त और उस का जलाल होगा।

अमरीका का दौरा

चर्च मिशन की सद-साला बरसी के बाद एहसानुल्लाह लंदन से अमरीका की जानिब रवाना हो गए। चूँकि वह पंजाब के ख़ादिम थे इस लिए न सिर्फ़पिट्सबर्ग की जमात बल्कि दीगर शहरों की जमातें भी उन से

मिलने की बड़ी ख़्वाहिशमंद थीं। क्योंकि उन्हों ने अख़बारों में उन बेड़ और अज़ीम कामों को पढ़ा था जो ख़ुदा ने उन के ज़रीए पंजाब, शिमाली हिंदुस्तान और इंगलैंड में किए थे।

एहसानुल्लाह ने भी मशहूरो-मारूफ़ वायज़ डी.एल. मूडी की शोहरत सुन रखी थी, और उन्हें यह शौक़ था कि उस के क़दमों में बैठ कर रूहानी बरकात पाएँ ताकि बेहतर तौर पर ख़िदमत कर सकें। वह पहले मिस कैम्बल के घर पिट्सबर्ग शहर में रहे और वहाँ वाज़ो-तक़रीरें करते रहे। वहाँ के लोगों के दिल रूहानी जोश से भर गए और मलिकाए-सबा की तरह कहने लगे,

> जब तक मैं ने ख़ुद आ कर यह सब कुछ अपनी आँखों से न देखा मुझे यक़ीन नहीं आता था। लेकिन हक़ीक़त में मुझे आप की ज़बरदस्त हिक्मत के बारे में आधा भी नहीं बताया गया था। वह उन रिपोर्टों से कहीं ज़्यादा है जो मुझ तक पहुँची थीं। (2 तवारीख़ 9:6)

पिट्सबर्ग से उन्हों ने मुख़्तलिफ़ शहरों की इबादतगाहों में जा कर वाज़ किए। हर जगह उन की वलवला-अंगेज़ और जोशीली तक़रीरों की धूम मच गई। वह मूडी के पास शिकागो में रह कर उस के साथ भी शहर-ब-शहर फिरते, तक़रीरें करते और उस के वाज़ सुनते रहे। उन्हें ख़ुदा ने यह बेशक़ीमत मौक़ा अता किया था, और उन की ख़्वाहिश थी कि वह उस के साथ कुछ मुद्दत रहें ताकि वापस पंजाब जा कर जमात की और इंजील की ख़िदमत बेहतरीन तौर पर कर सकें। वह उस के वाज़ निहायत ग़ौर और शौक़ से सुनते रहे।

यह भी इलाही इंतज़ाम था कि यह दोनों मर्दे-ख़ुदा एक दूसरे के रूहानी तजरिबों से मुस्तफ़ीज़ हों, क्योंकि उन के अमरीका छोड़ने के चंद हफ़्ते बाद मूडी का इंतक़ाल हो गया। जब वह अमरीका से वापस आए तो

मूडी की चार मश्हूर किताबें अपने हमराह पंजाब ले आए जो हमेशा पढ़ा करते थे। [1]

अहलिया पर दीवानगी का ग़लबा

मूडी की मुलाक़ात के बाद वह जब वापस अपने घर गए ताकि बीवी बच्चों को मिल आएँ तो वहाँ जा कर देखा कि ताला लगा हुआ है। दरयाफ़्त करने पर हमसायों से मालूम हुआ कि उन की अहलिया एक हफ़्ता हुआ कहीं चली गई हैं और बच्चों को अपने साथ ले गई हैं। यह सुन कर ज़मीन मियाँ साहब के पाँओ तले से निकल गई, क्योंकि अब जुनून की बीमारी ने उन की रफ़ीक़ए-हयात पर ग़लबा पा लिया था। उन्हों ने अमरीका के बेहतरीन डाक्टरों से मश्वरा किया था, लेकिन सब लाहासिल साबित हुआ था। अब वह हैरानो-परेशान हो गए कि एक अजनबी मुल्क में जिस का रकबा हज़ारों मील का है वह किस तरह अपने ख़ानदान की तलाश करें।

आख़िर एक दोस्त ने सलाह दी कि यह काम किसी सुराग़रसाँ एजेंसी के सपुर्द कर दें। चुनाँचे उन्हों ने ऐसा ही किया और ख़ुद भी सरासीमगी की हालत में इधर उधर तलाश करते फिरे। उन्हें दिन रात ख़ानदान की फ़िक्र लगी रहती थी, और हर दम ख़ुदा से दुआ करते थे कि उन का सुराग़ कहीं मिल जाए।

सुराग़रसाँ एजेंसी ने अमरीका की तमाम रियासतों के सुराग़रसानों को उन के बीवी बच्चों के हुलिये वग़ैरा भेजे। आख़िर में एक सुराग़रसाँ को एक दिन उन का बेटा क़ुरबान मिला जो मछलियाँ पकड़कर उन्हें बाज़ार में बेच रहा था। उस ने क़ुरबान से हालात दरयाफ़्त किए और उस के जिस जगह वह रहता था गया। जब वह वहाँ पहुँचा तो छोटा

---

[1] *Selected Sermons; Short Talks; Bible Characters; Thoughts on the Quiet Hour*

बेटा नज़ीर भी अख़बार ले कर घर की तरफ़ आ रहा था। मालूम हुआ कि माँ और बेटी अंदर बैठी हैं जबकि लड़के मछलियाँ और अख़बार बेच कर अश्याए-ज़रूरी बाज़ार से ख़रीद लाते हैं। सुराग़रसाँ अंदर गया तो उस पर यह राज़ खुल गया कि माँ बेचारी मर्ज़े-जुनून में मुब्तला है और बेइख़्तियारी की हालत में घर से पाँच सौ मील दूर बच्चों को अपने हमराह ले आई है। उस ने एजेंसी को तार दिया। मियाँ साहब तार पाते ही बीवी बच्चों के पास पहुँच गए और दवा का शुक्र किया।

कनाडा और यूरोप से हो कर वापसी

हालात के पेशे-नज़र एहसानुल्लाह ने यही बेहतर ख़याल किया कि जितनी जल्दी हो सके वापस वतन को चल दें। लेकिन अमरीकी अख़बारों के ज़रीए उन की शोहरत न सिर्फ़ अमरीका की मुख़्तलिफ़ रियासतों में बल्कि मुल्के-कनाडा में भी पहुँच चुकी थी। कनाडा के ईसाइयों ने उन से वादा ले लिया हुआ था कि वह अमरीका से लौटते वक़्त कनाडा की जमातों और शहरों में ज़रूर तक़रीरें करेंगे। चुनाँचे वह अमरीका से कनाडा के मुल्क को रवाना हो गए जहाँ उन्हों ने मॉन्ट्रियल और टोरोंटो के शहरों में चंद हफ़्ते क़याम किया।

उस मुल्क में उन की अहलिया की तबीअत क़रारे सँभल गई। वह इन दो शहरों को सदर-मक़ाम बना कर जगह जगह का दौरा करते रहे। जिस जिस जगह भी वह गए दवा ने उन की ज़बान को इस्तेमाल किया, और जमातें अज़सरे-नौ शगुफ़्ता हो गईं। उन्हों ने अपनी ज़िंदगियों को दवा की क़िस्मत और इंजील फैलाने के लिए मख़्सूस करने का वादा किया। यह जलसे कामयाब हो रहे थे, और लोग मियाँ साहब की आमद के लिए ख़ुशी और शुक्रगुज़ारी का इज़हार कर रहे थे कि अचानक उन की रफ़ीक़ए-हयात की बीमारी उरूज पर आई। यह देख कर कनाडा

वालों ने बा-दिले-नाख़्वास्ता उन्हें रुख़्सत किया और वह वतन की जानिब रवाना हो गए। जनवरी 1900 में वह वापस लंदन पहुँच गए।

लंदन आ कर बेगम की तबीअत बहुत कुछ सँभल गई, इस लिए मियाँ साहब ने दोस्तों के इसरार पर वहाँ दो माह क़ियाम करना और मुख़्तलिफ़ शहरों में जा कर तक़रीरें करना मंज़ूर कर लिया। उन की अपनी बड़ी ख़्वाहिश थी कि जनरल बूथ से एक बार फिर मुलाक़ात करें और उन से रूहानी फ़ैज़ पाएँ। इस के इलावा वह चार्ल्स स्पर्जन की इबादतगाह बनाम टेबरनेकल देख कर उन के जाँनशीन टॉमस स्पर्जन और उन के अह्बाब से मुलाक़ात करके उन की निस्बत इस्तिफ़्सार करना चाहते थे।

उन्हों ने दो माह के क़रीब वहाँ क़ियाम किया। उन की रफ़ीक़ाए-हयात की बहुत ख़्वाहिश थी कि वह वापसी पर पैरिस और फ़्रांस को देखें। मियाँ साहब को उन से बहुत मुहब्बत थी, और वह हमेशा उन्हें प्यार के अल्क़ाब और मुहब्बत से मुख़ातिब किया करते थे। उन के मर्ज़ की वजह से वह और भी मुलायमत और मुहब्बत से पेश आते थे। उन ही की ख़्वाहिश की ख़ातिर उन्हों ने यह बात मंज़ूर कर ली और लंदन से पैरिस के लिए रवाना हुए।

फ़ितरत ने बेगम एहसानुल्लाह की तबीअत में आर्ट, नक्काशी और दीगर ख़ूबसूरत इमारतों वग़ैरा से वाबस्तगी डाल रखी थी। फ़्रांस में जा कर जब उन्हों ने क़दीम गिरजे, शाहाना इमारतें और आर्ट वग़ैरा के काम देखे तो वह अश अश करने लगीं। मियाँ साहब उन का दिमाग़ी तवाज़ुन देख कर निहायत ख़ुश हुए और ख़ुदा का लाख लाख शुक्र बजा लाए।

फ़्रांस से वह इटली गए जहाँ के नज़ारों ने सब के दिलों को मोह लिया। वह मज़हबी ज़ियारत-गाहों को भी देखने गए और मुक़द्दस मक़ामात की ज़ियारत के बाद हिंदुस्तान के लिए रवाना हुए। जून 1900 में वह ख़ैरियत से मुंबई पहुँच गए।

मुंबई में आना था कि उन की रफ़ीक़ाए-हयात का मर्ज़ बड़े ज़ोर से उरूज पर आया। वह मुंबई शहर की जानिब भाग निकलीं, लेकिन अब

उन के दोनों लड़कों, क़ुर्बान और नज़ीर को तल्ख़ तजरिबा हो चुका था, और वह चौकस रहते थे। उन्हों ने पैरन अपने वालिद को जो रेल के टिकट ख़रीदने गए हुए थे इत्तिला दी तो मियाँ साहब उन का पीछा करके उन्हें वापस ले आए। वह मुंबई से सीधे होशियारपुर आ गए जहाँ उन के क़दीम दोस्त डाक्टर दीना नाथ प्रेतू दित्ता सिविल सर्जन थे।

11 झंगबार की ख़िदमत

बेटमन की दावत

जब सफ़र की तकान ख़त्म हुई तो डाक्टर दित्ता ने एहसानुल्लाह से यूरोप और अमरीका के तजरिबात का हाल पूछा। दोनों मुद्दत तक उन जलसों का ज़िक्र करते रहे जो लंदन और इंगलैंड, अमरीका और कनाडा के शहरों में हुए थे। फिर मियाँ साहब ने डी.एल. मूडी की तहरीक का ज़िक्र किया और कहा कि ख़ुदा ने उस के ज़रीए मुझे अपनी क़ुरबत हद से ज़्यादा बख़्शी है।

जब डाक्टर साहब ने उन की रिफ़ाहे-हयात के दिमाग़ी तवाज़ुन की निस्बत पूछा तो गो मियाँ साहब अपनी तबीअत को क़ाबू में रखने के आदी थे ताहम अपने लड़कपन के दोस्त से जो भाई के बराबर उन से मुहब्बत रखता था, अपने आँसू छुपा न सके और तबीअत पर क़ाबू न पा कर बेइख़्तियार रोने लगे।

जब तबीअत कुछ सँभल गई तो उन्हों ने सब बातें तफ़्सीलन बताईं जो उन की अहलिया पर अमरीका, कनाडा, इंगलैंड और गुज़श्ता हफ़्ते मुंबई में गुज़री थीं। इस के बाद मियाँ साहब कहने लगे, “भाई दीना नाथ। मालूम नहीं ख़ुदा की क्या मरज़ी है। मैं तो यह चाहता हूँ कि पहले की तरह फिराना ज़िंदगी बसर करके जमात और इंजील की ख़िदमत करूँ। लेकिन इन हालात के पेशे-नज़र मैं लुईज़ा को और बच्चों को किस तरह अकेला छोड़सकता हूँ? तुम जानते हो मुझे उस के साथ सच्ची मुहब्बत है, और मैं ने निकाह के वक़्त ख़ुदा और उस की जमात के रू-ब-रू वादा किया था और उस के साथ भी क़ौलो-क़रार किया था कि जब तक मौत मुझे उस से जुदा न करे ख़ुदा के हुक्म के मुताबिक़ भलाई और बुराई, नादारी और ख़ुशहाली, बीमारी और तनदुरुस्ती में

उस से मुहब्बत रखूँगा और उस की ख़ातिरो-मुदारात किया करूँगा। मैं न उस को छोड़ सकता हूँ न बच्चों की ज़िम्मेदारी की तरफ़ से अपनी आँखें बंद कर सकता हूँ, और न मैं ख़ुदा की जमात की ख़िदमत और इंजील फैलाने के फ़र्ज़ की आवाज़ की तरफ़ से अपने कानों में उंगलियाँ डाल सकता हूँ। मैं अजब उलझन में फंसा हूँ, मेरी जान निढाल हो रही है और मुस्तक़बिल तारीक है। मुझे सलाह दो कि क्या करूँ।”

डाक्टर दित्ता निहायत दीनदार और ख़ुदा पर ईमान रखने वाले शख़्स थे। दोनों ने कमरे का दरवाज़ा बंद करके घुटनों के बल ख़ुदा के हुज़ूर निहायत दिल-सोज़ी से दुआ की और अपना दिल हल्का करके उठे।

ख़ुदा का करना ऐसा हुआ कि तीसरे रोज़ डाक्टर दित्ता को बेटमन का ख़त झंगबार से आया कि “जब एहसान हिंदुस्तान से आए तो मुझे इत्तिला देना। मुझे उस की सख़्त ज़रूरत है।”

डाक्टर साहब ने यह ख़त मियाँ साहब को दिया और कहा, “भाई एहसान, यह लो। ख़ुदा ने हमारी दुआओं का जवाब दे दिया है। बेटमन की तबदीली झंगबार हो गई है। सियालकोट और गुजराँवाला के हज़ारों मसीही जिन में तुम गुज़श्ता दस साल से काम करते रहे हो नकले-मकानी करके वहाँ चले गए हैं और उस नई आबादी में रहते हैं। वहाँ तुम अपने काम को जारी भी रख सकोगे अगरचे आज़ादाना फ़क़ीरी की हालत में ज़िंदगी बसर नहीं कर सकोगे। लेकिन तुम लुईज़ा को और बच्चों को, जैसा तुम्हारा ख़याल है, अपने पास रख सकोगे और ख़ुदा की ख़िदमत और इंजील फैलाने का काम अपनी मरज़ी के मुताबिक़ कर सकोगे। तुम्हारी तबीअत तो यह चाहती है कि फ़क़ीराना एक जगह से दूसरी जगह आज़ादाना फिरो और ख़ुदा की ख़िदमत करो। लेकिन ऐसा मालूम होता है कि ख़ुदा तुम से अब फ़क़ीरी की हालत में ख़िदमत लेना नहीं चाहता। ख़ुदा का इंतज़ाम इनसानी इद्राक से बुलंदो-बाला है जिस में चूँ-ओ-चरा की गुंजाइश नहीं हो सकती। रज़ाए-इलाही मुक़द्दम है। आख़िर आज़ादाना ख़िदमत का वाहिद तरीक़ा तो है नहीं। अब ख़ुदा

तुम से दूसरी क़िस्म की ख़िदमत लेना चाहता है, इस लिए उस ने यह दरवाज़ा खोल दिया है।"

एहसानुल्लाह बेटमन का ख़त ले कर बाहर वीराने में चले गए और ख़ुदा से दिलो-जान से दुआ की कि अगर तेरी मरज़ी है कि मैं तेरे बंदे बेटमन के साथ काम करूँ तो अपनी मरज़ी मुझ पर ज़ाहिर कर और मेरे दिल को अपने ताबे फ़रमान कर दे। वह घंटों ख़ुदा की दरगाह में सिज्दे में पड़े रहे और निहायत आजिज़ी और ज़ारी से दुआ में कुश्ती लड़ते रहे जब तक उन्हें यह एहसास न हुआ कि ख़ुदा ने मुस्तक़बिल की तारीकी का पर्दा फाड़कर उन्हें इस नई ख़िदमत के लिए बुलाया है। तब मकान पर वापस आ कर उन्हों ने अपने रूहानी बाप को ख़त लिखा जिस के जवाब में बेटमन ने उन्हें लिखा कि बेटा, मेरे पास टोबा टेक सिंह फ़ौरन पहुँचो। मुझे तुम्हारी इम्दाद की ज़रूरत है।

अब नाज़रीन पर ज़ाहिर हो गया होगा कि किन हालात और मज्बूरियों के मा-तहत उन्हें आज़ादाना काम और ख़िदमत छोड़नी पड़ी, कि उन का चर्च मिशन में फिर वापस आना कैसे हुआ।

झंगबार में ख़िदमत का आग़ाज़

चनाब की नौ-आबादी जिस को झंगबार भी कहते हैं 1892 में शुरू हुई। यह इलाक़ा दरयाए-चनाब और दरयाए-रावी के दरमियान वाक़े है और तक़रीबन तीन हज़ार पाँच सौ मुरब्बा मील है। वह ज़माना-ए-क़दीम से ग़ैर-आबाद था जिस में कहीं कहीं जंगली लोग बस्ते थे जो ख़ाना-ब-दोश थे और अपने ऊँटों और चारपाइयों को ले कर हरी चरागाहों की तलाश में कोसों निकल जाया करते थे। पंजाब सरकार ने यहाँ नहरें खुदवाईं, बल्कि 1895 में रेलवे लायन बनाने की तज्वीज़ भी शुरू हुईं। देहात के ख़ाके तैयार हुए जिन की सड़कें चौड़ी हों। पंजाब के चारों तरफ़ से हिंदू, मुसलमान और सिक्ख इस नौ-आबादी में नक़ल-ए-मकानी

करके आ गए जिन में से हर एक को सरकार ने 217 एकड़ ज़मीन अता कर दी। इन में से बहुत ऐसे अश्ख़ास थे जो अकेले ज़राअत नहीं कर सकते थे। लिहाज़ा उन्हों ने अपने पुराने इलाक़े और गाँव से मज़दूरों को आने के लिए कहा। इस के इलावा कई सौ मील लम्बी नहरों की खुदवाई दरकार थी। लिहाज़ा इन नौ-आबादकारों ने मज़दूरों को सालाना उजरत पर रख लिया जिन को वह फ़स्ल के बाद अनाज मज़दूरी के तौर पर देने लगे। इन मज़दूरों की अक्सरियत चूहड़ों की थी जिन का आबाई पेशा ज़राअत था। लेकिन चूँकि सरकार ने उन्हें ज़राअत-पेशा क़ौम क़रार नहीं दिया था इस लिए उन्हें कोई ज़मीन न दी गई और न वह एक चप्पा ज़मीन के मालिक हो सकते थे। इन चूहड़ों के इलावा मसीही ख़ानदान भी अमृतसर, गुरदासपुर, सियालकोट और गुजराँवाला के इलाक़े से नक़्ले-मकानी करके आ गए और ग़ैर-मसीही मालिकाने-अराज़ी के ख़िदमतगार हो गए। बाज़ मसीही निस्बतन ख़ुश-हाल भी थे। उन के पास अपने हल और हैवान थे। चूँकि वह ग़ैर-ज़राअत-पेशा क़ौमे-चूहड़ा में से ईसाई हो गए थे इस लिए वह भी ज़मीन के मालिक नहीं हो सकते थे। चुनाँचे वह ग़ैर-मसीही मालिकाने-अराज़ी से ज़मीन ठेके पर ले कर ज़राअत का काम करने लगे।

1898 में चर्च मिशन के वायटब्रेख़्त और स्काच प्रेस्बिटेरियन मिशन के डाक्टर यंगसन और यू.पी. मिशन के ख़ादिम मार्टिन की मुत्तहिदा कोशिशों से सरकार पंजाब ने चंद चीदा चीदा ईसाइयों को ज़मीन के क़ित्ए अता कर दिए जहाँ चर्च मिशन ने मंटगुमरी-वाला और बेटमनाबाद (ईसानगरी) के गाँव बसाए। स्काच मिशन ने यंगसनाबाद, यू.पी. मिशन ने मार्टिन-पुर और रूमी फ़िरक़े ने ख़ुशपुर क़ायम किए। 1900 तक यह ईसाई उन में आबाद हो गए। यह मसीही अपने दीनी उस्तादों और ख़ादिमों से दूर बस्ते थे। गो वह अनपढ़ और जाहिल थे, लेकिन उन में से अक्सर एहसानुल्लाह की बेदारी की लहर से और उन जलसों से मुतअस्सिर हो चुके थे जो उन्हों ने सियालकोट, गुरदासपुर, अमृतसर

और गुजराँवाला के अज़्ला के शहरों और गाँव में 1896 से तीन साल तक फ़िराना हालत में किए थे। वह उन की जोशीली तक़रीरों और उन की तालीम को न भूल सकते थे और न भूले। चुनाँचे गो इन नई आबादियों में कोई ख़दिम न था जो उन की बा-क़ायदा इबादतें करवाता और उन्हें इंजील जलील की तालीम देता ताहम उन में से अक्सर जगह जगह जमा हो कर दुआ, इबादत और ज़बूर गाने के लिए जमा हुआ करते थे।

बेटमन मार्च 1897 में नारोवाल से इंगलैंड चले गए, क्योंकि उन की रफ़ीक़ए-हयात इंतक़ाल कर गई थी, और वह अपने बच्चों की ख़ातिर वहाँ 1899 के मौसमे-ख़िज़ाँ तक रहे। जब वह पंजाब आए तो उन्हें झंगबार के इलोक़ा पर मुक़र्रर हुआ। बेटमन नवंबर के आख़िर में झंगबार पहुँच गए। उन्हों ने टोबा टेक सिंह को उस तमाम इलोक़ा का सदर-मक़ाम बना लिया। डाक्टर दित्ता ने वहाँ ज़मीन ख़रीद लिया और सादा मकानात बनवा कर चर्च मिशन को दे दिए। इन मकानात में बेटमन और उस का खाना पकाने वाला और उस की सवारी के ऊँट रहने लगे। उस ने वारिसुद-दीन को अपने पास बुला लिया। जब एहसानुल्लाह ख़ानदान समेत टोबा टेक सिंह पहुँचे तो डाक्टर दित्ता ने सड़क के किनारे पर दो कमरे और बरामदा बनवा दिया।

जून 1900 में बार के उस इलोक़ा में जो चर्च मिशन के मुताल्लिक़ था तक़रीबन एक हज़ार गाँव आबाद हो गए थे। उन में से तक़रीबन 125 गाँव में कहीं कहीं ईसाई रहते थे जो तादाद में तक़रीबन दो हज़ार नुफ़ूस थे। उन में से तक़रीबन निस्फ़ तादाद उन ईसाइयों की थी जो नारोवाल के इर्दगिर्द के गाँव से आए थे और चर्च मिशन और यू.पी. मिशन से ताल्लुक़ रखते थे। उन में से मतअद्दिद ऐसे थे जो पिछले तीन से ले कर सात सालों से यहाँ आए हुए थे। उन के घरों में औरतें बग़ैर निकाह के रहती थीं, क्योंकि वहाँ कोई ईसाई निकाह-ख़्वाँ न था। यह मसीही अक्सर एक जगह से दूसरी जगह तलाशे-रोज़गार में नक़्ल-मकानी करते रहते थे।

झंगबार के इलोक़ेमें उन दिनों न कोई रेल थी और न पक्की सड़कें। कच्ची सड़कों के कहीं कहीं निशान थे। चर्च मिशन के सदर-मक़ाम टोबा टेक सिंह से यह तीनों ख़ादिम गोजरा, समुंद्री, सिकंदराबाद, ईसानगरी (बेटमनाबाद) और मंटगुमरी-वाला जाया करते थे। रास्ते तो थे नहीं। हर तरफ़जंगल ही जंगल थे जो दुश्वार गुज़ार और डाकुओं की खोह थे। उन्हों ने कई दफ़उन मर्दाने-रुवा को घेर कर लूट लिया। तमाम इलोक़ में शिद्दत की बेपनाह गर्मी थी। पानी पीने के लिए कुएँ तक न थे, और जो थे वह खारी पानी के थे। बाज़औक़ात नहर के बंगलों में भी पानी दस्तयाब नहीं होता था, क्योंकि राजबहा रुक्क होता था। ऐसे औक़ात में यह मर्दाने-रुवा जौहड़ें से गंदा पानी जो हशरातुल-अर्ज़से मामूर होता था ले कर उसे उबाल कर पी लेते थे। खाने को जो मुयस्सर होता खा लेते और रुवा का शुक्र करके जा-ब-जा रुवा की जमातों की ख़िदमत करते रहते थे। गर्मी की शिद्दत को आसान करने के लिए ऐसी काली आंधियाँ चलतीं कि इनसान की आँखें अपने हाथों को न देख सकतीं।

सवारी के लिए ऊँट होते थे, और सोने के लिए मवेशियों के स्थान, दरख़्तों के साय और झोंपड़ियाँ मिल जाती थीं। लेकिन रुवा के यह तीनों ख़ादिम दरवेश-सिफ़त थे। उन्हें न सर्दी की परवाह थी, न गर्मी की। न भूक की, न प्यास की, न आराम का ख़याल था और न आसाइश का। आराम को यह जानते ही न थे। रुवा ने तीनों को जिस्म भी ऐसे बख़्शे थे जो मज़बूत थे। रुवा की ख़िदमत, जमात की मुहब्बत और इंजील के फैलाव में वह ऐसे सरशार रहते थे कि वह न बीमारी को ख़तिर में लाते थे और न थकावट को जानते थे। वह एक साल में कई कई हज़ार मील सफ़र कर जाते थे। चुनाँचे 1900 के आख़िरी साढ़े 9 माह में बेटमन ने 2,386 मील पैदल सफ़र किया था, अगरचे उस की उम्र साठ साल की थी। हम अंदाज़कर सकते हैं कि इस जवाँ-हिम्मत बुज़ुर्ग का नमूना उस के दोनों चेलों के लिए जो दीनी लिहाज़से उस के बेटे थे क्या असर

रखता होगा। दोनों ख़ुदा के फ़ज़्ल से जवान और तनोमंद, ग़यूर, मसीह के आशिक़और जाँ-फ़िशानी से काम करने वाले थे।

एहसानुल्लाह पैदल सफ़र करने और मेहनत-मशक़्क़त के आदी थे। झंगबार में वह मीलों सफ़र करते निकल जाते, रात किसी झोंपड़ी में या दरख़्त के साय के नीचे बसर करते जब तक कि वह किसी बस्ती या गाँव में न पहुँचते। वहाँ पहुँच कर वह मसीहियों के साथ उन की झोंपड़ियों में रहते जहाँ उन के मवेशी बंधे होते थे। वहीं रातों के वक़्त सोते और उन के दुख-सुख में शरीक होते थे।

उन दिनों में सफ़र यक्कों, बहलियों, गड्डों, घोड़ें और ऊँटों पर किया जाता था। जब वह मवेशियों के पास रात गुज़ारते तो वह लोगों को कहते कि जब ख़ुदावंद मसीह इस दुनिया में आए थे तो वह भी एक मवेशी-ख़ाने में आए थे। आप के साथ रहना तो इज़्ज़त का बाइस है।

मुझे याद है कि पचास साल से ज़ायद अर्सा हुआ है तो मैं एहसानुल्लाह के पास टोबा टेक सिंह गया। वह किसी गाँव जाने के लिए तैयार खेड़े थे। उन्हों ने मुझे अपने पीछे ऊँट पर बिठा लिया। तमाम दिन सफ़र करते रहे। सूरज डूबने के बाद गाँव पहुँचे। जाते ही मैं एक झोंपड़ी के सामने चारपाई पर लेट गया और थकावट के मारे वहीं सो गया, क्योंकि मैं इस से पहले कभी ऊँट पर सवार न हुआ था। खाने के लिए उन्हों ने मुझे जगाया। मैं खाना खाते ही फिर सो गया। गर्मी शिद्दत की थी। आधी रात के बाद गर्मी के मारे मेरी जाग खुली। क्या देखता हूँ कि मियाँ साहब एक चारपाई पर बैठे हैं। लोग इर्दगिर्द बैठे आपस में झगड़रहे हैं, और वह दो पार्टियों में सुलह करा रहे हैं। जब तक दोनों में सुलह न हुई कोई उन के पास से न खिसका।

लोगों के रुख़्सत होने के बाद वह दुआ में लगे और रात के तीसरे पहर तक अपने घुटनों के बल दुआ करते रहे। उन के सोने के दो घंटे बाद आंधी चलनी शुरू हुई। परे बैल बंधे थे। पास ही खाद-मिट्टी का ढेर लगा था। बस कुछ न पूछिए कि हमारा क्या हाल हुआ। ख़ुदा ख़ुदा करके

सुब्ह हुई। मुर्ग़ ने अज़ान दी तो वह उठे और दुआ में मशग़ूल हो गए। दुआ के बाद सब की इबादत में हादी हुए। वाज़गोई पर उन्हें हाकिमाना क़ुदरत थी। मैं तब मुसलमान था, उन की ज़िंदगी और बातों से निहायत मुतअस्सिर हुआ। इबादत के बाद सब छोटे बड़ों से लुत्फ़ो-मुहब्बत की बातें करते रहे।

उन की ख़ातिरदारी मुलाक़ात करने वालों को बेहद मुतअस्सिर करती थी। अगरचे वह लोगों से बड़ी गर्म-जोशी से मिलते थे, लेकिन हर शख़्स उन की महफ़िल में ज़्यादा हदे-अदब के हुदूद में रहता था। उन की मजलिस में लोग हमेशा रख-रखाओ और वज़ादारी का ख़्याल रखते हुए निहायत मुअद्दब अंदाज़ से उन्हें मुख़ातिब करते थे।

जब मैं अमृतसर में आर्च डीकन था तो एक ज़ईफ़-उम्र ईसाई मुझे मिलने आया और कहने लगा,

> मैं ने सुना है कि आप बड़े आर्च डीकन के भतीजे हैं और अब ख़ुद आर्च डीकन हैं। मैं ने उन्हें फ़लाँ गाँव में उन के ताया जी के साथ देखा था जब वह अभी मुसलमान थे। वह दिन बहुत अच्छे थे। तब वह बुज़ुर्ग हमारे पास रातों झोंपड़ियों में ठहरा करते थे। उन के मिज़ाज में बड़ी सादगी थी। साहबे-राय और मर्दुम-शनास, सुख़न-फ़हम थे और असल बात को फ़ौरन ताड़ जाते थे। लेकिन अब जो बुज़ुर्ग हैं वह मोटरों पर छक छक करते आते हैं और जिस तरह बच्चे कबड्डी खेलते वक़्त हाथ लगा कर भाग उठते हैं इसी तरह वह इबादत करा के चंद एक से हाथ मिला कर मोटर में बैठ, यह जा, वह जा।

यूँ तो एहसानुल्लाह जमात और इंजील जलील की ख़िदमत के लिए हर जगह मशहूर थे। लेकिन जो ख़िदमत उन्हों ने झंगबार के इलाक़े में की वह आप ही अपनी मिसाल थी। तमाम झंगबार में उन्हों ने चप्पा चप्पा का दौरा कई बार किया। वह ख़ुद मेहनत-मशक़्क़त से काम करते थे। उन की हमेशा यही ख़्वाहिश रही कि उन के गाँव के मा-तहत मुबल्लिग़ीन भी अपनी जमातों की ख़िदमत जाँ-फ़िशानी से मेहनत करके करें। यों

वह न सिर्फ़ ख़ुद काम करने वाले इनसान थे बल्कि अपने मा-तहतों से भी काम लेना जानते थे। जो मा-तहत काम से घबराने वाले नहीं थे वह उन के साथ काम करने में फ़ख़्र और ख़ुशी महसूस करते थे। लेकिन काम-चोर मा-तहत की जान निकल जाती थी। मुरुवत का दबाव डाल कर उन्हों ने किसी से काम न लिया। वह चाहते थे कि मेरे मा-तहत मुझे अपना रफ़ीक़ और साथी ख़याल करें, कि वह बे-ग़र्ज़ाना और बिला-लौस ख़िदमत करके हर बात में सरगर्म हिस्सा लें।

जब वह किसी के काम से नाख़ुश होते थे तो तल्ख़ियों की आमेज़िश के बावुजूद उन के कलाम में शीरीनी होती थी। क्योंकि वह मुहब्बत से मामूर थे। नफ़रत और कुदूरत के ज़र्रात उन के नज़दीक फटकने भी न पाते थे। जो बात कहते ख़ुदा-लगती कहते थे। हर एक बात निहायत मतानत और सन्जीदगी के साथ करते और कहते थे। मुहब्बत से काम लेना उन की फ़ितरत के मुवाफ़िक़ था। उन की निगाह लुतफ़ से मा-तहतों का दिल बल्लियों उछलता था। जो उन की आँखों में जच गए ख़ालिस सोने की मानिंद दमक गए।

एक शख़्स मुझे याद है जो किसी मिशनरी ने निकाल दिया। मैं उसे अच्छी तरह जानता था। मुझे मालूम था कि वह मेहनत और दियानतदारी से काम करने वाला है। मेरी सिफ़ारिश पर मियाँ साहब ने उसे अपने पास टोबा टेक सिंह बुला लिया और उस से दिन रात मेहनत करवा कर अच्छी तरह दो साल तक आज़माया। इस के बाद उन्हों ने मुझे फ़रमाया, "लड़का अच्छा है। तुम ने ख़ूब किया जो उस की सिफ़ारिश की। अगर ऐसा ही रहा चंद सालों के बाद डीकन बनने के क़ाबिल हो जाएगा।" बहुत सालों के बाद वह डीकन और प्रीस्ट हो गया और ख़ुदावंद की ख़िदमत बड़ी मेहनत से करता रहा।वायज़साहब भी लिखते हैं,

> एहसानुल्लाह में एक बड़ी भारी ख़ूबी थी जो हमारे ख़ादिमों में बिलकुल नहीं है। हमारे ख़ादिम यह चाहते हैं कि पाँच-दस मुनाद उन के मा-तहत हों, उन के आगे पीछे अरदली में चलने वाले हों। ख़ादिम के घर का काम

करें। कोई दूध दोहे, कोई गाय भैंस की हिफ़ाज़त करे, कोई सौदा लाए, कोई ख़ादिम की ग़ैर-हाज़िरी में उन के ख़ानदान और बच्चों की चौकीदारी करे। मुनाद उन के निज के नौकर होते हैं जो ज़रूरत के वक़्त खाना भी पका दे। लेकिन एहसानुल्लाह अपने मुनादों से कभी निज का काम नहीं लेते थे, और उन्हें दीनी और जमात के काम और इंजील की ख़िदमत के सिवा और कोई दूसरा काम नहीं करने देते थे। ग़रज़ बहुत सी खूबियाँ थीं मरने वाले में।

झंगबार का इंतज़ाम ठोस करने के अक़्दाम

झंगबार के इलोक़े में एहसानुल्लाह ने जगह जगह की जमातों को मुनज़्ज़म किया। दूर दूर के गाँव और बस्तियों को मुख़्तलिफ़ इलाक़ों में जमा करके उन्हों ने हर इलोक़े को एक होशियार, दाना और तजरिबाकार मुबल्लिग़ के सपुर्द किया जो एक मर्कज़ के गाँव में रहता था। हर मर्कज़ में उन्हों ने स्कूल खोल कर कच्ची और पक्की दीवारों की इबादतगाहें बनवाईं। सिकंदराबाद के गाँव के निस्फ़ हिस्से को ईसाई काश्त करते थे, इस लिए वहाँ एक स्कूल और इबादतगाह और मुबल्लिग़ की जाए-रिहाइश बनाई गई। मंटगुमरी-वाला और ईसानगरी (बेटमनाबाद) ईसाई गाँव थे।

1900 में एहसानुल्लाह ने क़दीमी दोस्त वायटब्रेख़्त के साथ मंटगुमरी-वाला की इबादतगाह का संगे-बुनियाद रखा जो 1901 में मुकम्मल हो गया जिस की अगले साल बिशप लीफ़्राए ने तक़्दीस की। तक़्दीस के मौक़े पर बिशप साहब एहसानुल्लाह से बग़लगीर हो कर मिले और उन अय्याम को याद करते रहे जब वह फ़क़ीराना हालत में दिल्ली गए थे और जमात की ज़िंदगी और मिशनरी की ज़िंदगियों को अपने वलवला-अंगेज़ वाज़ों से मुतअस्सिर किया था।

मंटगुमरी-वाला में लड़कों का स्कूल 1900 में खोल दिया गया था। 1903 में वहाँ लड़कियों की पढ़ाई के लिए अलग स्कूल खोल दिया

गया था। बेटमनाबाद का गाँव मंटगुमरी-वाला से तक़रीबन 35 मील दूर था। वहाँ कच्ची ईंटों की इबादतगाह और स्कूल और मुबल्लिग़ की जाए-रिहाइश बना दी गई।

मंटगुमरी-वाला और बेटमनाबाद में हर साल 26 दिसंबर के रोज़ मेले होने लगे जिन में ग़ैर-मसीही हज़ारों की तादाद में आने लगे। उन दोनों गाँव में इजतिमाई मश्ग़ले, मेले-ठेले और खेल-तमाशे हुआ करते थे जिन में इर्दगिर्द के गाँव की गीत-पार्टियाँ आतीं, इनामी मुक़ाबले होते और इंजील जलील का परचार ग़ैर-मसीहियों में किया जाता जिस से जमात की पहचान और उस के ईमान के इस्तिह्काम में तरक़्क़ी होने लगी। झंगबार के इलोक़े के गाँव के बूढ़े अब तक एहसानुल्लाह की ख़िदमत की कहानियाँ बयान करते हैं और ज़िक्र करते हैं कि किस ख़ुशी से वह हर क़िस्म की तक्लीफ़ बरदाश्त किया करते थे। वह हर एक से मुहब्बत, प्यार और गर्म-जोशी से मिल कर उस के दुख और सुख, ग़म और ख़ुशी में शरीक होते और हर एक को ज़हन में रखते थे। ताऊन, हैज़ा और दीगर वबाओं के वक़्त वह बीमारों से मिलने से कभी न झिजकते और मरने वालों को ख़ुदा के पास जाने के लिए तैयार किया करते थे।

फ़िरक़ा-बंद के ख़िलाफ़ कोशिशें

हम ऊपर ज़िक्र कर आए हैं कि एहसानुल्लाह बेखौफ और निडर हो कर पंजाब की शहरी जमातों को मग़रिबी जमातों की फ़िरक़ा-बंद से आज़ाद रहने की तालीम देते रहे। वह इल्यास की सी रूह रखते थे और निहायत दिलेरी से मुख़्तलिफ़ मिशनों के मिशनरियों को भी ताकीद करके कहते थे कि हिंदुस्तान की जमात को अपने मग़रिबी बखेड़ों से आज़ाद रहने दो। उन्हों ने चर्च मिशन की सद-साला बरसी के मौक़े पर भी उस के बुज़ुर्गों को ख़ुदा का वास्ता दे कर यही कहा था।

आख़िर में इस का नतीजा यह हुआ कि लाहौर में चर्च मिशन की ज़ेर-सरपरस्ती 1902 में एक "नेटिव क्रिस्चन कौंसल" मुनअक़िद हुई जिस में मुख़्तलिफ़ जमातों के सरबराह ख़ादिम और अहले-जमात शरीक हुए। राजा सिर हरनाम सिंह जैसे ग़यूर ईसाई उस के सदर थे। उस में कोई परदेसी शामिल न था। इन अस्हाब ने तीन रोज़ तक जमात के मसायल पर तबादलाए-ख़यालात किया और बह्स के बाद मतअद्दिद क़रारदादें तज्वीज़ कीं। अगर इन तजावीज़ पर अमल किया जाता तो पंजाब की जमात कब से आज़ाद हो कर अपने पाँओ पर खड़ी हो गई होती और अपनी मुख़्तलिफ़ ज़िम्मेदारियों को जाँ-फ़िशानी से पूरा करती होती। पंजाब में एक मुत्तहिदा मैदान क़ायम हो गया होता और तमाम पंजाबी ईसाई अब तक फ़िर्क़ा-बंद से आज़ाद और मग़रिब के रूपों से बेनियाज़ हो गए होते। लेकिन मिशन के बुज़ुर्गों को यह बात पसंद न आई। नतीजे में यह क़रारदादें काग़ज़ी पतंग बन कर ही हवा में उड़ गए। इस कौंसल का इज्लास फिर दुबारा न हुआ।

पंजाब की जमात ब-दस्तूर फ़िर्क़ा-बंद की ज़ंजीरों में जकडी रही और सोने के तौक़ हर जमात की ग़ुलामी के इम्तियाज़ी निशान रहे हैं। मियाँ साहब अक्सर कहा करते थे,

> آنچہ شیراں را کُند روباہ مزاج
> احتیاج است، احتیاج است، احتیاج
> जो कुछ शेरों को लोमड़ियों का सा मिज़ाज दिला देती है
> वह ज़रूरत है, ज़रूरत है, ज़रूरत

सरगोधा का इंतज़ाम ठोस करने के अक़्दाम

1873 में बिशप फ़्रेंच ने लाहौर में सेंट जान्ज़ डिविनिटी कॉलेज की बुनियाद क़ायम की थी। अब यह कॉलेज तीस साल से लाहौर के इलोक़

के लिए ख़ादिम तैयार कर रहा था। 1903 में ख़ुदा का शुक्र बजा लाने के लिए इस कॉलेज में वह तमाम ख़ादिम इकट्ठे हुए जिन्हों ने इस इदारे में तालीम पाई थी।

उस साल उन ख़ादिमों की तादाद जो अब तक ज़िंदा थे और इंजील की ख़िदमत कर रहे थे 50 से ज़्यादा थी। लेकिन उन में से सिर्फ़ निस्फ़ के क़रीब यानी 27 लाहौर आ सके। एहसानुल्लाह इस मौक़े पर आए, और सब एक दूसरे को देख कर निहायत महज़ूज़ हुए। हाज़िरीन में 17 ऐसे थे जो पहले दायराए-इस्लाम में थे और अब ख़ुदावंद के फ़रमाँ-बरदार हो कर इंजील जलील की ख़िदमत करते थे। इन 17 अस्हाब में से नौ प्रीस्ट के ओहदे पर मुम्ताज़ थे।

नवंबर 1903 में एहसानुल्लाह टोबा टेक सिंह से सरगोधा चले गए। क्योंकि जहलुम की यह नौ-आबादी नई नई शुरू हुई थी वहाँ उन जैसे जफ़ाकश शख़्स की अशद ज़रूरत थी। इस नए काम को उन्हों ने नए तर्ज़ पर चलाया और वहाँ के तमाम गाँव की जमातों को मुनज़्ज़म करके उन में लड़कों और लड़कियों के स्कूल खोल दिए। जिन मुबल्लिग़ीन को उन्हों ने वहाँ मुक़र्रर किया उन के हाथों में उन स्कूलों की तालीम भी सौंप दी। उन्हों ने एक साल के क़रीब वहाँ दिन रात अनथक मेहनत की। हर गाँव का दौरा किया। ईसाइयों को जा-ब-जा उभारा, जमातों को मुस्तह्कम किया और तमाम उमूर को इस ख़ूबी से सरअन्जाम दिया कि इस अर्से के बाद वह वापस टोबा टेक सिंह आ सके।

चर्च मिशन की राहनुमाई में तबदीलियाँ

जब एहसानुल्लाह ने देखा कि मुख़्तलिफ़ मिशनों के कारकुनों की यह मुत्तफ़िक़ ख़्वाहिश है कि “नेटिव क्रिस्चन कौंसल” दुबारा मुनअक़िद न हो तो उन्हों ने एक और तहरीक शुरू की कि चर्च मिशन के काम का इंतज़ाम सिर्फ़ मिशनरी न करें बल्कि इस इंतज़ाम में हिंदुस्तानी ख़ादिम

और अहले-जमात भी बराबर के शरीक हों ताकि यह एतराज़ रफ़ा हो जाए कि देसी मिशन के काम को सँभालना नहीं जानते।

उन की तहरीक का नतीजा यह हुआ कि चर्च मिशन ने पंजाब, सिंध, सूबा सरहद और बलोचिस्तान के लिए एक नए मन्सूबे का ख़ाका तैयार किया जिस के मुताबिक़ मिशन और जमात के तमाम शोबे एक ही इंतज़ाम के मा-तहत किए गए। यों हिंदुस्तानी और यूरोपियन काम, बिशारती और पासबानी काम, तालीम और मेडीकल के शोबे, सब के सब मुनज़्ज़म कर दिए गए और उन्हें सेंट्रल मिशन कौंसल के मा-तहत कर दिया गया जिस के सदर लाहौर के बिशप थे। चर्च मिशन के तमाम इलोक़ को मुख़्तलिफ़ इलाक़ों में तक़्सीम कर दिया गया और तमाम शहरों और गाँव की जमातों को इन इलाक़ई कौंसिलों के मा-तहत कर दिया गया जिन के सालाना जलसों में यह जमातें अपने नुमाइंदे मुंतख़िब करके भेजें। यह इलाक़ई कौंसिलें अपने नुमाइंदे मुंतख़िब करके मर्कज़ी सेंट्रल मिशन कौंसल में भेजें। इन इलाक़ई कौंसिलों और मर्कज़ी कौंसल की इंतज़ामिया कमेटियाँ साल भर काम चलाऐं। इन के इलावा मुख़्तलिफ़ शोबों की ख़ास कमेटियाँ भी मर्कज़ी कौंसल के मा-तहत की गईं। और यह लाज़िम कर दिया गया कि इन तमाम कमेटियों, इलाक़ई कौंसिलों और मर्कज़ी कौंसल में हिंदुस्तानी और यूरोपियन उन्सुर, दोनों हों।

यह तरीक़ए-कार शख़्सी इंतज़ाम और हुकूमत से कहीं बेहतर था। एहसानुल्लाह और जमात के दीगर मुदब्बरीन ने इस मन्सूबे को तजरिबे के तौर पर चंद सालों के लिए मंज़ूर कर लिया। जब इस मन्सूबे पर अमल-दर-आमद शुरू हुआ तो मियाँ साहब और चंद दीगर लायक़ हिंदुस्तानी ख़ादिमुद-दीन इस मन्सूबे की इलाक़ई कमेटियों और दीगर कमेटियों के मेंबर हो गए।

जब तक यह मन्सूबा जारी रहा एहसानुल्लाह लाहौर की इलाक़ई कौंसल, पंजाबी ज़बान की कमेटी, गोर्डन फ़ंड कमेटी, गाँव की कमेटी,

पासबानी और बिशारती कमेटी और सेंट्रल मिशन कौंसल के मेंबर रहे। इन कौंसिलों में मियाँ साहब अपने वसी तजरिबे से जमात के काम के लिए मुफ़ीद मश्वरे देते रहे। वह हमेशा खरी खरी और बेलाग बातें करते थे जिस का नतीजा यह था कि मिशन के बुज़ुर्ग ऐसी तज्वीज़ों को पेश करने की जुरअत ही नहीं करते थे जिन से देसी जमातों की फ़लाहो-बहबूदी में फ़र्क़ आए। क़िबला वायज़ लिखते हैं,

> बात असल में यह थी कि रास्ती के इज़्हार में एहसानुल्लाह जैसा साफ़ गो और निडर बोलने वाला हमारे मिशन में कोई नहीं था। उन्हें कभी यह ख़्याल नहीं आता था कि मेरी बातें सुनने वाले किस दर्जे या रुतबे के आदमी हैं। वह बग़ैर झिजक के अपना मतलब अदा कर देते थे।

उन की बातें कभी जली-कटी न होती थीं। शख़्सी हमलों से उन्हें सख़्त नफ़रत थी। यह कहना मुबालग़ा न होगा कि इन कमेटियों और कौंसिलों में कोई अहम तज्वीज़ या क़रारदाद मंज़ूर न होने पाती थी जिस के वह हक़ में न होते थे।

12 शेख़रहमत अली की तबदीली

ज़लज़ला और वबा

हम उस का ज़िक्र कर चुके हैं कि एहसानुल्लाह के छोटे भाई शेख़रहमत अली ने क़ुरआन और किताबे-मुक़द्दस का ग़ौर से गहरा मुतालआ करना शुरू कर दिया था। वह ज्यों-ज्यों मुतालआ करते गए उन्हें किताबे-मुक़द्दस की सदाक़त का यक़ीन होता गया। अब वह अपना ज़्यादा वक़्त किताबे-मुक़द्दस और खासकर इंजील जलील के पढ़ने में सर्फ़ करने लगे।

1905 का साल नारोवाल के लिए एक बड़ा मन्हूस साल था। उस साल पंजाब बल्कि तमाम शिमाली हिंद में मार्च में सख़्त ज़लज़ला आया जिस ने काँगड़ा के ज़िले से ले कर तमाम शिमाली हिंद में तबाही मचा दी। नारोवाल में कोई घर ऐसा न था जो गिरा न हो या जिस की दीवारें शिकस्ता न हुई हों। ज़लज़ले के झटके सुब्ह से शुरू हुए और मुसलसल तमाम दिन जारी रहे। लोग अपने घरों से भाग निकले। उन्हों ने वीरान मक़ामों में दरख़्तों के साय के नीचे पनाह ली। मुहल्लाए-ख़्वाजगान बर्बाद हो गया। हर शख़्स ख़ुदा से दुआ करने लगा।

शेख़रहमत अली अन्जुमने-शियाँ के प्रेज़ीडेंट थे। उन्हों ने तमाम मुहल्ले को ईदगाह में बुलाया। लोगों का बड़ा भारी मज्मा अकट्ठा हो गया। वहाँ शेख़साहब ने किताबे-मुक़द्दस में से यूनस नबी की किताब पढ़कर सुनाई और फिर एक दिल हिला देने वाला वाज़ किया। तमाम मज्मा के दिल ख़ुदा की जानिब रुजू हो गए। उन्हों ने निहायत फ़रोतनी के साथ दुआ की और तौबा की तरफ़ मायल हो कर ख़ुदा से अपने गुनाहों की मग़फ़िरत के तालिब हुए।

अभी ज़ाज़ो की हिरासानी ख़त्म न हुई थी कि ताऊन की वबा मुहल्लाए-ख़्वाजगान में फैल गई। हर गली कूचे के लोग मरने लगे। ईसाई आबादी से बाहर निकल गए। शेख़रहमत अली ने अन्जुमन के प्रेज़िडेंट की हैसियत से सब को यही करने की सलाह दी और फिर ईदगाह में तमाम शियों का मज्मा अकट्ठा किया। इस मौक़पर उन्हों ने तक़रीर की जिस में किताबे-मुक़द्दस से जा-ब-जा हवाले दे कर अंबिया के नसाइह और तौरात की किताब इस्तिस्ना के हवालजात पेढ़ उन्हों ने ख़ुदा से दुआ की कि वह सब पर रहम करे, सब के गुनाह माफ़माए और वबा को जो नारोवाल के लोगों की वाजिबी सज़के तौर पर भेजी गई है उन के दरमियान से दूर करे।

ख़ुदा ने अपना फ़ज़्ल किया। चंद दिनों के अंदर ताऊन की वबा ख़त्म हो गई। शेख़साहब की अहलिया मुह्तरमा भी इस नामुराद मर्ज़में गिरिफ़्तार हो कर उन दुआओं के सबब से सेहतयाब हो गईं। शेख़साहब लिखते हैं,

> मेरी बीवी सख़्त बीमार हो गई। ऐसा मालूम होता था कि वह कोई दम की मेहमान है। हम ने बरकत अली को बटाला के स्कूल में पढ़ने के लिए भेज दिया था, और वह उस की जुदाई में भी तड़प रही थी। मैं ने दुआ माँगी कि ऐ ख़ुदावंद, मैं तेरी मिन्नत करता हूँ कि तू अपने मसीह के नाम की ख़ातिर उस को शिफ़बख़्श। दुआ के बाद उसे क़रे आराम हो गया। उस की बेहोशी दूर हो गई। वह बातचीत करने लगी, और मैं ने ख़ुदा का शुक्र अदा किया। चंद दिनों के बाद उस की कमज़ोरी भी ख़त्म हो गई, और उस ने ख़ुदा से नई ज़िंगी पाई।

ईसाई होने का अलानिया इकरार

ज़ाज़ो के झटकों और ताऊन की वबा ने शेख़साहब और उन की रफ़िक़ाए-हयात के दिलों में इस दुनिया की नापाएदारी और दौलत की

कम-माएगी का एहसास बहुत तेज़कर दिया। नतीजे में शेख़रहमत अली ज़्यादा वक़्त किताबे-मुक़द्दस के मुतालए में सर्फ़करने लगे और दुकान में सिर्फ़हतना कारोबार करते जिस से उन के मुतालए में हर्ज वोक़ न होता। शेख़साहब लिखते हैं,

> किताबे-मुक़द्दस के मुतालए में मुझे अजब लज़्ज़ा आने लगी। मैं हर वक़्त इसी को पढ़ने लगा। एक रोज़मैं किताबे-मुक़द्दस का मुतालआ कर रहा था कि मेरी बीवी जो अनपढ़है मुझे कहने लगी, "आप मुझ से कभी बात नहीं करते। जब देखती हूँ, बस आप हैं या यह किताब है।"
>
> मैं ने जवाब दिया, "हाँ, बोलो। क्या बात है? तुम बेशक बात करो।"
>
> उस ने कहा, "बात क्या दीवारों से करूँ? यह किताब तो आप के मुँह के सामने है।" और फिर बेड़जोश में आ कर कहने लगी, "जी करता है कि इस किताब को जला कर ख़ाके-सियाह कर दूँ। यह किताब है या आप हैं?" यह कह कर मेरे हाथ से किताबे-मुक़द्दस छीनने लगी।
>
> मैं ने कहा, "इस किताब को इज़्ज़ा से हाथ लगाओ। यह ख़ुदा का कलाम है।"
>
> उस ने घबरा कर कहा, "क्या यह क़ुरान शरीफ़है?"
>
> मैं ने जवाब दिया, "नहीं, यह किताब क़ुरान नहीं है। यह किताबे-मुक़द्दस है जो ख़ुदा का सच्चा कलाम है।"
>
> उस ने पूछा, "तो क्या क़ुरान ख़ुदा का कलाम नहीं है?"
>
> मैं ने जवाब दिया, "मेरा ईमान तो यह है कि सिर्फ़यही किताब ख़ुदा का सच्चा और इल्हामी कलाम है।"
>
> उस ने कहा, "अगर आप का यही ईमान है तो मुझे भी इस में से सुनाया करें ताकि मुझे भी तो कुछ पता लगे।"
>
> मैं ने ख़ुदा का शुक्र किया और अपनी बीवी को ख़ुदावंद मसीह की ज़िंदगी और तालीम, उस की सलीबी मौत और फ़तहमंदाना तौर पर क़ब्र में से तीसरे रोज़जी उठने का हाल सुनाता रहा। मैं हर शाम उसे किताबे-

मुक़द्दस के बुज़ुर्गों की कहानियाँ और अंबिया के कारनामों का हाल पढ़ कर सुनाया करता था।

सुब्ह के वक़्त में अपने कारोबार को चला जाता और फ़ारिग़ का वक़्त क़ुरान और किताबे-मुक़द्दस के मुवाज़ने और मुक़ाबले में सर्फ़ करता था। जब मैं अपने आमाल की तरफ़ नज़र करता तो मेरे गुनाह मेरे सामने आ जाते। नमाज़ के वक़्त जब मैं काबा की जानिब रुख़ करता तो ग़ालिब का शेर मुझे याद आता,

> काबा किस मुँह से जाओगे ग़ालिब
> शर्म तुम को मगर नहीं आती?

लेकिन मैं अपने दिली ख़यालात दूसरों पर अलानिया ज़ाहिर नहीं करता था, क्योंकि मैं लोगों से डरता था। ज़ाहिर में इस्लामी रुसूम का पाबंद था, लेकिन बातिन में मेरा ईमान इंजील जलील पर क़ायम था। जब मेरे दिल में कश-म-कश होती तो मुझे ख़ुदावंद मसीह के क़ौल से तसल्ली हो जाती कि

> जो हमारे ख़िलाफ़ नहीं वह हमारे हक़ में है (मुक़ा 9:40)

मैं शिया था, और शिया मज़हब के उसूल के मुताबिक़ तक़िया [1] जायज़ है। कई बरस तक यह बातें मेरे दिल को ग़लत तसल्ली देती रहीं।

एक रात का ज़िक्र है में अपनी बीवी को इंजील मत्ती का दसवाँ बाब सुना रहा था। मैं इन आयात पर आया,

> उन से ख़ौफ़ मत खाना जो तुम्हारी रूह को नहीं बल्कि सिर्फ़ तुम्हारे जिस्म को क़त्ल कर सकते हैं। अल्लाह से डरो जो रूह और जिस्म दोनों को जहन्नुम में डाल कर हलाक कर सकता है। क्या चिड़ियों का जोड़ा कम पैसों में नहीं बिकता? ताहम उन में से एक भी तुम्हारे बाप

[1] ज़ुलम की वजह से अपना अक़ीदा छुपाने की इजाज़त

> की इजाज़त के बग़ैर ज़मीन पर नहीं गिर सकती। न सिर्फ़ यह बल्कि तुम्हारे सर के सब बाल भी गिने हुए हैं। लिहाज़ मत डरो। तुम्हारी क़द्रो-क़ीमत बहुत सी चिड़ियों से कहीं ज़्यादा है।
> जो भी लोगों के सामने मेरा इकरार करे उस का इकरार मैं भी अपने आसमानी बाप के सामने करूँगा। लेकिन जो भी लोगों के सामने मेरा इन्कार करे उस का मैं भी अपने आसमानी बाप के सामने इन्कार करूँगा।
> यह मत समझो कि मैं दुनिया में सुलह-सलामती क़ायम करने आया हूँ। मैं सुलह-सलामती नहीं बल्कि तलवार चलवाने आया हूँ। मैं बेटे को उस के बाप के ख़िलाफ़ खड़ा करने आया हूँ, बेटी को उस की माँ के ख़िलाफ़ और बहू को उस की सास के ख़िलाफ़। इनसान के दुश्मन उस के अपने घर वाले होंगे।
> जो अपने बाप या माँ को मुझ से ज़्यादा प्यार करे वह मेरे लायक़ नहीं। जो अपने बेटे या बेटी को मुझ से ज़्यादा प्यार करे वह मेरे लायक़ नहीं। जो अपनी सलीब उठा कर मेरे पीछे न हो ले वह मेरे लायक़ नहीं। जो भी अपनी जान को बचाए वह उसे खो देगा, लेकिन जो अपनी जान को मेरी ख़ातिर खो दे वह उसे पाएगा।
> (मत्ती 10:28-39)

मेरी बीवी ने इन का मतलब पूछा। मैं उसे इन आयात का मतलब समझा रहा था, लेकिन बातिन में मेरा दिल मुझे मलामत कर रहा था। तब उस ने मुझ से कहा, “अगर यह बात ठीक है तो हम सब को ईसाई हो जाना चाहिए।”

मैं ने जवाब दिया कि मैं नहीं चाहता कि अपनी औलाद पर जबर करूँ। सब बच्चों की मंगनी हो चुकी है। उन का ब्याह कर देंगे फिर देखा जाएगा।”

मेरी बीवी ने कहा, “औलाद से ज़्यादा प्यारी क्या चीज़ हो सकती है? यह किस तरह हो सकता है कि हम ख़ुद तो सच्चाई का पीछा करके बहिश्त में दाख़िल हों और अपनी औलाद को मुसलमान रहने दें और उन्हें बहिश्त से महरूम रखें? आप ख़ुदा को क्या जवाब देंगे?”

उस की यह बात सुन कर मैं तमाम रात जागता रहा। मुझे अपना मुस्तक़बिल तारीक नज़र आने लगा। मैं ने निहायत दिल-सोज़ी से ख़ुदा से दुआ माँगी कि वह मेरी हिदायत करे और मुझे इस तारीक रास्ते में अपना नूर दिखाए ताकि मैं जान सकूँ कि मुझे अब क्या क़दम उठाना चाहिए। मैं ने जवाब मिलने के लिए इंजील खोली तो मेरी नज़र इस आयत पर पड़ी,

> अपनी किसी भी फ़िक्र में उलझ कर परेशान न हो जाएँ बल्कि हर हालत में दुआ और इल्तिजा करके अपनी दरख़्वास्तें अल्लाह के सामने पेश करें। ध्यान रखें कि आप यह शुक्र-गुज़ारी की रूह में करें। (फ़िलिप्पियों 4:6)

यह पढ़कर मैं दुआ में मशग़ूल रहा।

1906 जब क्रिस्मस की छुट्टियाँ हुईं तो बरकत अली बटाला से आया। मैं ने दो चार दफ़ा बहुत कोशिश की कि उसे अपने दिली राज़ से आगाह करूँ, लेकिन मेरा हौसला न पड़ा था। क्योंकि वह मसीही ईमान का जानी दुश्मन था। अगरचे स्कूल में वह बचपन से हर साल किताबे-मुक़द्दस का इनाम हासिल किया करता था तो भी इंजील के मुनादों को बाज़ार में बहुत तंग किया करता था। बल्कि एक दफ़ा तो उस ने घर में इंजील भी जला दी थी।

इस दफ़ा जब वह घर आया तो वह बड़ी ख़ुशी से बताने लगा, “अगरचे मैं ने किताबे-मुक़द्दस का इनाम फिर हासिल किया है लेकिन अपने हेड-मास्टर को इंजील के क्लास में सख़्त तंग किया करता हूँ। सवालात की बौछाड़ से मैं उस का दम नाक में कर देता हूँ।”

यह बातें सुन कर मैं और मेरी बीवी एक दूसरे का मुँह देखने लगे, और मैं ने उसे कुछ न कहा। छुट्टियों के बाद वह वापस स्कूल में चला गया।

जब 1907 का शुरू हुआ तो मेरी बीवी ने फिर मुझ से तक़ाज़ा करके कहा, "जब आप का ईमान है कि मसीह ही नजात देता है तो हम क्यों अपनी औलाद समेत ईसाई न हो जाएँ?" चुनाँचे दुआ के बाद हम ने यही मुनासिब ख़याल किया कि हम सब ईसाई हो जाएँ और बरकत अली को ख़ुदा पर छोड़ दें। एक रोज़ मैं एक मिस साहबा को राह में मिला और उस से कहा कि आप हमारे घर आया करें और हमारे बच्चों को पढ़ाया करें। इस पर वह हमारे घर आ कर हमारी दोनों लड़कियों को पढ़ने लगी। जब बरादरी के लोगों ने देखा कि मिस साहबा हमारे घर में इंजील पढ़ती है तो तमाम मुहल्ले में खलबली मच गई और गप्पें शुरू हो गईं।

शेख़ रहमत अली साहब को नज़र आ रहा था कि मौरूसी अक़ाइद को छोड़ने का नतीजा क्या होगा। जहाँ तक दुनिया का ताल्लुक़ है ज़िंदगी एक बोझ हो जाएगी जिस को उठा कर काँटों के जंगल में चलना पड़ेगा। और काँटे भी बबूल के, जो तलवों में चुभ कर उन पाँओ को जो अब तक गोया मख़मल के फ़र्श पर चलते रहे थे, ज़ख़्मी करते रहेंगे। लेकिन तहक़ीक़ अक़ाइद पा लेने की ज़हनी राहत और गुनाहों से नजात पाने का आरामे-जान कोई मूल महंगा सौदा न था।

मौरूसी और रिवायती अक़ाइद की चार-दीवारी सिर्फ़ तक़लीद ही की बुनियादों पर मुस्तहकम तौर पर क़ायम होती है। जब यह बुनियादें हिल जाती हैं तो साथ ही तबीअत का सुकून भी हिल जाता है। इस को क़रार तब नसीब होता है जब यह तलब मतलूब को हासिल कर लेती है। लेकिन इस मनज़िल तक पहुँचने से पहले एक पुर-ख़तर राह तै करनी पड़ती है।

वह ऐसे ख़ानदान के चशमो-चराग़ थे जो इस दर्जा मुतअस्सिब और बेलचक था कि बाल बराबर भी इधर उधर होना कुफ़्र और ज़ुल्म तसव्वुर करता था। लेकिन उन्हों ने अब दिमाग़ी विरसे की सख़्ती और

जुमूद से आज़ादी पाई थी और उस मरहले पर आ पहुँचे थे जहाँ दरमियानी मनज़िलों में रुकना एक ना-मुमकिन अम्र था। अब दीनी असबियत उन के और ख़ुदा के दरमियान हाइल नहीं हो सकती थी। वह इस दुनियावी ज़िंदगी के आराम और दराज़ी-ए-उम्र के ख़्वाहिशमंद न थे। क्योंकि यह जिस्मानी ज़िंदगी आख़िर चंद-रोज़ा है और यह दुनिया फ़ानी है।

> आ जाए ऐसे जीने से अपना तो जी भी तंग
> आख़िर जिएगा कब तिलक ऐ ख़िज़्र?

वह रूहानी ज़िंदगी और ख़ुदा की क़ुर्बत के ख़्वाहिशमंद थे। आख़िर उन के मौरूसी अक़ायद और दीनी तालीम का हक़ीक़ी मतलब और मक़सद भी तो यही था। और उन की तबीअत का आख़िरी तक़ाज़ा ही यह था कि

> بہرِ یک گُل زحمتِ صد خار می باید کشید
> एक गुलाब की ख़ातिर सौ ख़ारों की ज़हमत उठानी पड़ती है।

उन की क़ौम के अफ़राद आपस में उन की बाबत चर्चा करने लगे। बाज़ कहते थे कि नहीं, वह अन्जुमने-शियाँ के प्रेज़िडेंट हैं। उन्हें तिजारत में कोई ख़सारा नहीं पड़ा। वह ईसाई क्यों होने लगे? बाज़ कहते थे कि वह अपने वाज़ों में और नसीहतों में क़ुरआन की बातें कम करते हैं लेकिन किताबे-मुक़द्दस के नबियों की किताब का हवाला ज़्यादा देते हैं। ग़रज़ जितने मुँह उतनी बातें। आख़िर हकीम मुहम्मद वारिस साहब जो उन के मुख़्लिस क़रीबी दोस्त और रिश्तेदार थे उन के पास आए ताकि कुल हालात का जायज़ा लें। शेख़ रहमतुल्लाह लिखते हैं,

> उन्हों ने मुझ से पूछा, “यह अफ़्वाह जो हर जगह उड़ रही है, इस की तह में क्या हक़ीक़त है?”
>
> मैं ने जवाब दिया, “अगर आप का मतलब है कि क्या मैं ईसाई होना चाहता हूँ तो यह बात दुरुस्त है कि मैं मसीह पर ईमान रखता हूँ।”

उन्हों ने कहा, “अच्छा मैं रात को आऊँगा और फिर फ़राग़त से गुफ़्तगू करेंगे और कोई हमारी बातों में ख़लल भी न डालेगा।”

वह रात को आए, और हम दोनों में क़ुरआनो-इंजील के मुख़्तलिफ़ पहलुओं पर गुफ़्तगू होती रही हत्ता कि आधी रात हो गई। तब उन्हों ने रुख़्सत माँगी और कहा, “इन्शा-अल्लाह मैं कल रात को फिर आऊँगा और हर बात पर मुफ़स्सल तौर पर अपने ख़्यालात का तबादला करेंगे।”

जब वह फिर रात को आए तो हम दोनों क़ुरआन और किताबे-मुक़द्दस ले कर बैठ गए। गुफ़्तगू के शुरू में मैं ने उन से कहा, “तबादलाए-ख़्यालात करने से पहले हम ख़ुदा से ख़ुलूसे-नीयत से दुआ करें कि ख़ुदा हम दोनों की राहनुमाई करे और सिवाए हक़ की तलाश के हमारे दिलों में कोई ख़्याल उस वक़्त जगह न पाए। तब ख़ुदा हम को ग़ौर करने की तौफ़ीक़ देगा और हम ख़ालीउज़्ज़ेहन हो कर मालूम कर सकेंगे कि सीधी राह कौन सी है।” हम ने दुआ के लिए दोनों हाथ ऊपर उठाए और दुआ की कि या इलाहे-अलमीन, तू हमारी आँखों को खोल। फिर हम निहायत सन्जीदगी से रात भर गुफ़्तगू करते रहे हत्ता कि मुर्ग़ ने बाँग दे दी।

मुर्ग़ की बाँग पर वह उठ खड़े हुए और कहने लगे, “मैं अब यह तस्लीम करता हूँ कि इंजील कलामे-इलाही है और आप रास्ती की तलाश करके इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि मसीही दीन रास्ती पर है। मेरा भी आप से बहुत बातों में इत्तफ़ाक़े-नज़र आता है। लेकिन मैं अभी यह कहने के लिए तैयार नहीं हूँ कि क़ुरआन ख़ुदा का कलाम नहीं है जब तक मैं भी आप की तरह ख़ूब अच्छी तरह से तजस्सुस न कर लूँ।” इतने में सुब्ह का सितारा नमूदार हो गया और वह घर चले गए। इस के बाद हम हर रोज़ शाम के वक़्त बाग़ की तरफ़ सैर को निकल जाने लगे और इस्लाम और ईसाई दीन के मुख़्तलिफ़ मसायल पर तबादलाए-ख़्यालात किया करते थे।

हकीम मुहम्मद वारिस साहब मुझे बताया करते थे,

एक दिन हम दोनों तक़रीबन 5 बजे बाद-अज़ दोपहर बाग़ की तरफ़ निकल गए और हसबे-दस्तूर इस्लाम और मसीही ईमान पर बातें करते

रहे। जब मैं ने देखा कि शेख़ साहब का इंजील पर ईमान पक्का है और वह किसी हालत में भी मसीही दीन से नहीं हटेंगे तो मैं ने उन्हें कहा कि भाई जी, आप का मौजूदा रवय्या दुरुस्त नहीं है। क़ुरान की रू से यह रवय्या मुनाफ़िक़ाना है, और इंजील की रू से आप इस को किसी सूरत में भी जायज़ क़रार नहीं दे सकते। आप अपनी दो टाँगें दो कश्तियों में जो मुख़्तलिफ़ सिम्तों को जा रही हों, रख कर दरिया पार नहीं कर सकते। अब वक़्त आ गया है कि आप या तो इस्लाम के फ़रमाँ-बरदार हो कर रहें या ईसाई दीन को अलानिया इख़्तियार करके मसीह का सब के सामने इकरार करें जैसा भाई एहसान ने किया था।

इस पर वह चंद लम्हों के लिए ख़ामोश हो गए। मैं उन की तरफ़ देख रहा था। अचानक वह थर्रा कर उठे और सख़्त काँपने लगे। अगरचे अभी गर्मी का मौसम न था लेकिन उन के रोएँ रोएँ से पसीना टपकने लगा। उन की हालत मुतग़य्यिर हो गई। उन के आँसू बहने लगे और निहायत बेक़रारी की हालत में उन्हों ने ढाएँ मार कर कहा, “हाय, मुझ से मसीह का इन्कार नहीं हो सकता। उस ने भी फ़रमाया है कि

> जो भी लोगों के सामने मेरा इकरार करे उस का इकरार मैं ख़ुद भी अपने आसमानी बाप के सामने करूँगा। लेकिन जो भी लोगों के सामने मेरा इन्कार करे उस का मैं भी अपने आसमानी बाप के सामने इन्कार करूँगा।
> (मत्ती 10:32-33)

और उस का रसूल भी कहता है,

> अगर तू अपने मुँह से इकरार करे कि ईसा ख़ुदावंद है और दिल से ईमान लाए कि अल्लाह ने उसे मुर्दों में से ज़िंदा कर दिया तो तुझे नजात मिलेगी। (रोमियों 10:9)

मैं ने उन्हें कहा, “बस, फिर तो मुआमला साफ़ है।”

उन्हों ने जवाब दिया, "अच्छा, अब से मैं सब के सामने अलानिया इकरार करूँगा कि मेरा ईमान मसीह पर है।"

मैं ने उन्हें हौसला दिला कर तसल्ली दी और कहा, "ख़ह तमाम दुनिया आप के ख़िलाफ़ हो जाए मैं कभी आप के और आप के ख़ानदान के ख़िलाफ़ नहीं हूँगा। मैं आप का हमेशा मुख़लिस दोस्त बन कर रहूँगा और इन्शा-अल्लाह आप का साथ दूँगा। यह मेरा वादा है।"

शेख़ रहमतुल्लाह लिखते हैं,

जब हम दोनों शहर की जानिब वापस आए तो उस ने मेरे रिश्तेदारों को ख़बर दी कि मैं अलानिया बपतिस्मा पा कर ईसाई होना चाहता हूँ। यह ख़बर आनन फ़ानन मुहल्ले के लोगों में फैल गई। अगले रोज़ मेरे तीन रिश्तेदारों ने मुझे पैग़ाम भेजा कि हम तीनों आज रात आप के पास आएँगे। जब शाम हुई तो मेरा दिल अंदर ही अंदर बैठा जा रहा था। बेक़रारी और बेचैनी ने मुझे चारों तरफ़ से घेर लिया। मेरी हालत तहो-बाला होने लगी। तब मैं उठा और घर की छत पर जा कर ख़ुदा के हुज़ूर गिड़गिड़ा कर दुआ माँगने लगा कि "ए बेचारगान के वाली। इस वक़्त तू मेरा चारा कर। मुझे ताक़त और क़ुव्वत दे। ऐ मसीह, तू ने कहा है कि

> तुम्हारा दिल न घबराए। तुम अल्लाह पर ईमान रखते हो, मुझ पर भी ईमान रखो। (यूहन्ना 14:1)

अब मैं तुझ पर ही ईमान ले आया हूँ। तू मुझे अपना इत्मीनान बख़्श। मैं लाचार हूँ। तू मेरी मदद कर। तू मेरी ज़बान को ले और इस के ज़रीए आज रात तू ही इन लोगों से कलाम कर।"

मैं देर तक औंधा पड़ा रहा। दुआ के बाद मेरे दिल में अजीब इत्मीनान पैदा हो गया। जब मैं नीचे उतरा तो मेरे रिश्तेदार आ गए थे। मैं ने क़ुरआन और किताबे-मुक़द्दस को अपने पास रख लिया। चराग़ दान पर दिया रखा और हुक़्क़ा उन के सामने पेश किया। छुटते ही एक ने यह सवाल किया,

"अगर तौरात और इंजील सब यकसाँ तौर पर ख़ुदा का कलाम हैं तो जो चीज़ें तौरात में हराम हैं वह ईसाई दीन में क्यों जायज़ क़रार दी गई हैं।"

मैं ने क़ुरआन लिया और तीसरे पारा में सूरा इमरान की 49 आयत निकाल कर उन के रू-ब-रू रख दी जिस में मसीह का कौल लिखा है,

> وَمُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيَّ مِنَ التَّوْرَاةِ وَلِأُحِلَّ لَكُم بَعْضَ الَّذِي حُرِّمَ عَلَيْكُمْ ۚ وَجِئْتُكُم بِآيَةٍ مِّن رَّبِّكُمْ فَاتَّقُوا اللَّهَ وَأَطِيعُونِ-
>
> और मुझ से पहले जो तौरात (नाज़िल हुई) थी उस की तस्दीक़ भी करता हूँ और (मैं) इस लिए भी (आया हूँ) कि बाज़ चीज़ें जो तुम पर हराम थीं उन को तुमहारे लिए हलाल कर दूँ और मैं तो तुमहारे परवर्दगार की तरफ़ से निशानी ले कर आया हूँ तो ख़ुदा से डरो और मेरा कहा मानो।

इस आयत पर चंद मिनटों के लिए बह्स होती रही। फिर मैं ने कहा, "भाइयो, यह ज़ुज़्वी बातें छोड़ें और किताबे-मुक़द्दस की असल बुनियादी बातों पर गुफ़्तगू करो।"

उन्हों ने कहा, "जब किताबे-मुक़द्दस मुहर्रफ़ है और क़ाबिले-एतबार ही नहीं रही तो हम उस की सनद किस तरह क़बूल कर सकते हैं?"

मैं ने क़ुरआन में से वह तमाम आयात निकाल कर उन के सामने रख दीं जिन में क़ुरआन बार बार कहता है कि वह किताबे-मुक़द्दस की तस्दीक़ करता है और उसे इमाम, नूर और हिदायत क़रार दे कर कहता है कि हर मोमिन के लिए लाज़िम है कि इस पर ईमान रखे।

उन्हों ने कहा, "यह बातें असल तौरात और इंजील की निस्बत लिखी हैं जो तहरीफ़ होने से पहले अहले-किताब के हाथों में थीं।"

मैं ने जवाब दिया, "हज़रत ईसा मसीह के सवा छः सौ साल से ज़्यादा अर्से के बाद यह बातें क़ुरआन में लिखी गईं, और इस के सवा छः सौ साल के

अर्से में तौरातो-इंजील हज़ारों दफ़ा हर सदी और हर मुल्क में नक़्ल होती रही। इन क़दीम सदियों के नुस्ख़े अब तक मौजूद हैं जो मौजूदा किताबे-मुक़द्दस के मुताबिक़ हैं। इस के इलावा किताबे-मुक़द्दस के सहायफ़ का तर्जुमा बहुत से मुल्कों की ज़बानों में इन सवा छः सौ साल में हुआ था। उन क़दीम तर्जुमों के नुस्ख़े भी मौजूद हैं जो मौजूदा किताबे-मुक़द्दस के मुताबिक़ हैं और साबित करते हैं कि इस किताबे-मुक़द्दस में जो आप के सामने पड़ी है किसी क़िस्म की तहरीफ़ वग़ैरा नहीं हुई।"

उन्हों ने पूछा कि आप को इन नुस्ख़ों का इल्म कैसे हो गया?

तब मैं ने उन्हें फ़ुटनोट की किताब मीज़ान उल-हक़ दिखाई जो भाई एहसानुल्लाह ने बहुत साल हुए मुझे मुताले के लिए दी थी। बह्स सारी रात जारी रही हत्ता कि मुर्ग़े ने बाँग दे दी। इस पर वह अपने घरों को रुख़्सत हो गए। लेकिन यह कहते गए कि अगर आप अपने इरादे से बाज़ न आए तो आप का भाई एहसान से भी ज़्यादा बुरा हाल होगा। क्योंकि वह तो ग़ैर-शादीशुदा थे, और आप बीवी बच्चों वाले हैं। आप न सिर्फ़ अपने रिश्तेदारों को खो बैठेंगे और बरादरी से ख़ारिज किए जाएँगे बल्कि आप और आप के बच्चे भूकों मरेंगे। आप से कोई शख़्स सौदा नहीं लेगा और न किसी क़िस्म का वास्ता रखेगा। क्या आप को फ़ार्सी का मिस्रा याद नहीं कि

> روز و شب عربدہ با خلقِ خدا نتواں کرد۔
> तू दिन रात ख़ुदा के लोगों से लड़ नहीं सकता

मैं ने जवाब दिया,

> عشق از ایں بسیار کردست و کند
> इश्क़ ने इस से ज़्यादा किया है और करता है

उन्हों ने कहा, याद रखो कि

> مردِ آخربین مبارک بندہ ایست
>
> अन्जाम पर नज़र रखने वाला मुबारक है

मैं ने कहा, "तब ही तो मुझे आख़िरत का ख़याल दामनगीर है। और मैं दुनिया को तर्क कर रहा हूँ।"

उन्हों ने कहा, "आख़िर इस का अन्जाम क्या होगा?"

मैं ने जवाब दिया,

> کس ندانست کہ منزل گہ مقصود کجاست
>
> ایں قدر ہست کہ بانگِ جرسے مے آید
>
> कौन नहीं जानता कि मनज़िले-मक़्सूद कहाँ है?
>
> यों है कि घंटे की आवाज़ आती है।

वह कहने लगे, "आप अभी माशा-अल्लाह जवान हैं। सारी उम्र आप के सामने पड़ी है। क्या इस को रोते ही गुज़ारोगे।

मैं ने मुस्करा कर जवाब दिया,

> हस्ती से अदम तक नफ़्से-चंद की है राह
>
> दुनिया से गुज़रना, सफ़र ऐसा है कहाँ का?

बपतिस्मा और यगानों का दबाव

शेख़ रहमत अली साहब ने अप्रैल 1907 के शुरू में अपने भाई एहसानुल्लाह को ख़त लिख कर तमाम हालात की इत्तिला दे कर लिखा,

> इख़्वान साहब दामा लुत्फ़हु। अस्सलामु अलैकुम। ख़ुदावंद की हम्दो-सताइश अबदुल-आबाद होती रहे। मैं उस क़ुद्दूस क़दिरे-मुतलक़ ख़ुदा का तहे-दिल से शुक्र करता हूँ जिस ने अपनी बड़ी रहमत से क़ुदरत वाले बाज़ू के साथ मुझ गुनाहगार को बड़े अजीब तरह से रोशनी बख़्श कर

> अपने कलाम से अपने प्यारे बेटे के क़दमों में बुलाया है जो जहान का नजात-दहिंदा है और उन सब को ज़िंदगी बख़्शता है जो उस पर ईमान लाते हैं। उस ने उस ईमान के वसीले से जो मैं लाया हूँ ख़ुदाए-क़ुद्दूस से मुझ गुनाहगार का मेल करा दिया है।

फिर शेख़ साहब ने ईमान लाने की तफ़्सीलात बयान करके अपने भाई को बताया कि अब वह किस तरह मसीह का अलानिया इकरार करके सब लोगों को मुनज्जीए-जहान के पास आने की दावत देते हैं अगरचे क़ौम के लोगों ने उन्हें धमकियाँ दी हैं। ख़त के आख़िर में उन्हों ने दुआ करने की दरख़ास्त करके बपतिस्मा पाने की ख़्वाहिश की।

यह ख़त पाते ही एहसानुल्लाह ख़ुदा का शुक्र बजा लाए। वह नारोवाल की जानिब चल पड़े। वहाँ पहुँच कर वह सीधे अपने आबाई मकान को गए और भाई से बग़लगीर हुए। उन्हें देख कर शेख़ रहमत अली साहब के दिल को तसल्ली हुई। बड़े भाई की मौजूदगी ने उन्हें हौसला दिया। मियाँ साहब उन के पास छः हफ़्ते रहे और उन के ईमान को तक़वियत देते रहे। उन्हों ने क़ौम के बुज़ुर्गों और रिश्तेदारों से मिल कर उन्हें बहुतेरा समझाया, लेकिन वह एक न माने। हर तरफ़ से धमकियों की और लान-तान की आवाज़ें आ रही थीं। उन के भाई ने धमकियों के जवाब में कहा,

> ओखली में सर दिया तो धमकियों से क्या डर?

1907 में ईदे-पेन्तिकुस्त के रोज़ शेख़ रहमत अली ने अपनी बीवी, दो बेटों और दो बेटियों समेत अपने भाई एहसानुल्लाह के हाथों से बपतिस्मा पाया। उन का मसीही नाम रहमतुल्लाह रखा गया। बपतिस्मे का पाना था कि चारों तरफ़ से मुसीबतों का पहाड़ उन पर टूट पड़ा। अपने यगाने सब बेगाने हो गए। बरादरी ने उन्हें ख़ारिज कर दिया। बाज़ार के दुकानदारों ने सौदा देने से इन्कार कर दिया। चारों तरफ़ से लानतो-फटकार के आवाज़े कसे जाने लगे। जो लोग पहले अपनी अन्जुमन के प्रेज़िडेंट से हमकलाम

होना बाइसे-शरफ़ ख़याल करते थे अब वही अलानिया गलियों में उन के मुँह पर सलवातें सुनाने लगे। शहर के लौंडे उन के घर के सामने क़तार बांध कर उन्हें गंदी गालियाँ देते। मुहल्ले की औरतें वावेला करतीं। जब वह या उन की अहलिया गली में से गुज़रते तो अपने मकानों से उन के सरों पर राख और कूड़ा-करकट फैंक देतीं। मुसलमान धोबी ने कपड़े धोने से इन्कार कर दिया। सक़्क़े ने पानी भरना बंद कर दिया, और वह रोटी पकाने को मुह्ताज हो गए। दो दिन घर में जो अचार, मुरब्बा वग़ैरा पड़ा था, वही खाते रहे। आख़िर पड़ोस की एक औरत रात के वक़्त पानी के एक दो घड़े लाने पर रज़ामंद हो गई।

ज़िंदगी में पहली दफ़ा हिंदुओं की दुकानों से सौदा आया। ग़रज़ मुसलमानों ने हर मुम्किन तरीक़े से अपने साबिक़ सदरे-अन्जुमन का क़ाफ़िया तंग करने की कोशिश की ताकि उन पर अर्साए-हयात तंग हो जाए। लेकिन ख़ुदा ने हर बात में अपने बंदे की मदद की। शेख़ रहमतुल्लाह अपनी बरादरी के लोगों को समझाते थे कि नाजायज़ दबाव उन्हें किसी तरह ख़ुदावंद की राह से मुन्हरिफ़ नहीं कर सकेगा। पौलुस रसूल के अलफ़ाज़ उन्हें सुनाते थे कि

> कौन हमें मसीह की मुहब्बत से जुदा करेगा? क्या कोई मुसीबत, तंगी, ईज़ारसानी, काल, नंगापन, ख़तरा या तलवार? ...मसीह हमारे साथ है और हम से मुहब्बत रखता है। उस के वसीले से हम इन सब खतरों के रू-ब-रू ज़बरदस्त फ़तह पाते हैं। क्योंकि मुझे यक़ीन है कि हमें उस की मुहब्बत से कोई चीज़ जुदा नहीं कर सकती : न मौत और न ज़िंदगी, न फ़रिश्ते और न हुक्मरान, न हाल और न मुस्तक़बिल, न ताक़तें, न नशेब और न फ़राज़ न कोई और मख़लूक़ हमें अल्लाह की उस मुहब्बत से जुदा कर सकेगी जो हमें हमारे ख़ुदावंद मसीह ईसा में हासिल है। (रोमियों 8:35,37-39)

मियाँ साहब एक हफ़्ते के क़ियाम के बाद अपने भाई की लड़कियों बीबी अल्लाह दित्ती और बरकत बीबी जिन की उम्र अठारह साल और ग्यारह साल थी, अपने साथ ले गए ताकि उन्हें पठानकोट मिस कैंबेल के स्कूल में दाख़िला कर दें। शेख़साहब के दो बेटे इनायतुल्लाह और नेमतुल्लाह जो आठ साल और चार साल के थे नारोवाल के स्कूल में पहले ही दाख़िल थे।

बेटे बरकतुल्लाह की ईमान तक राह

शेख़रहमतुल्लाह के बपतिस्मा पाने के तक़रीबन तीन हफ़्ते बाद मैं जो उन का बड़ा बेटा था गर्मियों की छुट्टियाँ काटने के लिए घर आया। मुझे वालिदैन के मसीह होने की ख़बर न दी गई थी। मुहल्ले के लोग आपस में सरगोशियाँ करके वालिद साहब के ख़िलाफ़साज़िशें खड़ी कर रहे थे। उन्हों ने चचा मुहसिन अली को बुलाया और उसे उकसाया कि जायदाद के लिए मुक़द्दमा करे। चचा मुहसिन अली निहायत कट्टर और मुतअस्सिब शिया थे। लेकिन वालिद साहब ने उन्हें बचपन से पाला था, स्कूल के अख़राजात बरदाश्त किए थे, शादी कर दी थी, उन के बच्चों को पाला पोसा था, पहली बीवी के मरने के बाद दूसरी शादी कर दी थी और दूसरी बीवी के पहले बच्चों को भी पाल रहे थे। मुहसिन अली एहसान-फ़रामोश न हुए। उन्हों ने मुक़द्दमा तो न किया, लेकिन जायदाद की तक़्सीम पर ज़िद करके वालिद साहब को कहने लगे, “जिस तरह बरकत अली आप का बेटा है मैं भी आप का बेटा हूँ।” वह निस्फ़जायदाद पर इसरार करने लगे।

जवाब में वालिद साहब ने तमाम मन्क़ूला अश्या, चाँदी-सोने के ज़ेवरात, घर का सामान, हत्ता कि आटा-दाल तक का आधा हिस्सा उन्हें दे दिया। अब शेख़साहब पौलुस रसूल के अलफ़ाज़का मतलब समझे,

> उस वक़्त यह सब कुछ मेरे नज़दीक नफ़ा का बाइस था, लेकिन अब मैं इसे मसीह में होने के बाइस नुक़्सान ही समझता हूँ। हाँ, बल्कि मैं सब कुछ इस अज़ीमतरीन बात के सबब से नुक़्सान समझता हूँ कि मैं अपने ख़ावंद मसीह ईसा को जानता हूँ। उसी की ख़ातिर मुझे तमाम चीज़ों का नुक़्सान पहुँचा है। मैं उन्हें कूड़ा ही समझता हूँ ताकि मसीह को हासिल करूँ और उस में पाया जाऊँ। ...मेरा ख़ुदा अपनी उस जलाली दौलत के मुताबिक़ जो मसीह ईसा में है आप की तमाम ज़रूरियात पूरी करे। (फ़िलिप्पियों 3:7-9; 4:19)

> वह करे कि आप के दिलों की आँखें रौशन हो जाएँ। क्योंकि फिर ही आप जान लेंगे कि यह कैसी उम्मीद है जिस के लिए उस ने आप को बुलाया है, कि यह जलाली मीरास कैसी दौलत है जो मुक़द्दसीन को हासिल है, और कि हम ईमान रखने वालों पर उस की क़ुदरत का इज़हार कितना ज़बरदस्त है। (इफ़िसियों 1:18-19)

इन आयात ने वालिद साहब को बहुत दिलासा दिया। मुहल्ले के लोगों ने दूसरी चाल यह चली कि चचा को कहने लगे, “अब रहमत अली ईसाई हो गया है, इस लिए उसे विरासत का हक़ हासिल नहीं। जिस मकान में वह रहता है आबाई है; उसे निकाल बाहर करो, फिर देखेंगे कि उसे कौन रिहाइशी मकान देगा।”

जवाब में वालिद साहब ने उसे इस एक मकान के इवज़ पाँच मकान दे दिए और तीन दुकानों में से दो दुकानें उसे दे दीं ताकि उन किरायों से उस के और उस की बीवी के बच्चों की परवरिश हो जाए। चचा मुहसिन अली ने एक ख़त में अपने बड़ेभाई एहसानुल्लाह को लिखा,

> अगरचे बरादरी ने मुझे उकसाया कि घर तुम लो, मगर हया मुझे रोकती रही कि मैं इख़्वान साहब को कहूँ कि इस घर से निकल जाओ। मैं ने लोगों के कहने की कुछ पर्वा न की, क्योंकि सब उन के दुश्मन हो गए थे ...
>
> आप जायदाद की तक़्सीम पर हैरान होते हैं, लेकिन ज़रा ग़ौर करें। क़ुदरत ने दोनों बड़ेभाइयों से मुझे लियाक़तों में कम हिस्सा दिया है। आप को तो इल्मी लियाक़त है जिस के बाइस आप ने सरफ़राज़ी हासिल कर ली है। रहमत अली को क़ुदरत ने तिजारत की लियाक़त दी है जिस की वजह से वह नारोवाल में सब से बड़ेताजिर गिने जाते हैं। मगर मुझे कोई लियाक़त हासिल नहीं है।

जब मुहल्ले वालों ने देखा कि यह चाल भी कारगर न हुई तो तीसरी चाल वह यह चले कि चचा मुहसिन अली को कहा, “बाप और बेटे में जुदाई डाल दो और बरकत अली को अपने पास रख लो।” क्योंकि वह सब जानते थे कि मुझे चचा से बहुत मुहब्बत है।

जब मैं आया तो वह मुझे कहने लगे, “भाई जी तो काफ़िर हो गए हैं। किसी मोमिन को रवा नहीं कि वह काफ़िर के साथ रहे। अब तुम मेरे साथ रहो, क्योंकि उन के साथ खाना खाना भी हराम है।”

मैं ने जवाब दिया, “मैं यह हरगिज़ न करूँगा। वह काफ़िर नहीं बल्कि अहले-किताब हैं। उन के साथ रहना और खाना खाना जायज़ है। मैं ईसाई नहीं हूँगा, लेकिन मैं उन का साथ ऐसे आड़वक़्त में कभी न छोड़ूँगा जब सब लोग और आप भी उन के मुख़ालिफ़ हो गए हैं।”

मेरे चचा दीन के मुआमले में हमेशा मेरे हादी रहे थे। उन्हों ने मुझे एक किताब दी और कहा, “इस का ग़ौर से मुतालआ करना। यह तुम पर किताबे-मुक़द्दस की ख़ामियाँ ज़ाहिर कर देगी। मज़्हबी उमूर में भाई जी की बातें न सुनना।”

इस रिसाले का नाम ज़ुब्दतुल-अक़ाएद था जिस में किताबे-मुक़द्दस के मुतज़ाद मक़ामात को जमा कर दिया गया था और जर्मन नक़्क़ादों की कुतुब से किताबे-मुक़द्दस के मतन के इख़्तिलाफ़ाते-क़िराअत इकट्ठे

किए गए थे। इन से मुसन्निफ़ ने यह साबित करने की कोशिश की थी कि किताबे-मुक़द्दस ख़ुदा का असली कलाम नहीं बल्कि मुहर्रफ़ है। आख़िरी हिस्से में इंजील और क़ुरान का मुवाज़ना करके पेश कर दिया गया था कि क़ुरान की तालीम दीनो-दुनिया के उमूर पर हावी है जबकि इंजील की तालीम नाक़िस है। क्योंकि उस में नाक़ाबिले-अमल अह्काम हैं।

जब मुख़ालिफ़ीन ने देखा कि यह चाल कारगर नहीं हुई तो वह एक और चाल चले। अगले रोज़ उन्हों ने क़ौम के चंद सरबराहों को मेरे होने वाले सुसर शेख़ ग़ुलाम सादिक़ की दुकान पर इकट्ठा करके मुझे बुला भेजा। शेख़ ग़ुलाम सादिक़ कहने लगा, “देख तू मेरा बेटा है। मैं तेरे तमाम अख़राजात का हामिल हूँगा और तुझे एम.ए. तक तालीम दिलवाऊँगा। तू मेरे पास चला आ। तेरा बाप तो लालच के मारे ईसाई हो गया है।”

सब लोगों ने मुझे समझाना शुरू किया। मैं ने जवाब दिया, “आप ख़ुद जानते हैं कि तमाम क़ौम में वालिद साहब जैसा नेक और पारसा शख़्स नहीं है। आप उन पर लालच की तोहमत लगाते हैं, जो सालों से आप का सदरे-अन्जुमन रहा है और रास्त-गोई, दियानतदारी, मिज़ाज की सन्जीदगी और ग़रबा-परवरी में अपना सानी नहीं रखता। अगर उन्हें लालच होता तो क्या वह अपनी जायदाद की ऐसी तक़्सीम करते? आप ही ख़ुदा-लगती बात करें। आप मेरे ताया जी की निस्बत भी कहा करते थे कि वह लालच के मारे ईसाई हो गए हैं। लेकिन आप के सामने उन्हों ने दुनिया पर लात मारी और फ़क़ीर हो गए। क्या हिर्स इसी को कहते हैं? हाँ, आप लोग मुझे लालच दे रहे हैं ताकि मैं उन से जुदा हो जाऊँ। मगर मैं आप सब को छोड़दूँगा। लेकिन उन्हें हरगिज़ नहीं छोड़ूँगा और इस्लाम को भी तर्क नहीं करूँगा जब तक मसीही ईमान की सदाक़त मुझ पर ज़ाहिर न हो जाए।”

जब मैं घर आया तो मैं ने वालिद साहब से उन बातों का ज़िक्र किया जो चचा मुहसिन अली ने और ग़ुलाम सादिक़ ने मुझे कही थी। उन्हों ने

जवाब दिया कि यह बेहतर होगा कि तुम क़ुरआनो-इंजील का मुक़ाबला करके ख़ुद देखो। क्योंकि इंजील में लिखा है,

> सब कुछ परख कर वह थामे रखें जो अच्छा है।
> (1 थिसलुनीकियों 5:21)

उन के इंतज़ाम के मुताबिक़ मैं जून की कड़कती धूप में वहाँ के अंग्रेज़ ख़ादिम के पास गया। उन्हों ने कहा, “हम मत्ती की इंजील पढ़नी शुरू करेंगे।”

मैं ने जवाब दिया, “मैं अनाजील के मज़ामीन से ख़ूब वाक़िफ़ हूँ और इस के बहुत से मक़ामात मुझे हिफ़्ज़ हैं। आप मेरे एतराज़ात रफ़ा करें।” यह कह कर मैं ने ज़ुब्दतुल-अक़ाएद को खोल कर बहुत से एतराज़ात पेश कर दिए।

उन को न क़ुरआन से वाक़फ़ियत थी और न इस्लाम के उसूलों का इल्म था। न वह मुतनाज़िआ मक़ामात के जवाब दे सके। सब से बड़ी दलील उन्हों ने यह दी कि मसीही मज़हब हक़ है, क्योंकि सल्तनते-बर्तानिया पर सूरज ग़ुरूब नहीं होता और यह सल्तनत मसीही है। वह बेचारे निरे अंग्रेज़ थे जो हुकूमत के नशे में सरशार थे। ग़ुरूर उन की रफ़्तार से टपकती थी। बाद के ज़माने में जब दो आलमगीर लड़ाइयाँ हुईं तो उन्हों ने इंजील की ख़िदमत छोड़कर बर्तानवी फ़ौज के लिए हिंदुस्तानी सिपाहियों की भर्ती का काम इख़्तियार कर लिया। जब पहली जंग ख़त्म हुई तो वह फिर मिशनरी हो गए जबकि दूसरी जंग के शुरू में वह दुबारा “भर्ती करने वाले साहब” हो गए। जंग के बाद वह फिर मिशनरी हो गए। ऐसी तबीअत रखने वाले इनसान से क्या उम्मीद हो सकती थी कि दर्जे-बाला दलील के सिवा मसीही दीन के हक़ में वह कुछ कह सकते?

एक हफ़्ते के बाद मैं ने उन से कहा, “मैं कल से नहीं आऊँगा, क्योंकि धूप में ढाई मील आता जाता हूँ। आप ने कभी पानी तक न पिलाया, और न आप मेरे किसी एतराज़ का जवाब देने के अहल साबित हुए हैं।”

मैं ने यही बात वालिद साहब से कही। उन्हों ने मुझे मीज़ानुल-हक़, अस्मारे-शीरीं, तारीखे-मुहम्मदी, मनारुल-हक़नियाज़ामा, यनाबीउल-इस्लाम, ज़र्बते-ईसवी, एतराज़ातुल-मुस्लिमीन, सलासतुल-कुतुब, हल्लुल-अश्काल, तालीमे-मुहम्मदी, उम्महातुल-मोमिनीन, तक़्वियतुल-ईमान, तेग़े-सिपरे-ईसवी, रुबूत बनाम जवानाने-हिंद, आइनाए-क़ुरान वग़ैरा किताबें दीं और कहा, "यह किताबें तुम्हारी मुशकिलात को हल कर सकेंगी।"

मैं इन किताबों का ग़ौर से दिन रात मुतालआ करता रहा। मेरे चचा अपने काम पर वापस चले गए थे। उन की ग़ैर-हाज़िरी में मौलवी हश्मत अली आए हुए थे। मैं उन के पास गया, लेकिन वह बेचारे मसीही दीन के उलूम से कोरे थे और इन मुख़्तलिफ़ किताबों के एतराज़ात का जवाब न दे सके। क्योंकि वह सिर्फ़ शिया मज़हब से सतही तौर पर ही वाक़िफ़ थे, और इन किताबों में शिया और अहले-सुन्नत की मुस्तनद किताबों के हवाले थे। मैं ने हकीम मुहम्मद वारिस और क़ैम के सरबराहों से इन किताबों के एतराज़ों का ज़िक्र किया, लेकिन सब बेसूद साबित हुआ। लाचार मैं इन किताबों के मज़ामीन की रोशनी में अपने एतराज़ात और ज़ुब्दतुल-अक़्वील के एतराज़ात पर ग़ौर करने लगा।

ज्यों-ज्यों मैं मुतालआ करता गया मुझ पर यह ज़ाहिर होता गया कि इंजील मुहर्रफ़ नहीं है और कि अज़रूए-क़ुरान हज़रत मुहम्मद क़ियामत के रोज़ गुनाहगारों के शफ़ीअ नहीं हो सकते। क़ुरान के मुताबिक़ वह सिर्फ़ अरब के रसूल हो कर दीगर अंबिया की तरह भेजे गए थे और जहान के नजात-दहिंदा नहीं हो सकते। इंजील की तालीम रूहानी है। क़ुरान एक अख़्लाक़ी किताब है जो किसी शख़्स को हिदायत तो दे सकती है लेकिन गुनाहों के पंजे से नहीं छुड़ा सकती। आख़िर मैं ने वालिद साहब से कहा, "मैं भी मसीह का पैरोकार होने को तैयार हूँ।"

वह बहुत ख़ुश हुए और कहा, "ख़ुदा का शुक्र हो जिस ने हम सब पर रहम किया है और सब को नूरे-ईमान अता किया है।"

मेरा बपतिस्मा ईदे-तसलीस के छटे इतवार के रोज़ 1907 को हुआ। मेरा ईसाई नाम बरकतुल्लाह रखा गया। जब मैं बपतिस्मा पा कर इबादतगाह से बाहर निकला तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मैं गोया हवा में चल-कूद रहा हूँ। क्योंकि गुनाहों के बोझ का एहसास जो मुझे सताता रहता था जाता रहा, और उस की जगह ख़ुशी, चैन और इत्मीनान ने मेरे दिल में जगह ले ली। इस अजीब तजरिबे को मैं ता-दमे-मर्ग भूल नहीं सकता। बपतिस्मा पाने के तीन रोज़ बाद मैं वापस बटाला चला गया।

मुख़ालिफ़ीन का आख़िरी हर्बा ज़्यादा कामयाब रहा। हमारे मसीही होने के चंद माह बाद सियालकोट के हाकिमे-ज़िला ने अंग्रेज़ पादरी को म्युन्सिपल कमेटी का प्रेज़िडेंट बना दिया था। क़ौम का एक फ़र्द सेक्रेटरी था। उस ने पादरी को "हुज़ूर, ख़ुदावंद, आक़ा, मालिक" कह कह कर अपने हाथों पर चढ़ा लिया और वालिद साहब पर म्युन्सिपल ऐक्ट के मा-तहत दो तीन मुक़द्दमे करके कहा कि अगर आप ने रहमतुल्लाह की हिमायत की तो आप मुन्सिफ़मिज़ाज न होंगे। अंग्रेज़ क़ौम इन्साफ़ के लिए मशहूर है। पादरी उर्दू जानता न था और न बहुत पढ़ा लिखा आदमी था। उस ने काग़ज़ात पर दस्तख़त कर दिए और मुक़द्दमात दायर हो गए जिस से वालिद साहब को बड़ी परेशानी उठानी पड़ी। यों उन्हें मुसलमानों से बढ़कर एक ईसाई ख़ादिमुद-दीन के हाथों ज़्यादा ईज़ा पहुँची।

> من از بیگانگاں ہرگز نہ نالم
> کہ با من ہر چہ کرد آں آشنا کرد
>
> मैं बेगानों के बारे में हरगिज़ शिकायत नहीं कर रहा
> क्योंकि जो कुछ मेरे ख़िलाफ़ किया जा रहा है वह मेरा
> वाक़िफ़कार कर रहा है।

रहमतुल्लाह की गवाही

जब बिशप लीफ़्राए उस साल नारोवाल आए तो वह वालिद साहब की दुकान पर उन्हें मिलने गए। वहाँ देखा कि एक हुजूम लगा हुआ है, और वह मुसलमानों से मुबाहसा कर रहे हैं। बिशप लीफ़्राए ख़ुद बेड़ज़ारदस्त मुनाज़िरे थे। चुनाँचे वह भी दुकान में फ़र्श पर बैठ गए और मुनाज़रे में हिस्सा लेते रहे। बिशप साहब ने 24 नवंबर के रोज़ उन्हें मुस्तह्कम किया और लिखा, “मुझे आज बड़ी ख़ुशी हुई है कि मैं ने अपने पुराने रफ़ीक़ और मुअज़्ज़ज़ दोस्त एहसानुल्लाह के भाई रहमतुल्लाह और उन की अहलिया को मुस्तह्कम किया है। मैं ने उन से गुज़श्ता इतवार की सुब्ह बड़ी देर तक गुफ़्तगू की जिस से मुझे बड़ी ख़ुशी हासिल हुई और मेरा हौसला भी बुलंद हो गया। उन का ईमान बेरिया, सच्चा और ख़लिस है, और वह बहुत सरगर्म हैं। मुझे पुख़्ता यक़ीन है कि उन का बपतिस्मा फल लाएगा और उन का नमूना उन की क़ौम में से बहुतों को ख़ुदावंद के क़दमों में लाएगा। क्योंकि इस क़ौम में से पिछले दिनों में बहुत से दीनदार मर्द और औरतें जमात में शामिल हुई हैं।”

जब बिशप साहब लाहौर वापस गए तो उन्हों ने 30 नवंबर के रोज़ एक क़ौमी ख़ादिम एहसानुल्लाह को लिखा,

> बरादरे-अज़ीज़, मैं नारोवाल में आप के भाई और भाभी से मुलाक़ात करके निहायत ख़ुश हुआ। मैं उन से देर तक बातें करता रहा। वह मुझे बेहद अच्छे लगे। मुझे कामिल यक़ीन है कि ख़ुदा उन्हीं इस्तेमाल करेगा ताकि उन के ज़रीए बहुत लोगों पर ख़ुदावंद ईसा के हक़ का नूर चमके। मैं उन के लिए अक्सर दुआ करता हूँ। ख़ुदा उन पर कसरत से अपनी बरकत नाज़िल करे और आप के काम पर भी जो आप ख़ुदावंद के लिए कर रहे हैं बरकत बख़्शे। आप का मुहिब्बे-सादिक़जी.ए. लाहौर।

जब कभी बिशप साहब नारोवाल आते वह हमेशा वालिद साहब की दुकान पर जाते और वहाँ बैठ कर उन से और दीगर मुसलमानों से दीनी गुफ़्तगू करते। जब उन्हों ने 1916 में वालिद के इंतक़ाल की ख़बर सुनी तब उन्हों ने शिमला से एहसानुल्लाह को एक ख़त लिखा,

> अज़ीज़एहसान, मुझे अभी ख़बर मिली है कि आप के भाई मसीह में आराम पा कर सो गए हैं और अपने उस आक़ाकी क़ुर्बत और हुज़ूरी में खेड़ेहैं जिस को वह इस क़दर प्यार करते थे। मैं आप को बरादराना हमदर्दी ज़ाहिर करने के लिए यह सुतूर लिख रहा हूँ। आप को तो यह इल्म है कि मुझे उन से किस क़दर उनस था। उन की दोस्ती मेरे लिए फ़ख़्र का बाइस थी। वह हज़ारों में एक शख़्स थे। उन की तबीअत ख़ूबसे-नीयत, हलीमी, इनकिसारी और सरगर्मी से कूट कूट कर भरी हुई थी। मैं जानता हूँ कि उन के जाने से आप के दिल में खला पैदा हो गया है, लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि आप ख़ुदा का शुक्र करते होंगे कि ख़ुदा ने आप के भाई को इस्तेमाल किया था ताकि वह ख़ुदावंद मसीह की ज़िंदगी का असर बहुतों पर डालें। ख़ुदा रूहुल-क़ुद्स जो तमाम तसल्ली का सरचश्मा है आप सब को तसल्ली अता करे। मेरी तबीअत अच्छी नहीं रहती और यहाँ कोलकाता से आराम के लिए आया हूँ। इस वास्ते ज़्यादा नहीं लिख सकता। उम्मीद है कि आप ख़ुदा के फ़ज़्ल से ख़ैरियत से होंगे। आप का मुहिब्बे-सादिक़

रहमतुल्लाह की मुहब्बत का ग़लबा

बपतिस्मा पाने से पहले जब तक मैं घर में रहा। हमारे मकान पर बरादरी ने शहर के गुंडों का पहरा लगा दिया था ताकि न कोई हम को मिलने आए और न पानी भरे। मैं ज़नाना मिशन के इहाते से दो तीन मर्तबा पानी का एक घड़ा और एक बाल्टी ले आता था। लेकिन गर्मियों के दिनों में हमसाई का एक घड़ा पानी और मेरा लाया हुआ पानी किस

तरह किफ़ायत कर सकता था। तो भी गुज़ारा होता गया। मेरे बटाला आने के बाद पानी भरने की मुशकिल बढ़गई। परमानंद साहब लिखते हैं,

> रहमतुल्लाह पर पानी की वजह से सख़्त मुसीबत आई। होते होते यह ख़बर अंग्रेज़ख़दिम तक पहुँची। उस ने क़ौम के लोगों को बहुत समझाया, लेकिन चूँकि वह अभी प्रेज़िडेंट नहीं बना था उस की किसी ने न मानी। आख़िर उस ने उन के वालिद साहब को बताए बग़ैर सियालकोट डिप्टी कमिशनर को लिखा। डिप्टी कमिशनर ख़ुद नारोवाल आया, और उस ने सब को बुलाया। जब उन के वालिद साहब को यह पता चला कि ख़दिम ने डिप्टी कमिशनर को बुला भेजा है तो उन्हों ने बहुत बुरा माना। क्योंकि वह मसीह ख़ुदावंद की ख़ातिर हर क़िस्म की ईज़ारसानी और सब्र से बरदाश्त करना चाहते थे ताकि उन के सब्र का असर क़ौम पर हो। ग़रज़, जब सब जमा हुए तो हाकिमे-ज़िला ने तमाम बातों को दरयाफ़्त करके कहा कि मुल्क के क़ानून के मुताबिक़ मज़हब की तबदीली से साबिक़ हुक़ूक़ ज़ाइल नहीं हो जाते। इस वास्ते मियाँ रहमतुल्लाह का हक़ है कि जिस कुएँ से वह पहले पानी लेते थे उसी कुएँ से अब भी लें।
>
> यह बात क़ौम के लोगों के लिए मुशकिल थी, क्योंकि वह कुआँ बड़ी मस्जिद का कुआँ था। तब उस ने मियाँ साहब को कहा, "बाल्टी लाओ और मेरे सामने कुएँ से पानी निकालो।"
>
> तब उन के वालिद साहब खड़ेहो गए और क़ौम से मुख़ातिब हो कर कहने लगे, "भाइयो, मैं ने साहब डिप्टी कमिशनर के आगे शिकायत नहीं की और न मुझे यह ख़बर थी कि वह आएँगे। क्योंकि मैं मसीह ख़ुदावंद के नक़्शे-क़दम पर चल कर अपने ईमान के लिए दुख उठाना चाहता था। और मैं रसूलों की तरह ख़ुदा का शुक्र करता था कि मैं इस लायक़ठहरा कि ख़ुदावंद के नाम की ख़ातिर बेइज़्ज़त किया जाऊँ। बाज़ारों और गलियों में लानतो-फटकार की आवाज़ेंमेरे लिए ख़ुशी का बाइस थीं। आप का इस में क़ुसूर भी नहीं, क्योंकि आप इस ख़याल से यह सब बातें कर रहे हैं

कि आप ख़ुदा की ख़िदमत कर रहे हैं। आप की शरियत के शिकंजे ने यह सब पेच घुमाए हैं और मेरा मुकम्मल क़ज़ाए-ताल्लुक़ कर दिया है। लेकिन अब आप ने ख़ुद अपने कानों से हाकिमे-ज़िला के हुक्म को सुन लिया है कि जो मेरा हक़ है वह आप मुझ से क़ानूनन छीन नहीं सकते। मैं ने आप को यही समझाया लेकिन आप ने न मानना था और न माने, हालाँकि गर्मी के सबब से हम प्यासे रहे। आप ने मेरे घर को कर्बला बना दिया। यज़ीद की तरह आप मेरे बच्चों को रोटी-पानी के बग़ैर बिलकते देखते रहे और टस से मस न हुए। अब यह कुआँ जिस में से पानी निकालना मेरा हक़ है मस्जिद का कुआँ है। अगर मैं ने अपना हक़ इस्तेमाल करके उस में से पानी निकाला तो आप के ख़याल के मुताबिक़ यह पलीद हो जाएगा और आप इस में से पानी नहीं भरेंगे। आप के बच्चों की भूक-प्यास का वही हाल हो जाएगा जो हमारा हो रहा है और मैं यह बात हरगिज़ नहीं चाहता, क्योंकि मेरे ख़ुदावंद का हुक्म है कि जो कुछ तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारे साथ करें वही तुम भी उन के साथ करो। मैं ख़ुशी से अपने हक़ से सब के रू-ब-रू दस्त-बरदार होता हूँ। मेरी अर्ज़ सिर्फ़ यह है कि आप सिक्के को मेरे घर में हसबे-साबिक़ पानी भरने दें। वह दूसरे ईसाइयों के घरों में भी तो पानी भरता है।"

इन बातों को सुन कर सब ख़ामोश हो गए। फिर उन का सरबराह लीडर अपना सर नीचा करके बोला, "भाई रहमत अली। आप ने हमारी इज़्ज़त रख ली। हम इकरार करते हैं कि आइंदा आप को रोटी-पानी के मुआमले में कोई रुकावट न होगी। लेकिन आप बरादरी से ख़ारिज रहेंगे।"

यों मियाँ रहमतुल्लाह के अलफ़ाज़ ने मुहल्ले की फ़िज़ा को बदल दिया और गली गली में लोग यही कहते सुनाई दिए कि शेख़ रहमत अली ने हमारी लाज और हमारे मज़हब की लाज रख ली है। ख़ुदा का कलाम मियाँ जी के हक़ में पूरा हुआ कि

> अज़ली ख़ुदा तेरी पनाहगाह है, वह अपने अज़ली बाज़ू तेरे नीचे फैलाए रखता है। (इस्तिस्ना 33:27)

रफ़्ता रफ़्ता हालात ने पल्टा खाया। मियाँ जी की मुहब्बत सब रुकावटों पर ग़ालिब आई। एक दो साल के अंदर सब छोटे बड़े उन की बेरिया ज़िंदगी, ख़ुलूस-दिली, रास्त-रवी और मुहब्बत भरी ज़िंदगी की वजह से उन की हद से ज़्यादा इज़्ज़त करने लगे।

मुझे नारोवाल गए कोई तीन साल गुज़रे थे कि हाउस टैक्स को तज्वीज़ करने के लिए एक कमेटी बनाई गई जिस में सब मज़हबों के नुमाइंदों को सब घरों पर टैक्स लगा कर बारह सौ रुपए सालाना जमा करना था। मुसलमानों ने मियाँ रहमतुल्लाह को अपना नुमाइंदा मुंतख़िब किया। जब उन से कहा गया कि वह मुसलमान नहीं है तो उन्हों ने कहा, "कोई हर्ज नहीं। उस में एक सिफ़्त है जो हम किसी और में नहीं पाते। वह खरी और बेलाग सच्ची बात करता है। किसी की तरफ़दारी नहीं करता और न किसी से डरता है। वह हमारे हालात से वाक़िफ़ भी है और फ़राख़दिल है, और उस पर हमारा एतबार और भरोसा है।"

यों मियाँ साहब ने अपने मुख़्लिसाना सुलूक और सब्रो-मुहब्बत से अपने जानी दुश्मनों पर फ़तह पाई। अगर वह आज़माइशों के वक़्त सब्र का पटका न बाँधते और ईसार-नफ़्सी और ख़ुद-इन्कारी का जूता न पहनते तो वह उस ख़ारदार ज़मीन में न चल सकते जहाँ काँटे हर जानिब से उन के दामन को पकड़े हुए थे। तब यह न मुरझाने वाला सहरा उन के सर पर न बाँधा जाता।

वह जिस क़दर कमगो और नर्मगो ख़मोश-तबीअत के इनसान थे उसी क़दर वह शीरीं-कलाम थे। उन की ज़बान में असर था, उन में कशिशे-सक़ल की सी कशिश थी। लोग ख़ुद-ब-ख़ुद उन की तरफ़ खिंचे चले आते थे। अगरचे उन की तबीअत में नर्मी थी, लेकिन वह इरादे के पक्के थे। चुनाँचे 50 बरस से ज़ायद उम्र में उन्हों ने यक-लख़्त हुक़्क़े का इस्तेमाल तर्क कर दिया हालाँकि वह हुक़्क़े के इस क़दर आदी थे कि उन की

अहलिया सुब्ह के वक़्त उन्हें जगाने से पहले हुक़्क़ा तैयार करके उन के मुँह के पास रख दिया करतीं। क्योंकि हुक़्क़े के कश लेने के बाद उन के जिस्म में दम फिरा करता था।

झूट, गाली-गलोच और जली-कटी सुनाने से उन्हें सख़्त नफ़रत थी। जो उन की सोह्बत में बैठता उस से यह बातें ख़ुद-ब-ख़ुद छुट जातीं। उन्हों ने "सत-प्रचारक सभा" क़ायम की जिस का जलसा मेरे दफ़्तर में हर महीने में दो बार हुआ करता था। उस की मेंबरी की एक शर्त थी कि मेंबर ख़ुद सच बोलेगा और दूसरों को सच बोलने की तलक़ीन करेगा। इस सभा का ऐसा अच्छा असर हुआ कि लोग अपने छोटे मोटे मुक़द्दमे और पेचीदा मुआमले इस सभा के सामने लाने लगे। क्योंकि उन्हें रहमतुल्लाह पर एतबार था। जब वह मुसलमान थे तो अन्जुमने-शियाँ के सदर थे, लेकिन अब तो वह तमाम नारोवाल के सदर हो गए।

जब लोग उन से रफ़्ता रफ़्ता सौदा मोल लेने लगे तो वह एक ही दाम मुँह से कहते थे और गहकों से एक पैसा कमो-बेश नहीं लेते थे। बाज़ औक़ात मेरे सामने एक आने पर पचास साठ रुपए वाले गाहक को मोड़ देते थे। वह कहते थे कि एक ज़बान और पूरा तोल ख़ुदावंद को पसंद है। जब रफ़्ता रफ़्ता गाहकों को उन के सच बोलने का इल्म हो गया तो उन की दुकान चल पड़ी और सैंकड़ों रूपों का माल बग़ैर किसी तक़ार और मग़ज़पच्ची के बिकने लगा।

मियाँ साहब की दुकान क्या थी, मुनादी का अच्छा ख़ासा मक़ाम था। जब कभी मैं उधर से गुज़रता यही देखता कि पाँच सात आदमी उन के पास बैठे हैं, और वह उन्हें इंजील सुना रहे हैं। जिन दिनों में उन का बाईकॉट था, उस ज़माने में कोई गाहक तो उधर जाने का नाम भी नहीं लेता था गो मियाँ साहब का रोज़मा मश्ग़ला ही यह था कि लोगों से बह्स-मुबाहसा करें।

उन की माली तबाही को देख कर मिशन वालों ने उन्हें कहा कि आप क्लार्काबाद के गाँव के मैनेजर हो जाएँ। लेकिन उन्हों ने यह बात मंज़ूर

न की ताकि लोग यह ख़याल न करें कि वह लालच की ख़ातिर ईसाई हो गए हैं। उन का दीनी जोश देख कर जमात वालों ने उन से कहा, "आप ख़ादिमुद-दीन बन जाएँ। लेकिन उन्हों ने आज़ादाना तबलीग़ की ख़िदमत करने का तहिया कर लिया हुआ था। क्योंकि उन्हों ने देखा था कि उन के बड़े भाई एहसानुल्लाह फ़क़ीराना ज़िंदगी बसर करके नजात की ख़ुश-ख़बरी सुनाया करते थे। हक़ तो यह है कि मियाँ रहमतुल्लाह ख़ुदावंद के जाँ-निसार आशिक़ थे और हर छोटे बड़े को नजात की बिशारत देना तो अपना अव्वलीन फ़र्ज़ ख़याल करते थे। वह चाहते थे कि जिस तरह पौलुस रसूल ख़ेमा-सिलाई करने से पेट पालते और इंजील की बिशारत सुनाते थे वह भी दुकानदारी करके इंजील शरीफ़ का पैग़ाम लोगों को सुनाएँ।

वह क़ुरआन के हाफ़िज़ थे और इंजील उन्हें ज़बानी याद थी। वह उस की असल यूनानी ज़बान और अंग्रेज़ी ज़बान भी सीख रहे थे। उन्हें किताबे-मुक़द्दस की ज़्यादा वाक़िफ़ियत हासिल करने का अज़हद शौक़ था। जब कभी हमारे हाँ समर स्कूल होते वह अपनी दुकान बंद करके और माली नुक़्सान की तरफ़ से बेपर्वा हो कर दो तीन हफ़्ते जमात में बैठते और नोट लेते रहते थे। इतवार के रोज़ वह कभी दुकान नहीं खोलते थे और तमाम दिन इबादत और कलाम पढ़ने में सर्फ़ कर देते थे।

अक्सर औक़ात जब मैं या दूसरे ख़ादिमुद-दीन गाँव में निकल जाते तो हर बुध की शाम की इबादत के वक़्त वह वाज़ किया करते थे। हफ़्ते की दुआइया इबादत में वह हमेशा आया करते और दुआ किया करते थे। वह बाज़ारी मुनादी में हर जुमए हमारे साथ जाया करते थे और अक्सर औक़ात नजात की ख़ुश-ख़बरी लोगों को सुनाते थे। बरियार के मेले के दिनों में दुकान बंद करके वह अपना तमाम वक़्त इंजील की बिशारत में ख़र्च कर दिया करते थे। रात को सोने से पहले वह किताबे-मुक़द्दस के मक़ामात को जो ज़बानी याद थे विर्दे-ज़बान करते, फिर 51 ज़बूर पंजाबी में गाते, इस के बाद हमदो-सताइश के गीत गाते और आख़िर

में दुआ करके सोया करते थे। वह अक्सर इब्रानियों का यह हवाला मुझे सुनाया करते थे,

> ईमान के पहले दिन याद करें जब अल्लाह ने आप को रौशन कर दिया था। उस वक़्त के सख़्त मुक़ाबले में आप को कई तरह का दुख सहना पड़ा, लेकिन आप साबितक़दम रहे। कभी कभी आप की बेइज़्ज़ती और अवाम के सामने ही ईज़ारसानी होती थी, कभी कभी आप उन के साथी थे जिन से ऐसा सुलूक हो रहा था। जिन्हें जेल में डाला गया आप उन के दुख में शरीक हुए और जब आप का मालो-मता लूटा गया तो आप ने यह बात ख़ुशी से बरदाश्त की। क्योंकि आप जानते थे कि वह माल हम से नहीं छीन लिया गया जो पहले की निस्बत कहीं बेहतर है और हर सूरत में क़ायम रहेगा। चुनाँचे अपने इस एतमाद को हाथ से जाने न दें क्योंकि इस का बड़ा अज्र मिलेगा। लेकिन इस के लिए आप को साबितक़दमी की ज़रूरत है ताकि आप अल्लाह की मरज़ीपूरी कर सकें और यों आप को वह कुछ मिल जाए जिस का वादा उस ने किया है। (इब्रानियों 10:32-36)

> क्योंकि हमारी मौजूदा मुसीबत हल्की और पल भर की है, और वह हमारे लिए एक ऐसा अबदी जलाल पैदा कर रही है जिस की निस्बत मौजूदा मुसीबत कुछ भी नहीं। (2 कुरिन्थियों 4:17)

अगर उन्हें यह मालूम हो जाता कि फ़लाँ मुसलमान या ईसाई बीमार है तो वह ज़रूर उन के घर जाते और दुआ करते थे। हमारे सब मुबल्लिग़ीन उन्हें अपना हम दर्द जान कर पहले उन के पास जा कर उन के अपने निजी मुआमलात में सलाह लेते थे। वह जब तक ज़िंदा रहे नारोवाल की

चर्च कमेटी के मेंबर चुने जाते थे और वहाँ से डिस्ट्रिक्ट मिशन कौंसल और उसकी कौंसल के लिए चुने जाते रहे।

जब वह बीमार हुए तो बीमार-पुरसी करने वालों का ताँता लग गया, और जब वह अगस्त 1912 में फ़ौत हुए तो उन के जनाज़े के साथ न सिर्फ़ ईसाई थे बल्कि हिंदुओं, सिक्खों, शियों और सुन्नियों की एक भारी तादाद थी हालाँकि उस रोज़ बारिश हो रही थी।

मरते दम उन के मुँह पर यह अलफ़ाज़ थे, "ख़ुदावंद भला है। उस की रहमत अबदी है। उस की वफ़ादारी बुशत दर पुशत है।" अपने ख़ादान की तरफ़ आख़िरी दम मुतवज्जिह हो कर कहा, "ख़ुदावंद तुम्हारी रखवाली करे और तुम को बरकत पर बरकत दे।" फिर आसमान की तरफ़ निगाह करके कहा, "ए ख़ुदावंद, मेरी रूह को क़बूल कर।" वफ़ात के वक़्त उन की उम्र छप्पन साल की थी। उन के बाद उन की रफ़ीक़-ए-हयात 29 साल ज़िंदा रहीं और अस्सी साल की उम्र पा कर इस जहान से रेहलत करके अपने ख़ाविंद से और अपने बेटे इनायतुल्लाह और बेटी बरकत बीबी से जा मिलीं। जब वालिद साहब की वफ़ात हुई तो मेरे मुँह से निकला,

> रब करे कि मैं रास्तबाज़ों की मौत मरूँ, कि मेरा अन्जाम उन के अन्जाम जैसा अच्छा हो। (गिनती 23:10)

13 झंगबार : मिशनरी इंचार्ज

झंगबार पर तक़र्रुर

एहसानुल्लाह 1900 में टोबा टेक सिंह पहुँचे थे। इस के एक साल बाद बेटमन 1902 के शुरू में हमेशा के लिए अपने वतन को वापस चले गए। उन के जाने के बाद होल्डन कुछ अर्सा रहे। जब वह भी चले गए तो बिशप लीफ़्राए के इशारे पर एहसानुल्लाह झंगबार के तमाम इलोक़े के मिशनरी इंचार्ज मुक़र्रर किए गए। वह पहले हिंदुस्तानी ख़ादिम थे जिन के सपुर्द यह ज़िम्मेदारी की गई थी। सच तो यह है कि उन्हों ने इस ज़िम्मेदारी को ख़ूब निभाया। ऐसा कि उन के हासिद मिशनरी तक भी उन का लोहा मान गए। एक अंग्रेज़ मिशनरी जो गाँव में अनथक काम करने के लिए मश्हूर था लिखता है,

> मैं दुआ से यही दुआ करता हूँ कि वह वक़्त जल्दी आए जब पंजाब के तमाम हिंदुस्तानी ख़ादिम एहसानुल्लाह की सी जाँ-फ़िशानी और क़ाबिलियत के साथ काम करें।

उन्हों ने तमाम इलोक़े की जमातों को मुनज़्ज़म करके उन की दुनियावी और दीनी तालीम का इंतज़ाम किया, जा-ब-जा लड़कों और लड़कियों के स्कूल खोले। उन के मुबल्लिग़ीन ही उन स्कूलों के उस्ताद होते थे। वह हर साल मुबल्लिग़ीन को एक माह के लिए मुख़्तलिफ़ जगहों में इकट्ठा करके उन्हें तालीम देते थे, उन्हें इलाहियात के इमतहानात पास करने की तरग़ीब देते थे और उन्हें ख़ुद पढ़ाते थे।

1905 में उन्हों ने मंटगुमरी-वाला में एक माह के लिए मुबल्लिग़ीन को तालीम दी जिस तरह वह नारोवाल के इलोक़े में रइय्या में तालीम दिया करते थे। उन्हों ने पाँच मुबल्लिग़ीन को “विलेज बोर्ड” के इमतहानात के लिए तैयार किया और पाँचों पास हो गए। अगले साल फिर पौने

दो माह के लिए टोबा टेक सिंह में मुबल्लिग़ीन को तालीम के लिए जमा किया। 1909 में उन्हों ने न सिर्फ़ मुबल्लिग़ीन को बल्कि तमाम इलाक़े के मुख़्तलिफ़ गाँव और क़स्बों के सरबराह ईसाई लीडरों को जमा किया ताकि वह इंजील जलील के उसूलों से और मसीह की नजात से वाक़िफ़ हो कर हिंदुओं और मुसलमानों को सलीब की ख़ुश-ख़बरी का पैग़ाम सुनाएँ। उस साल उन्हों ने सात सौ अश्ख़ास को टोबा टेक सिंह में और एक हज़ार नुफ़ूस को मंटगुमरी-वाला में इकट्ठा करके उन्हें जोश दिलाया कि वह जिस जगह भी जाएँ ख़ुदावंद मसीह के नाम का परचार करें। साथ साथ वह ईसाइयों को हर जगह बेदार करके मज़बूत बनाएँ ताकि हर एक जगह की जमात अपने मुबल्लिग़ के अख़राजात की ज़िम्मेदार हो जाए और अपने पाँओ पर खड़ी हो जाए। इस का नतीजा यह हुआ कि यह अनपढ़ और नाख़्वांदा लोग बेधड़क हो कर अपने नजात-दहिंदे का पैग़ाम ग़ैर-मसीहियों को सुनाने लगे और इस कोशिश में रहे कि मुख़्तलिफ़ मक़ामात की जमातें अपने उस्तादों की तनख़ाह की ज़िम्मेदार हो जाएँ।

एहसानुल्लाह बपतिस्मे देने में कभी जल्द-बाज़ी से काम नहीं लेते थे। वह अपने मुबल्लिग़ीन को अक्सर कहा करते थे कि मुझे तादाद की ज़रूरत नहीं। मुझे इस बात की ज़रूरत है कि जिस शख़्स को तुम बपतिस्मे के लिए पेश करो उसे अपने गुनाहों की माफ़ी का एहसास हो और इंजील जलील के उसूलों को ख़ातिर-ख़्वाह जानता हो। मुझे कौड़ियों की ज़रूरत नहीं। मुझे सोने और ख़ालिस सोने की ज़रूरत है। कौड़ियों का ढेर उमूमन एक रुपए के बराबर भी नहीं होता। इसी तरह वह इस्तिह्काम की रस्म के वास्ते बहुत कम लोग पेश किया करते थे और हमेशा इस बात के ख़्वाहाँ होते थे कि जो उम्मीदवार पेश किए जाएँ उन्हें नई ज़िंदगी का तजरिबा हो। बिशप लीफ़राए भी यही चाहते थे। जब कभी वह मुस्तह्कम करने की ख़ातिर टोबा टेक सिंह आते तो दोनों मर्दे-ख़ुदा एक दूसरे से बग़लगीर हो कर मिलते और एक दूसरे के

रूहानी तजरिबों से मुस्तफ़ीद होते थे। 1906 में उन्हों ने झंगबार के तमाम इलाक़ों से सिर्फ़ तीस मर्दों और औरतों को इस्तिह्काम के लिए पेश किया।

मुलतान में जलसे

उसी साल एहसानुल्लाह ने मुलतान में मुक़द्दस हफ़्ते की इबादतों में वाज़ किए। वाज़ क्या थे, उन्हों ने लोगों के दिलों को हिला दिया। मुलतान की जमात को झंजोड़ दे कर ख़्वाबे-ग़फ़लत से बेदार किया। एक तो दिन ही मुक़द्दस हफ़्ते के थे, फिर वाज़ एहसानुल्लाह के! सोने पर सुहागे का काम हुआ। उन के वलवला-अंगेज़ वाज़ों ने मुबारक जुमए के मंज़र को लोगों की आँखों के सामने ऐसे अलफ़ाज़ में पेश किया कि वह बेइख़्तियारी की हालत में रोने और अपने गुनाहों का इकरार करके ख़ुदा से मग़फ़िरत माँगने लगे। उन की तक़रीरों की धूम मच गई, और बाज़ मख़दूम उन्हें मिलने के लिए आए जिन को उन्हों ने ख़ुदावंद मसीह की नजात की ख़ुश-ख़बरी सुनाई। जमात के शुरका ने वादे किए कि वह आइंदा ऐसी ज़िंदगी गुज़ारेंगे जो मसीह ख़ुदावंद के नाम के लायक़ होगी और अपने मुसलमान और हिंदू भाइयों में नजात-दहिंदे का पैग़ाम सुनाया करेंगे।

देहरादून में जलसे

इस साल में वह अपनी रुख़सत के अय्याम में देहरादून गए। उन के लिए हसबे-साबिक़ जलसों का इंतज़ाम किया गया, और उन्हों ने जा-ब-जा शहर में और गाँव में तक़रीरें कीं जिन से बेदारी की लहर वहाँ की जमातों में अज़-सरे-नौ चल पड़ी। उन दिनों में एक निहायत शरीफ़ और

रूहानी तबा के ख़ादिम बनाम बेनेट [1] वहाँ मुतअय्यिन थे जो निहायत जाँ-फ़िशानी से ख़ुदावंद की ख़िदमत किया करते थे। उन्हों ने और दीगर जमातों के ख़ादिमों ने इन जलसों का इंतज़ाम किया था। जब लोगों को ख़बर मिली कि एहसानुल्लाह तक़रीरें करेंगे तो वह बड़े शौक़ के साथ आए बल्कि इस तादाद में आए कि मुंतज़िमीन भी हैरान हो गए। उन्हों ने ख़ुदा का शुक्र किया जिस ने मियाँ साहब के ज़रीए देहरादून और इलोक़ की जमातों को बरकत बख़्शी। खासकर जो जलसे चूहड़पुर (ऐनफ़ील्ड) में हुए उन्हों ने उस ईसाई गाँव की काया पलट दी जिस जगह आए दिन पार्टी-बाज़ी की वजह से जमात में झगड़े फ़साद होते रहते थे। वहाँ की फ़िज़ा बदल गई। पार्टियों के सरबराह लीडरों ने इकरार किया कि वह आइंदा एक दूसरे से मुहब्बत और सुलह से रहेंगे और पार्टी-बंद से तौबा की। उस जगह आठ रोज़ तक मुतवातिर जलसे होते रहे। चूहड़पुर के बाद बेनेट उन्हें राजपुर और मसूरी पहाड़ की जमातों में तक़रीरें करने के लिए ले गए। वहाँ ख़ुदा ने मियाँ साहब को ऐसा इस्तेमाल किया कि जो मिशनरी मर्द और औरतें वहाँ तफ़रीह के लिए आए थे वह रूहानी ताज़गी पा कर वापस गए। उन्हों ने ख़ुदा का शुक्र किया कि उन्हें मियाँ साहब की मारिफ़त दुबारा ख़ुदा की नज़दीकी हासिल हुई है। उन्हों ने अज़सरे-नौ अपनी ज़िंदगी ख़ुदा के सपुर्द कर दी ताकि वह उन्हें इस्तेमाल करे।

ग़ैर-मसीहियों से मुनाज़रे

एहसानुल्लाह ने जनवरी और फरवरी 1908 में टोबा टेक सिंह के क़स्बे में हिंदुओं मुसलमानों के दरमियान एक ऐसे ज़बरदस्त पैमाने पर तबलीग़ इंजील की ख़िदमत की कि वहाँ के बाशिंदे निहायत मुतअस्सिर हो कर इंजील जलील का मुतालआ करने लगे। चारों तरफ़ एक शोर सा मच गया। उन के सरकरदा लीडरों ने अपने मौलवियों और पंडितों को बुलाया

[1] Bennet

ताकि मियाँ साहब से मुनाज़रा करें। मियाँ साहब अकेले सब के साथ मुनाज़रा करते रहे। जलसेगाह में इतने लोग मुबाहसा सुनने के लिए आते कि जगह न रहती। इस का नतीजा यह हुआ कि हिंदू और मुसलमान मुनाज़िरों ने अलानिया इकरार किया कि जहाँ वह हटधर्मी से काम लेते थे वहाँ मियाँ साहब खरा-लगती कहते थे और रास्ती के साथ हर बात करते थे। मियाँ साहब ने पहले ही दिन उन से कह दिया था कि इस मुबाहसे और मुनाज़रे की असल ग़रज़ हक़ की तलाश है। अगर उन का मक़्सद महज़ मज़ाह और शिकस्त है तो

> بیا کہ ما سپر انداختیم اگر جنگ است
> आओ, हम सिपर फैंक दें अगर जंग है।

इस बात का असर तमाम बाशिंदों पर हुआ, और वह इंजील के मुतालए के लिए मियाँ साहब के पास आने लगे। एक मौलवी ने जो टोबा में रहता था उन्हें कहा कि आप दुआ करें कि मैं राहे-हक़ पर चलने की तौफ़ीक़ पाऊँ।

इन मुबाहसों को सुनने के लिए न सिर्फ़ हिंदू और मुसलमान बाशिंदे बल्कि इर्दगिर्द के देहात के ईसाई भी आए। नतीजे में उन के ईमान को बड़ी तक़वियत हासिल हुई। उन्हों ने अपने गाँव के हिंदुओं और मुसलमानों को दिलेरी से ख़ुदावंद की नजात का पैग़ाम सुनाना शुरू कर दिया। जब देहात के मौलवी और पंडित उन से मसीही ईमान की निस्बत सवाल करते तो वह टोबा आ कर मियाँ साहब से उन के जवाबात पूछ कर मोतरिज़ीन को जा कर जवाब देते और उन की तसल्ली करते। इस तरह उन का ईमान हद से ज़्यादा मज़बूत हो जाता था। नतीजे में झंगबार के इलाक़े की जमातें ईमान में तरक़्क़ी करती गईं।

झंग के चर्च मिशन के इलाक़े के मुबल्लिग़ीन और उस्ताद इन मुनाज़रों से बहुत मुतअस्सिर हुए। उन्हों ने वापस अपने अपने इलाक़े में जा कर

तबलीग़ी मुहिम्में शुरू कर दीं और तबलीग़ी जोश से मामूर हो कर हर वक़्त ग़ैर-मसीहियों को इंजील की नजात का पैग़ाम सुनाने लगे।

उस साल जब वह मई में समर स्कूल के लिए आए तो मियाँ साहब के छोटे भाई शेख़ रहमतुल्लाह भी वहाँ मौजूद थे ताकि वह अपने भाई के क़दमों में बैठ कर कलामे-पाक के रुमूज़ो-निकात पाएँ। शेख़ साहब की मौजूदगी ने उन मुबल्लिग़ों और उस्तादों के तबलीग़ी वलवलों को और भी तेज़ कर दिया। सब बाज़ारी मुनादी बेड़ज़ैसे शौक़ से करते रहते थे।

टोबा के मुनाज़िरों और मुबल्लिग़ीन के जोश की धूम दूर दूर तक फैल गई। नतीजतन क्लार्काबाद के मसीहियों ने सितंबर में एहसानुल्लाह को और लाहौर के तालिबुद-दीन साहब को दावत दी कि वह आ कर जमात में वैसे ही करें ताकि उस गाँव की जमात अपनी ज़िम्मेदारी को महसूस करे। इन जलसों का इंतज़ाम बेड़एहतिमाम से किया गया। उस की कामयाबी के लिए हर तरफ़ दुआएँ की गईं। नतीजे में न सिर्फ़ क्लार्काबाद-ख़ुर्द और क्लार्काबाद के ईसाई बल्कि इर्दगिर्द के देहात और चूनियाँ, पत्तोकी से भी ईमानदारों ने इन जलसों में शिर्कत की।

एहसानुल्लाह की हंगामा-अंगेज़ तक़रीरों और तालिबुद-दीन साहब के क़ियामत-ख़ेज़ वाज़ों ने क्लार्काबाद के मसीही गाँव की फ़िज़ा को पूरे तौर पर बदल दिया। यह गाँव हमेशा पार्टियों और तफ़रक़े का घर बना रहा है जहाँ हर शख़्स इसी ख़्याल में मुब्तला रहा कि हमारे बराबर कोई नहीं। एहसानुल्लाह ने कुलुस्सियों 3:12-17 पर ऐसी ज़बरदस्त तक़रीरें कीं कि गाँव के छोटे बड़े सब काँप उठे और बेख़ुदी में ख़ुद-फ़रामोश हो गए। मियाँ साहब के दिली जज़्बात की गर्मी और गुदाज़ ने दिलों की सख़्ती पिघला दी। उन के वाज़ों के ज़िंदगी-बख़्श तअस्सुरात ने जमात की मुर्दा रूहानी ज़िंदगी में जान डाल दी। हर तरफ़ से लोग अपने गुनाहों से नादिम और पशेमान हो कर बेसाख़्ता उन का इकरार करने लगे और एक दूसरे के गले लग कर रोने लगे। जो गुनाह उन्हों ने पड़ोसियों के

ख़िलाफ़ दुश्मनी और कीनावरी से किए थे उन का अलानिया इकरार करके एक दूसरे से और ख़ुदा से मुआफ़ी माँगी।

झंग में तुलबा के प्रैक्टीकल

लाहौर के सेंट जान्ज़ कॉलेज के तुलबा हर साल दो तीन माह के लिए एहसानुल्लाह के पास झंगबार के इलाक़े में भेजे जाते ताकि वह उन की तालीम और तरबियत करें और उन्हें सिखाएँ कि क़स्बों और गाँव की जमातों में किस तरह काम करें। साथ साथ वह उन्हें इंजील जलील के पैग़ाम के फैलाव के सही तरीक़े बताएँ। यह तुलबा निहायत ज़ौक़-शौक़ से इस इंतज़ार में रहते कि कब वह वक़्त आए जब वह मियाँ साहब से मिलें और उन की तालीमो-तरबियत से मुस्तफ़ीज़ हों। कॉलेज के प्रिंसिपल विगरम साहब एहसानुल्लाह के बड़े मद्दाह थे और हमेशा मुझे कहा करते थे कि तुम बड़े ख़ुश-क़िस्मत हो कि जमात के एक ज़बरदस्त सतून के भतीजे हो। वह निहायत अख़्लाक़ के साथ मुझे मिलते और मुझे देख कर हमेशा ख़ुश होते।

मैं 1900 से 1910 तक सेंट जान्ज़ होस्टल में रहता था। उन सालों में साधू सुंदर सिंह भी इल्मे-इलाहियात की तहसील के लिए वहाँ आए हुए थे और तुलबा के साथ एहसानुल्लाह के पास गए। जब वापस आए तो उन्हों ने मुझे कहा, "आप के ताया साहब से मैं ने रूहानी बरकात पाने के इलावह फ़क़ीराना ज़िंदगी के हक़ीक़ी मतालिबो-मक़ासिद सीखे हैं। उन के साथ रहने से मुझ पर

> او در من و من در او اُفتادہ
>
> वह मुझ में और मैं उस में गिरा पड़ा हूँ।

का राज़ खुल गया है, और अब मैं बेहतर तौर पर पौलुस रसूल के अलफ़ाज़ समझ सकता हूँ कि

> यूँ मैं ख़ुद ज़िंदा न रहा बल्कि मसीह मुझ में ज़िंदा है (गलतियों 2:20)

> او در من و من در وے چون بُو بہ گلاب اندر
> वह मुझे में और मैं उस में, क्योंकि ख़ुशबू गुलाब के अंदर है

उन्हों ने मुझे अपने तजरिबे से मुस्तफ़ीज़ किया और मुझे तसव्वुफ़ और मारिफ़त के लिबास में मल्बूस किया। ख़ुदा करे कि मैं यह सबक़ उम्र भर न भूलूँ। उन के रुमूज़ इशारे नहीं बल्कि शरारे थे।"

मियाँ साहब इन तुलबा के साथ ख़ुद हर जगह जाते। दिन को वह बाज़ारों और नुकड़ की जगहों में ग़ैर-मसीहियों को इंजील की बिशारत देने के तरीक़े बता कर ख़ुद मुनादी करते और उन से भी मुनादी करने को कहते। दिन भर वह मुख़्तलिफ़ गाँव में उन्हें पैदल ले कर जाते और राह में उन से ख़ुदावंद मसीह के और पौलुस रसूल के तरीक़ अमल पर गुफ़्तगू और तबादलाए-ख़यालात करते। रात को वह मैजिक लालटेन के ज़रीए किताबे-मुक़द्दस की कहानियों पर उन्हें बोलने को कहते थे।

जब यह तुलबा वापस आते तो जमात की ख़िदमत और इंजील की तबलीग़ के जोश में भरे वापस आते और अपनी ज़िंदगियों को अज़सरे-नौ ख़ुदावंद की ख़िदमत के लिए मख़्सूस कर देते थे। वह मुझे कहा करते थे, "आप के ताया साहब तो हज़ारों में एक हैं। हम ने बहुतेरे ख़ादिमों को देखा है, लेकिन वह लासानी शख़्स हैं। वह मीलों हमारे साथ पैदल चलते हैं। हम जवान हैं, लेकिन उन की तरह हम में से कोई तेज़ नहीं चल सकता। वह लोहे के बने हुए हैं। थकावट को तो वह जानते ही नहीं, और उन का जोश अब जवानी पर आ रहा है और हमारे जोश को शर्मिंदा करता है। उन की नवाए-शोला असर हमारे दिलों में आग ला देती है।

वह साहबे-राय और साइबुर-राए[1] हैं। ऐसे मश्वरों से हम को मुस्तफ़ीद करते रहे हैं जो कभी कोई दूसरा ख़ादिम नहीं देता और न दे सकता है।"

इन तुलबा का उन के लिए वही मक़ाम था जो पौलुस रसूल के नज़दीक तीमुथियुस का था। उन की हमेशा यही कोशिश थी कि इन तुलबा के दिलों में रूहों की तड़प पैदा हो जाए। मियाँ साहब अपने कलाम से और अपने काम के नमूने से यह तड़प उन के दिलों में पैदा कर देते थे। वह उन्हें कहा करते थे, "तुम डीकन के ओहदे के लिए तैयारी करते हो, लेकिन उस वक़्त का इंतज़ार न करो जब बिशप तुम पर हाथ रखेगा। क्योंकि मुम्किन है कि वह वक़्त कभी आए ही न। तुम अभी से मसीह का हाथ अपने सर पर रखवा लो और अब से ही आदमियों का शिकार करो, लोगों को उन के नजात-दहिंदा के पास ले आओ।"

वह कहते थे, "मसायले-दीन से या रसूलों और नीकायाह के अक़ीदों से वाबस्तगी न रखो बल्कि मसीह से।" वह यह हक़ीक़त उन के ज़हन-नशीन करते थे कि मुख़्तलिफ़ ईसाई फ़िरक़ों में मुख़्तलिफ़ क़िस्म की सच्चाइयाँ महफ़ूज़ हैं जिन को उन्हों ने ज़ाबितों और पिंजरों में जकड़ रखा है। यह मग़रिब के फ़िरक़ेवाले हम को भी इन ही पिंजरों में क़ैद रखना चाहते हैं, लेकिन लाज़िम है कि हिंदुस्तानी जमातें अपने अपने पिंजरों से निकल कर उन सदाक़तों को भी देखें जो दीगर फ़िरक़ों में मौजूद हैं और इंजील के नूर से मनव्वर हैं। जब तुम अपनी जमातों में जाओ तो पौलुस रसूल की तरह ईसा मसीह और मसीहे-मस्लूब के सिवा और कुछ न जानो।" क़िबला वायज़ दुरुस्त लिखते हैं,

> एहसानुल्लाह इस क़िस्म के ख़ादिम न थे जिस तरह आजकल ख़ादिम बन जाते हैं। इस पाक ख़िदमत के वास्ते वह अपनी माँ के पेट ही से चुने हुए थे।[2] मसीह के इस जाँ-निसार ख़ादिम की ज़िंदगी अगर मोजिज़ा नहीं तो क्या है?"

[1] जिन की राय दुरुस्त हो
[2] देखिए गलतियों 1:15

14 अपनी मदद आप की तहरीक

1896 में एहसानुल्लाह ने अपनी मदद आप की तहरीक की नयो (नींव) डाली। नतीजे में गंडा मल, मल्लू चंद और लब्भू मल ने ग़ैर-ममालिक के रुपए से दस्त-बरदार हो कर यू.पी. मिशन की जमातों में ख़िदमत शुरू की और जमातों ने अपनी दहयकी और दीगर तरीक़ें से उन के और जमात के अख़राजात की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। उस वक़्त उन में से किसी के ख़ाब-ओ-ख़याल में भी न आया कि इब्लीस अपनी मदद आप का तरीक़अपने मक़सिद के लिए कभी इस्तेमाल कर सकेगा। लेकिन ज्यों-ज्यों यह नेक तहरीक ज़ोर पकडती गई शैतान ने भी अपना ज़ोर मारना शुरू कर दिया। होते होते ऐसे ना-अहल लोगों को ख़ादिम के ओहदे पर मामूर किया गया जो मसीह और उस की इंजील की ख़िदमत के लायक़न थे। यह नाम-निहाद लालची ख़ादिम कहने को तो अपनी मदद आप के पासबान हो गए, लेकिन उन्हों ने अपनी आम्दनी पर जो जमात से उन्हें मिलती थी क़नाअत न की। वह ख़ुदावंद के अह्काम भूल गए कि

> अपनी ज़िंदगी की ज़रूरियात पूरी करने के लिए परेशान न रहो कि हाय, मैं क्या खाऊँ और क्या पियूँ। और जिस्म के लिए फ़िक्रमंद न रहो कि हाय, मैं क्या पहनूँ। क्या ज़िंदगी खाने पीने से अहम नहीं है? और क्या जिस्म पोशाक से ज़्यादा एहमियत नहीं रखता? ...तुम्हारे आसमानी बाप को पहले से मालूम है कि तुम को इन तमाम चीज़ों की ज़रूरत है। पहले अल्लाह की बादशाही और उस की रास्तबाज़ीकी तलाश में रहो। फिर यह तमाम चींज़ेभी तुम को मिल जाएँगी। (मत्ती 6:25,32-33)

यह वह ख़ादिम थे जिन पर पौलुस रसूल के अलफ़ाज़ सादिक़ आते थे कि

> ऐसे लोग हमारे ख़ावंद मसीह की ख़िदमत नहीं कर रहे बल्कि अपने पेट की। वह अपनी मीठी और चिकनी-चुपड़ी बातों से सादा-लौह लोगों के दिलों को धोका देते हैं। (रोमियों 16:18)

झंगबार के इलाक़े में एहसानुल्लाह को कुछ ऐसे लोगों के साथ वास्ता पड़ा था जिन्हों ने दो फ़िरक़े खड़े कर दिए थे। एक का नाम "यिसू की फ़ौज" और दूसरे का नाम "यिसू की हिंदुस्तानी फ़ौज" था। इन फ़िरक़ों के बानी चूहड़ों को धड़ाधड़ बपतिस्मे दिए जाते थे ताकि उन से रुपया बटोरा जाए। उन्हों ने ख़ावंद मसीह के नाम की आड़ में अल्लाह के घर यानी मसीह के बदन को "डाकुओं का अड्डा" बना रखा था। उन्हें अपने हलवे-मांडे और ऐशो-इशरत से काम था।

एहसानुल्लाह यह देखते थे और कुढ़ते थे। जहाँ मौक़ा होता वह ऐसे नाम-निहाद ख़ादिमों के ना-शायस्ता बदकिर्दारियों के ख़िलाफ़ जिहाद की आवाज़ बुलंद करते थे। लेकिन वह देखते थे कि यह बुराइयाँ बढ़ती जाती हैं और कुछ कुछ से उन लोगों के लिए दुआ-गो रहते थे ताकि पंजाब की जमात ऐसे लोगों के चंगुल से रिहाई पाए।

उन अय्याम में एक किताब छप गई जिस का उन्वान था, "मिशनरी तर्ज़-अमल: पौलुस रसूल का और हमारा।" [1] इस किताब में पौलुस रसूल के ख़ुतूत की रोशनी में बिशारती काम के मुख़्तलिफ़ पहलुओं पर बह्स की गई है। मिशन के माली पहलू पर जो बह्स की गई है वह निराली है। एहसानुल्लाह की यह आदत थी कि वह नई किताबों को पढ़कर नए ख़यालात से फ़ायदा उठाया करते थे। जब यह किताब उन के हाथ में आई तो यह हक़ीक़त उन के ज़हन-नशीन हो गई कि पौलुस रसूल किसी शहर या क़स्बे की जमात की माली इम्दाद से अपना पेट नहीं

[1] R. Allen, *Missionary Methods: St. Pauls and Ours*

पालते थे बल्कि वह ख़ैया-सिलाई करके अपना गुज़ारा करते थे। उन के साथी भी इसी तरह ख़ुदावंद की ख़िदमत आज़ादाना मुफ़्त करते थे। इस बात ने उन के दिलो-दिमाग़ पर क़ब्ज़ा कर लिया, क्योंकि वह अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में देखते थे कि गाँव के मुसलमानों के इमाम उमूमन जूलाहे, बढ़ई, लोहार, दर्ज़ी वग़ैरा होते थे जो अपनी मज़दूरी ख़ुद कमा कर अपना और अपने बाल बच्चों का पेट पालते थे और साथ ही दीनी उमूर में मुसलमानों के इमाम और उस्ताद थे। उन्हें यक़ीन आया कि ईसाई जमातों में यह बात क़ाबिले-अमल हो सकती है।

अपने दस्तूर के मुताबिक़ उन्हों ने इस तर्ज़े-अमल का हर छोटे बड़े के सामने ज़िक्र करना शुरू कर दिया ताकि पंजाब की जमात पौलुस रसूल के ख़यालात के मुताबिक़ ग़ैर-ममालिक के रूपों से आज़ाद हो जाए और अपने बंधनों से छूट कर रिहाई पाए। उन्हों ने मंटगुमरी-वाला और ईसानगरी के ईसाई गाँव के लीडरों, अपने मुबल्लिग़ों और उस्तादों और अपने मा-तहत ख़ादिमों को इस हक़ीक़त से रू-शनास कराया।

जब मिशन डिस्ट्रिक्ट कौंसल और सेंट्रल मिशन कौंसल के इज्लास हुए तो उन्हों ने उन में इस मौज़ू पर तक़रीरें कीं। अपनी जमात के ख़ादिमों के इलावा उन्हों ने दीगर फ़िर्क़ों के ख़ादिमों से भी कहा कि पौलुस रसूल के तर्ज़े-अमल को पंजाब की जमात में इख़्तियार करके तजरिबा करना चाहिए। वज़ीर चंद लिखते हैं,

> मेरी पहली मुलाक़ात एहसानुल्लाह से 1896 में हुई जब मैं स्कूल में पढ़ता था। उन्हों ने पंजाब की जमातों में रूहानी बेदारी की लहर जारी कर दी। वह जिधर जाते मसीही जमातों में एक नई रूह फूँक देते थे। रूहुल-क़ुद्स बड़ी क़ुदरत से उन में और उन के वसीले काम कर रहा था। हम जो तालिब-इल्म थे बड़े शौक़ से उन के क़दमों में बैठ कर ख़ुदा का कलाम सुना करते थे जिस से मेरी उम्र के इबतिदाई मराहिल पर बहुत असर पड़ा।
>
> जब मैं लायलपुर (फ़ैसलाबाद) में था तो मेरी और उन की मुलाक़ात किसी रेलवे स्टेशन पर हो गई। उन्हों ने मुझे रोलैंड ऐलन की किताब दिखा

> कर फ़रमाया कि इसे ज़रूर पढ़ो। यह वह किताब थी जिस ने मिशनरी हलक़ेंमें तहलका मचा रखा था। मुझ पर इस इत्तिफ़ाक़िया मुलाक़ात का अजीब असर हुआ, और मुझे यह सोच कर अपनी ज़िंदगी पर शर्म आई कि यह क़दीम मुअम्मर होने के बावुजूद बिशारती ख़िदमत का आशिक़ और जमात की फ़लाहो-बहबूद का कैसा दिलदादा है। वह पंजाब की जमात के उन इबतिदाई मेमारों में से थे जिन्हों ने पंजाब में जमात की बुनियाद पर पहले रद्दे रखे। इस गुल्शने-जमात में बाज़शजर जो अब बा-रौनक हैं वह उन ही के हाथों ने लगाए हुए हैं। जब कभी पंजाब की जमात के बिखरे हुए औराक़जमा किए जाएँगे तो बुज़ुर्ग एहसानुल्लाह की कहानी जली क़लम से लिखी जाएगी।

ग़रज़एहसानुल्लाह हर छोटे बेड़ेसे पौलुस रसूल के तर्ज़अमल पर बात करके उन्हें यह मश्वरा देते कि बेशक जमात में बाज़ऐसे क़ाबिल ख़िदमों की ज़रूरत है जो अपना तमाम वक़्त इंजील की ख़िदमत में सर्फ़करके जमात से अपना गुज़ारा लें। लेकिन पंजाब के गाँव और क़स्बों में पौलुस रसूल के तर्ज़अमल का तजरिबा ज़रूर करना चाहिए ताकि जमात जल्द-अज़जल्द आज़ाद हो कर मग़रिब के रूपों से बेनियाज़हो जाए। मियाँ साहब पंजाब की जमात को कहते थे,

> بال بکشاد صغیر از شجرِ طوبیٰ زن
> حیف باشد چو تو مُرغے کہ اسیرِ قفسی!
>
> ऐ छोटे, अपने पर फैला कर तूबा नामी दरख़्त से चल
> अफ़्सोस ऐ मुर्ग़ क्योंकि तू पिंजरे का असीर है।

वह लीडरों को नसीहत करके कहते थे कि मुसीबत और बेहाली के तमाम बंधन तोड़दो ताकि मुर्ग़िहिम्मत उक़ाब की तरह फ़िज़ाए-आसमानी की ला-मुतनाही में उड़े अगर पौलुस रसूल के तर्ज़अमल पर चलोगे तो बेताक़ती तवानाई में, ग़फ़लत बेदारी में, बेपरो-बाली बुलंद परवाज़ीमें और मौत ज़िंदगी में पलक झपकते बदल जाएगी।

अगर जमात मग़रिब के क़ब्ज़े से आज़ाद हो कर बुलंद परवाज़ भी हुई तो उस के बालो-पर का सारा सामान बेकार है। लेकिन जमात के आक़िबत-ना-अंदेश लीडर मुस्तक़बिल की तरफ़ से आँखें बंद करके कहते थे,

> ग़नीमत है क़फ़स, फ़िक्रे-रिहाई क्या करें हम दम
> नहीं मालूम अब कैसी हवा चलनी है गुल्शन में!

नतीजे में हिंदुस्तान में इन्क़िलाब हर तरफ़ हो गया और मुल्क मग़रिब के हाथों से आज़ाद हो गया है, लेकिन जमात में असर-पज़ीरी का कोई निशान नज़र नहीं आता। उस के बालो-पर गिरे हुए हैं जिन में ज़िंदगी की कोई तड़प नज़र नहीं आती। उस का जिस्म बेताक़ती के मारे खड़ा नहीं होता। उस के चारों तरफ़ ज़िंदगी और हरकत का हंगामा बरपा है और हर जानिब बढ़ता चला जा रहा है। लेकिन जमात का दिल ऐसा ठंडा पड़ा है कि बाहर की गर्म-जोशी भी उसे गर्म नहीं कर सकती। मग़रिब की फ़िक्र-बंदियों का असर ज़ेहनों पर है। हज्जी नबी का कलाम जमात पर सादिक़ आता है,

> तुम ने बहुत बीज बोया लेकिन कम फ़सल काटी है। तुम खाना तो खाते हो लेकिन भूके रहते हो, पानी तो पीते हो लेकिन प्यासे रहते हो, कपड़े तो पहनते हो लेकिन सर्दी लगती है। और जब कोई पैसे कमा कर उन्हें अपने बटवे में डालता है तो उस में सूराख़ है।" रब्बुल-अफ़्वाज फ़रमाता है, "अपने हाल पर ध्यान दे कर उस का सहीह नतीजा निकालो!" (हज्जी 1:6-7)

सूद और नुक़्सान की इस महफ़िल में कामयाबी का जाम कभी आक़िबत-ना-अंदेशों और कोताह दस्तों के लिए नहीं भरा गया।

15 आर्च डीकन आफ़दिल्ली

आर्च डीकन का ओहदा

जब बिशप लीफ़्राए लाहौर के बिशप हुए तो उन्हों ने यह तज्वीज़पेश की कि हिंदुस्तानी जमातों के लिए एक आर्च डीकन हो। यह आर्च डीकन अंग्रेज़न हो बल्कि हिंदुस्तानी हो। इस ओहदे के लिए उन्हों ने एहसानुल्लाह का नाम पेश किया। यह सुन कर सरकारी हलक़ेंमें खलबली मच गई और मिशनरी घबरा उठे कि एक देसी, और वह भी एहसानुल्लाह जैसा शख़्स उन पर आर्च डीकन मुक़र्रर हो। उन्हों ने एड़ी-चोटी का ज़ेर लगाया कि बिशप साहब किसी अंग्रेज़मिशनरी को आर्च डीकन होने के लिए पेश करें। लेकिन उन की एक न चली।

एहसानुल्लाह को इस ओहदे पर पाँच साल के लिए मुक़र्रर किया गया। उन्हें 1911 में दिल्ली का अव्वलीन आर्च डीकन बनाया गया। उन के सपुर्द यह ख़िदमत की गई कि वह हिंदुस्तानी जमातों की रूहानी ज़िंदगी की निगाह-दाशत करें। मिशन स्कूलों में इंजील की तालीम का ख़ास ख़याल रखें। हिंदुस्तानी जमातों के ज़रूरत का काम उन के हाथों में दे दिया गया। और जो मसीही दूरो-दराज़मक़ामात में अकेली जगहों में रहते थे वह उन की निगरानी में कर दिए गए।

जिस रोज़उन्हें इस ओहदे पर मुतमक्किन किया गया उन्हों ने लाहौर के कथीड्रल में अंग्रेज़ी ज़बान में वाज़किया। उन की सनद की आयत यह थी,

> इब्ने-आदम भी इस लिए नहीं आया कि ख़िदमत ले बल्कि इस लिए कि ख़िदमत करे और अपनी जान फ़िदया के तौर पर दे कर बहुतों को छुड़ाए। (मत्ती 20:28)

उन्हों ने दौराने-वाज़ यूहन्ना 13:1-20 को और फ़िलिप्पियों 2:7 वग़ैरा मक़ामात को इस तौर से पेश किया कि तमाम कथीड्रल की जमात पर बेख़ुदी तारी हो गई। उन के अलफ़ाज़ का इंतख़ाब और तराश-ख़राश, उन का अंदाज़े-बयान, उन के कलाम की बेसाख़्तगी और जोश ने तमाम जमात को यक-सर महवो-मदहोश कर दिया। उन की नवाए-शोला असर ने कथीड्रल में महशर बरपा कर दिया। उन के लफ़्ज़ क्या थे, चलती हुई शम्शीरें थीं जो लोगों के सीनों और दिलों को बेइख़्तियार ज़ख़्मी करती गईं। इस बेड़ कथीड्रल की तारीख़ में पहली दफ़ आहो-बका और गिर्यो-ज़ारी की आवाज़ें वाज़ के दौरान बुलंद हुईं। बिशप लीफ़्राए ने लिखा,

> आर्च डीकन ने आज अपना वाज़ कथीड्रल में शाम की इबादत में किया। उन का वाज़ निहायत पुरजोश था। जमात के लोग मुतअस्सिर बल्कि मस्हूर हो गए। एक ख़ातून ने रोना शुरू कर दिया, और लेफ़्टिनेंट गवर्नर का दिल भी दहल उठा।

दिल्ली के आर्च डीकन होने की हैसियत से एहसानुल्लाह ने लाहौर के उस्क़ुफ़ इलोक़ की उन तमाम जमातों का दौरा किया जो पंजाब, सूबाए-सरहद, सिंध, बलोचिस्तान, सूबाए-दिल्ली और "देसी रियासतों" में क़ायम थीं। उन का सदर-मक़ाम टोबा टेक सिंह था जहाँ से वह मतअद्दिद दफ़ उन जमातों में गए। अपने ख़ुसूसी वाज़ों से उन्हों ने तमाम उस्क़ुफ़ इलोक़ को न सिर्फ़ बेदार कर दिया बल्कि जमातों में नई ज़िंदगी फूँक दी।

चर्च मिशन के कुछ अंग्रेज़ मिशनरी हसद के मारे उन से जलते थे, लेकिन वह उन की बातों की रत्ती भर पर्वा नहीं करते थे। एक मिशनरी ने तो यहाँ तक जुरअत की कि इबादतगाह में इबादत से पहले दाख़िल होने के वक़्त उन के पीछे खड़ा हो गया गोया वह ओहदे में आर्च डीकन से बड़ा है। उन्हों ने उसे अपने आगे चलने का इशारा किया जिस से उसे बड़ी ख़िफ़्फ़त हासिल हुई। अमृतसर के मिशनरियों ने यह उड़

दिया कि वह अंग्रेज़ी में वाज़ नहीं कर सकते हालाँकि यह एक सेफ़ झूट था, क्योंकि वह अंग्रेज़ी ज़बान में क़दीरुल-कलाम थे और न सिर्फ़ इंगलैंड, अमरीका और कनाडा के ममालिक में वाज़ करते रहे थे बल्कि हर अंग्रेज़ी इबादतगाह की जमात में उन की ज़बान में वाज़ करके उन के दिलों को हिला दिया करते थे।

जब वह आर्च डीकन के ओहदे पर मुम्ताज़ थे तो पहली आलमगीर जंग छिड़ गई।

हिंदुस्तान के बर्तानवी हुक्मरान हर जायज़-नाजायज़ तरीक़े से भर्ती करते चले जाते थे। कुछ अंग्रेज़ मिशनरी मिम्बर पर से लोगों को फ़ौज में भर्ती होने की नसीहत करते थे बल्कि चंद मिशनरी तो इंजील जलील के परचार का काम भी छोड़कर तमाम वक़्त लोगों को भर्ती करने में सर्फ़ करते थे।

उन अय्याम में पंजाब के लेफ़्टिनेंट गवर्नर ने मियाँ साहब को बुला कर कहा कि आप के ज़िमे मैं ने एक हज़ार लोगों को फ़ौज में भर्ती करने का काम किया है।

उन्हों ने उसे जवाब दिया, "जनाब, ज़मीन के बादशाहों के लिए भर्ती करना मेरा काम नहीं है। मैं बादशाहों के बादशाह के लिए भर्ती करने पर मामूर हूँ। ख़ुदावंद मसीह ने फ़रमाया है कि ज़ालिम का मुक़ाबला न करो। जंग करना किसी ईसाई का काम नहीं है।" यह टिका सा जवाब सुन कर लेफ़्टिनेंट गवर्नर अपना सा मुँह ले कर रह गया।

मियाँ साहब रूसी मुसन्निफ़ टोलस्टोय के बड़े मद्दाह थे, क्योंकि वह कहता था कि ख़ुदावंद के पहाड़ी वाज़ के अह्काम पर चलना हर इन्फ़िरादी, मिल्ली और क़ौमी ज़िंदगी के लिए लाज़िमी है। मियाँ साहब अक्सर कहा करते थे कि गांधी जी गो हिंदू हैं, लेकिन उन्हों ने टोलस्टोय से पहाड़ी वाज़ के अह्काम पर अमल करना सीखा है, और वह पहले शख़्स हैं जिन्हों ने ख़ुदावंद के इन उसूलों का क़ौमी ज़िंदगी पर इत्लाक़ किया है। इस का नतीजा यह होगा कि अंग्रेज़ बग़ैर खून-खराबे के

हिंदुस्तान छोड़कर चले जाएँगे और हिंदुस्तान की ग़ुलाम जमातें मसाइब में मुब्तला हो जाएँगी।

लखनऊ की कान्फ़्रेंस (1911)

1911 में मियाँ साहब लखनऊ की उस कान्फ़्रेंस में शरीक हुए जिस में ग़ैर-ममालिक की वह चीदा हस्तियाँ आईं जो अहले-इस्लाम में मुद्दतुल-उम्र काम करती रही थीं। डाक्टर समूएल ज़्वेमर उस कान्फ़्रेंस के सदर थे। तमाम एशिया और अफ़्रीक़ के नुमाइंदे वहाँ इस ग़रज़ से जमा हुए कि एक दूसरे के तरीक़े से वाक़िफ़ हों जो अहले-इस्लाम में तबलीग़ी ख़िदमत के लिए इस्तेमाल होते हैं। यह नुमाइंदे मुद्दत से मियाँ साहब को देखने के ख़्वाहिशमंद थे, क्योंकि उन का नाम चर्च मिशन पंजाब और लंदन, अमरीका और कनाडा के अख़्बारों के ज़रीए उन ममालिक में पहुँच चुका था।

यह कान्फ़्रेंस लखनऊ में एक हफ़्ते तक[1] होती रही। मियाँ साहब ने उस में नुमायाँ हिस्सा लिया और मुसलमानों में इंजील जलील फैलाने के लिए बाज़ निहायत मुफ़ीद मश्वरे दिए। अगर उस कान्फ़्रेंस की रूदाद पर ग़ौर किया जाता और हिंदुस्तान में उस की क़रार-दादों पर अमल किया जाता तो अब तक हज़ारों मुसलमान ख़ुदावंद मसीह के फ़रमाँ-बरदार हो गए होते। लेकिन यहाँ अब ऐसे मिशनरी आ गए थे जिन्हों ने अपनी तमाम तवज्जुह उस काम में लगा दी थी जो अछूत ज़ातों में हो रहा था। उन्हों ने तालीम-याफ़्ता तब्क़े की तरफ़ से बेपर्वाई इख़्तियार कर ली थी, क्योंकि उन में तबलीग़ी काम करने के लिए अरबी, फ़ारसी, क़ानो-हदीसो-फ़िक़्ह के इल्म की ज़रूरत थी, और उन बेचारों में न लियाक़त-ओ-क़ाबिलियत थी और न सब्र था। वह फ़ौरी नतायज चाहते थे।

[1] अज़ 23 जनवरी ता 28 जनवरी

मुझे याद है कि उन दिनों में एक मिशनरी से यह सुन कर कि उस ने कभी क़ुरान नहीं पढ़ा मैं ने उसे क़ुरान का अंग्रेज़ी तर्जुमा पढ़ने को दिया। यह किताब छः माह तक उन की अलमारी के ऊपर पड़ी रही हत्ता कि उस पर गर्द जम गई। उस मिशनरी का रवय्या देख कर किताब उठा लाया। अब मुसलमानों में काम करने का एहसास मसीह की जमात में इस क़दर मद्धम और धुँधला हो गया है कि इस को अज़-सरे-नौ उजागर करने में कई साल दरकार होंगे। ख़ुदा करे कि यह एहसास जल्दी पनपने पाए।

> काम थे बहुत, पर मीर,
> हम ही फ़ारिग़ हुए शताबी से!

अपनी मदद आप पर ज़ोर

आर्च डीकन के ओहदे के अय्याम मैं मियाँ साहब हमेशा हिंदुस्तानी जमात की हाजतमंदी का सवाल सताता रहा। वह ख़ुदा से दुआ करते थे कि ख़ुदा उन्हें वह दिन जल्द दिखाए जब हिंदुस्तानी जमात मग़रिब के रूपों से आज़ाद हो कर इस सोने के हार को अपने गले से उतार फैंके और मग़रिबी जमातों की फ़िरक़ा-बंद की तफ़रीक़ से आज़ाद हो जाए। चर्च मिशन की 1912 रिपोर्ट में वह लिखते हैं,

> जमात उस बच्चे की तरह है जो डेढ़ फ़ुट क़द का है। वह अपने पिंगूरे को पसंद करता है और अपने मग़रिबी सरपरस्तों की दी हुई दूध की बोतल को हर-दम मुँह से लगाए रखता है। नतीजा यह है कि जब उसे बड़ा क़द पाने की वजह से अपने महबूबतरीन गहवारे को मज्बूरन छोड़ना पड़ता है तो वह दो बेसाखियों के सहारे के बग़ैर चल ही नहीं सकता। जमात के दो सहारे परदेसी मुबल्लिग़ीन और रुपया है जो मग़रिबी ममालिक से आता है। वहाँ की सोसायटियों ने इस मुल्क की जमात को फ़य्याज़ी से

> ज़ो-माल दिया है जिस का नतीजा यह है कि हमारी जमात के शुरका ने ख़ुदावंद के मुबारक क़ौल को पसे-पुश्त फैंक दिया है कि देना लेने से ज़्यादा मुबारक है।

उन ही अय्याम में शहरे-लाहौर में एक बड़ा जलसा हुआ जिस में अमरीका के मश्हूर डाक्टर माट[1] आए हुए थे ताकि मुख़्तलिफ़ मिशनों की बाहमी मुख़ालिफ़त को दूर करने के लिए एक मजलिसे-शूरा क़ायम करें जिस में तमाम मिशनों के मिशनरी और जमातों के सरबराह शामिल हों और ख़िदमत एक दूसरे के तआवुन से हो। इस जलसे के सदर बिशप लीफ़रॉए थे। डाक्टर यूइंग और डाक्टर के.सी. चेटर्जी जैसी हस्तियाँ मौजूद थीं। तमाम मिशनों के सरबराह मौजूद थे।

जब मुख़्तलिफ़ जमातों की रुसूमो-रिवाज की पाबंदियों और मुख़्तलिफ़ मिशनों के ज़ाबितों की पेचीदा वुजूद का ज़िक्र आया तो एहसानुल्लाह ने तक़रीर के दौरान कहा,

> हिंदुस्तानी ईसाइयों के लिए मुख़्तलिफ़ ग़ैर-मुल्की जमातों की पाबंदियाँ और उन के ज़ाबितों की पेचीदगियाँ भूल-भुलियों की मानिंद हैरान और परेशान-कुन हैं। मैं इन भूल-भुलियों में बपतिस्मे के वक़्त से ले कर उस वक़्त तक परेशान फिरता रहा हूँ। इन की तंगो-तार गलियाँ मसीह के नूर से मनव्वर नहीं हैं। जब तक हम इन में फिरते रहेंगे हम को रोशनी नज़र न आएगी और न आ सकती है। हम दाऊद की तरह हैं जिस को साऊल ने ज़बरदस्ती अपनी ज़िरा-बक्तर पहना कर पीतल का ख़ोद उस के सर पर रख दिया और अपनी तलवार उस पर कस दी। इन चीज़ों को पहन कर वह ग़रीब एक क़दम भी न चल सका। इसी तरह आप के मग़रिबी फ़िर्क़ों की ज़िरा-बक्तर और आप के ज़ाबितों के ख़ोद और तलवार हमारे काम के नहीं। उन से न साऊल जाती जालूत को क़त्ल कर सका और न दाऊद।

[1] Dr. Mott

मैं आप को ख़ुदा का वास्ता दे कर कहता हूँ कि यह तफ़रीक़ जो आप की क़ौमी तारीख़ में ख़ून के हरफ़ों से लिखे हैं हमारे मुल्क से ले जाएँ। हम को न उन की ज़रूरत है और न यह हमारे देश की तारीख़ के साथ वास्ता रखते हैं। हम दीगर मज़हिब से इन हथियारों को बांध कर जंग नहीं कर सकते। उलटा लोग हमें ठट्ठा करते हैं और ख़ुदावंद के नाम की तकफ़ीर होती है। उन्हों ने हम को उस ज़िरा-बक्तर में जकड़ दिया है जिस को आप हमें उतारने भी नहीं देते। हम इन हथियारों के बग़ैर ही अच्छे हैं। दाऊद अपनी लाठी और चिकने पत्थरों को सीधी-सादी झोली में डाल कर जालूत के मुक़ाबले में कामयाब हुआ। हम इंजील का सादा पैग़ामे-नजात और सीधी तालीम से हिंदूमत और इस्लाम पर ग़ालिब आ सकते हैं जो ज़िंदा ख़ुदा को बदनाम करते हैं। इन को हम ख़ुदावंद मसीह के इस्मे-आज़िमा से शिकस्ते-फ़ाश दे सकते हैं। मग़रिब के लम्बे चौड़े बानीने-जमात और रुपए की बजाए हमारे नाले के पाँच पत्थर ही काफ़ी हैं। आप रहम करें और हम को हमारे हाल पर ही छोड़ दें।

जमात की वुजूद ने ख़ुदावंद रब्बुल-अफ़्वाज की फ़ौजों को बाँट रखा है। इत्तफ़ाक़ की बजाए यहाँ नफ़ाक़ है। हम मुत्तहिदा कोशिश कैसे कर सकते हैं? आप के ज़रीए अंग्रेज़ी ईसाइयत जमात में आ घुसा है, और वह एक ऐसी बुरी रूह है जो दुआ और रोज़े से ही निकल सकते है। हम न पंजाबी रहे और न अंग्रेज़ बन सके। कव्वा हँस की चाल चला और अपनी भी गँवा बैठा। हम अपने देस में रहते हुए बिदेशी बन रहे हैं। नतीजे में हम में और हमारे ग़ैर-मसीही भाइयों में जुदाई की दीवार खड़ी हो गई है। मसीही ईमान को एक बिदेशी मज़हब तसव्वुर किया जा रहा है और मशरिक़ी मसीह को उस के अपने मशरिक़ के लोग मग़रिबी मसीह ख़याल कर रहे हैं। हमारे मुल्क में स्वदेशी की लहर शुरू हो गई है। अब वक़्त है कि मग़रिबी मिशनों और फ़िर्क़ों के लीडर और उन के हामी इस हक़ीक़त को मद्दे-नज़र रख कर अपनी पालिसी और तर्ज़े-अमल को पूरे तौर पर

तबदील कर दें। अगर कुछ देर यही हाल रहा तो इन फ़िरक़ाबंदियों की वजह से हमारे मुल्क में मसीही ईमान का मुस्तक़बिल तारीक हो जाएगा।

होली ट्रिनिटी पर तक़र्रुर

1914 के आख़िर में होली ट्रिनिटी चर्च लाहौर की जमात ने दरख़्वास्त की कि एहसानुल्लाह उन के पासबान हों। लेकिन मियाँ साहब ने कहा कि अगर मैं लाहौर की जमात का पासबान हुआ तो मैं अपने ओहदे के फ़रायज़ को जो ख़ुदा ने मेरे सपुर्द किए हैं पूरा नहीं कर सकूँगा।

लोगों के इसरार पर उन्हों ने यह मंज़ूर कर लिया कि वह दो साल लाहौर में रह कर जमात की पासबानी के लिए किसी शख़्स की तरबियत कर दें। 1918 के आग़ाज़ में वह लाहौर आए और अपने पुराने हम-वतन दोस्त दीना नाथ के बेटे काँशी नाथ को लाहौर की जमात की पासबानी के लिए तैयार करते रहे। उन दिनों में वह लाहौर की पासबानी के इलावा झंगबार की निगरानी करते थे और आर्च डीकन के ओहदे के फ़रायज़ को भी सरअन्जाम देते थे हालाँकि उन की उम्र साठ साल के क़रीब हो गई थी।

जब वह लाहौर आए तो उन्हों ने जमात में यह तहरीक शुरू की कि वह अपने अख़राजात की ख़ुद ज़िम्मेदार हो। क्योंकि यहाँ की जमात उन दिनों एक मालदार जमात थी जिस के शुरका अच्छे अच्छे ओहदों पर फ़ायज़ थे। चुनाँचे इस तहरीक के शुरू किए जाने के चंद माह के अंदर अंदर यह जमात अपनी मदद आप की जमात हो गई।

उस ज़माने में इबादतगाह के सामने एक वसी इहाता ख़ाली पड़ा था। पासबान का मकान खन्डरात से बेहतर न था। लाहौर का शहर तरक़्क़ी करता जाता था, और इबादतगाह के चारों तरफ़ दुकानें और बैंक थे। यह देख कर एहसानुल्लाह ने यह तज्वीज़ पेश की कि इहाते की सेफ़ ज़मीन पर दुकानात और इमारात तामीर की जाएँ और पासबान के लिए एक

घर बनाया जाए। लेकिन दिक़्क़त यह थी कि इहाता और इबादतगाह सब लंदन की सोसायटी के नाम सरकारी काग़ज़ात में दर्ज थे। लिहाज़ क़ानूनी मश्वरा ले कर मियाँ साहब ने यह तज्वीज़ पेश की कि एक होली ट्रिनिटी चर्च ट्रस्ट क़ायम की जाए जिस के नाम इबादतगाह और उस के साथ की तमाम मुल्हिक़ ज़मीन मुंतक़िल की जाए। जब सरकारी तौर पर इंतक़ाल हो जाए तो इस ख़ाली ज़मीन पर दुकानें और इमारतें बनाई जाएँ जिन के किराए से न सिर्फ़ लाहौर में तबलीग़ी और जमात का काम चलाया जाए बल्कि उस्की इलोक़े के काम को भी मदद दी जाए। यों रफ़्ता रफ़्ता पंजाब की तमाम जमातें मग़रिबी रुपए से आज़ाद हो जाएँ।

लंदन की चर्च मिशनरी सोसायटी के कारकुनों ने यह तज्वीज़ मंज़ूर कर ली। मियाँ साहब की तज्वीज़ के मुताबिक़ एक होली ट्रीनिटी चर्च ट्रस्ट क़ायम किया गया जिस के सदर आर्च डीकन थे। इस ट्रस्ट के नाम इबादतगाह और सेफ़ ज़मीन मुंतक़िल की गई। इस क़ानूनी कार-रवाई का पूरा होना ही था कि हर तरफ़ से दरख़्वास्तें आनी शुरू हो गईं कि दुकानात और इमारात हमें किराए पर दिए जाएँ। चर्च मिशन ने भी फ़राख़दिली से काम ले कर इन दुकानों और इमारतों के बनाने में माली इम्दाद दी। सेंट्रल बैंक आफ़ इंडिया ने चंद शरायत के मा-तहत वहाँ इमारत बना ली। पासबान के लिए नया मकान बन गया, और मियाँ साहब की कोशिशों की बदौलत हज़ारों रुपए सालाना की आम्दनी इस वक़्फ़शूदा जायदाद से आने लगी।

मियाँ साहब की दिली ख़्वाहिश थी कि उस्की इलोक़े के तमाम बड़े शहरों में लाहौर की तरह वक़्फ़ क़ायम हो जाएँ ताकि इन औक़ाफ़ और जायदादों के ज़रीए पंजाब की हर जमात मुख़्तलिफ़ मग़रिबी मिशनों के बंधनों से आज़ाद हो कर अपने पाँओ पर खड़ी हो जाए और ग़ैर-मसीहियों को ख़ुदावंद के क़दमों में लाए। यों मग़रिब की फ़िक्र-बंदियों की ज़ंजीरें कट जाएँगी और एक वाहिद आज़ाद हिंदुस्तानी जमात वुजूद में आएगी।

जब मियाँ साहब लाहौर के पासबान थे तो वह लाहौर के मसीहियों को हमेशा यही नसीहत किया करते थे कि मग़रिब की आदातो-अत्वार से बचे रहो और ईसाई के दिल-दादा होने के बजाए पंजाबी बन कर रहो। वह अक्सर इस मज़्मून पर वाज़ भी किया करते थे, क्योंकि वह देखते थे कि जमात में रोज़ब-रोज़ "अंग्रेज़ियत" बढ़ती जाती है और मसीही हर जगह इस का शिकार हो रहे हैं।

बाज़ ईसाई जब अपने घरों से निकलते तो कोट पतलून और हैट पहन कर सड़कों पर अपने भाई और बाप से बात करना तो दरकिनार, उन की तरफ़ देखना भी बाइसे-शर्म ख़याल करते थे। बाज़ अस्हाब ऐसे भी थे जो थे तो सौ-फ़ीसदी पंजाबी, लेकिन अपने आप को ऐंग्लो-इंडियन कहते और अपने ईसाई भाइयों की तरफ़ तकते भी न थे। यह बातें देख कर मियाँ साहब कुढ़ते थे। वह हर ऐसे शख़्स को खुल्लम-खुल्ला मलामत करने से ज़रा न झिजकते थे। उन दिनों में रेलवे की गाड़ियों के बाज़ डिब्बे सिर्फ़ यूरोपियनों और ऐंग्लो-इंडियन लोगों के लिए मख़्सूस हुआ करते थे। जिस में इंटर-क्लास और थर्ड-क्लास के टिकट वाले सफ़र किया करते थे। अगर कहीं मियाँ साहब हिंदुस्तानी ईसाइयों को उन डिब्बों में सफ़र करते पा लेते तो उन बेचारों की शामत आ जाती। वह आर्च डीकन होते हुए और लाहौर जैसे मग़रिब-ज़दा शहर में सुकूनत करते हुए भी हमेशा पंजाबी लिबास में मल्बूस रहे। वही पगड़ी, वही खुले पायंचों वाले पाजामा। लम्बा कोट और पंजाबी जूती पहनते रहे।

वह अक्सर जमातों को कहा करते थे, "वक़्त को ग़नीमत जानो, क्योंकि बुरे दिन आ रहे हैं। हिंदुस्तान में आज़ादी की लहर बेपनाह है और हमारा मुल्क सल्तनते-बर्तानिया से आज़ाद हो कर रहेगा। कुछ तो आक़िबत-अंदेशी से काम लो। ज़माने की रफ़्तार देखो और अपनी चाल पर नज़र करो। तमाम क़ौम तेज़ी से आगे बढ़ रही है। मसीह की जमात बहुत पीछे रह गई है।" ख़ुदावंद मसीह ने सच फ़रमाया है,

> रियाकारो! तुम आसमानो-ज़मीन के हालात पर ग़ौर करके सही नतीजा निकाल लेते हो। तो फिर तुम मौजूदा ज़माने के हालात पर ग़ौर करके सही नतीजा क्यों नहीं निकाल सकते? (लूक़ा12:56)

एक दफ़उन्हों ने लाहौर की जमात को कहा, “मैं गाँव की जमातों के बाद नबी यरमियाह की तरह आप के पास आया हूँ।”

> मैं ने सोचा, “सिर्फ़ग़रीब लोग ऐसे हैं। यह इस लिए अहमक़ाना हरकतें कर रहे हैं कि रब की राह और अपने ख़ुदा की शरियत से वाक़िफ़नहीं हैं। आओ, मैं बुज़ुर्गों के पास जा कर उन से बात करता हूँ। वह तो ज़रूर रब की राह और अल्लाह की शरियत को जानते होंगे।” लेकिन अफ़सोस, सब के सब ने अपने जूए और रस्से तोड़डाले हैं। (यरमियाह 5:4-5)

> मुझे ख़ुदा ने आप लोगों के पास भेजा है ताकि वह मेरे वसीले से निढाल हाथों को तक़वियत दूँ, डाँवाँडोल घुटनों को मज़बूत करूँ। (यसायाह 35:3)

> मेरे प्यारे बच्चो! अब मैं दुबारा आप को जन्म देने का सा दर्द महसूस कर रहा हूँ और उस वक़्त तक करता रहूँगा जब तक मसीह आप में सूरत न पकड़े (गलतियों 4:19)

16 ख़िदमत के आख़िरी अय्याम

कैनन का ओहदा

दिसंबर 1916 के आख़िर में जब आर्च डीकन के ओहदे की मीयाद ख़त्म होने वाली थी तो एहसानुल्लाह ने बिशप डरंट से जो बिशप लीफ़रॉए के जाँनशीन थे कहा, “मैं सुनता हूँ कि बाज़ लोगों ने आप से दरख़्वास्त की है कि इस मीयाद की तौसी की जाए। लेकिन मैं यह नहीं चाहता।”

जब उन्हों ने सबब दरयाफ़्त किया तो मियाँ साहब ने कहा, “अब मेरी जिस्मानी ताक़त वह नहीं रही जो पाँच साल पहले थी, और यह मेरी आदत नहीं कि मैं कोई ज़िम्मेदारी उठाऊँ जिस को मैं अच्छी तरह निबाह नहीं सकता। गुज़श्ता पाँच साल में मुझे उस के इलोक़े के हर शहर और क़स्बे की जमात में दौरा करना पड़ा है। दूर-उफ़्तादा ईसाइयों की निगरानी करनी पड़ी है जो अकेले किसी कोने में पड़े थे। झंगबार का इलाक़ा मेरे सपुर्द रहा है और लाहौर की जमात का भी पासबान रहा हूँ। इन फ़राइज़ की अदाइगी में मुझे बहुत दौड़धूप करनी पड़ी है। इस बोझ को मेरा जिस्म बरदाश्त नहीं कर सका। इस के इलावा अभी पाँच माह हुए हैं मेरा छोटा भाई रहमतुल्लाह फ़ौत हो गया है जो मेरे लिए एक जान-काह सदमा साबित हुआ है। मेरी रूह तो मुस्तइद है, लेकिन जिस्म कमज़ोर हो गया है।”

बिशप साहब ने कहा, “मैं नहीं जानता कि आप की मदद के बग़ैर मैं किस तरह इस लम्बी चौड़ी डायोसीस का काम चला सकूँगा। मुझे बिशप हुए अभी तीन साल भी नहीं हुए, लेकिन मैं आप की बात पर अमल करूँगा।”

चुनाँचे जब मियाँ साहब की पाँच-साला मीयाद ख़त्म हुई तो वह इस ओहदे से सबुक-दोश हो गए।

लेकिन चूँकि बिशप नए थे और उन्हें जमातों का कोई तजरिबा न था क्योंकि वह बिशप होने से पहले मिशन कॉलेज आगरा के प्रिंसिपल थे इस लिए उन्हों ने मियाँ साहब को लाहौर के केथीड्रल का कैनन बना दिया ताकि उन के दानिशमंदाना मश्वरों से और उन के रूहानी तजरिबों से ख़ुद मुस्तफ़ीद हो सकें। मियाँ साहब 1917 के शुरू से 1922 के आख़िर तक छः साल लाहौर केथीड्रल के एज़ाज़ी कैनन रहे और बिशप को उस इलाक़े की अंग्रेज़ी और हिंदुस्तानी जमातों के मसायल को हल करने में मदद देते रहे।

कैनन के दौरे

जब एहसानुल्लाह लाहौर से टोबा टेक सिंह वापस गए तो गो मेहनतो-मशक़्क़त करने और तक़रीबन तमाम वक़्त उस इलाक़े की जमातों में दौरा करने से उन का मज़बूत और तनावर जिस्म अब निढाल हो चुका था ताहम चर्च मिशन लंदन की रिपोर्ट हमें बताती है कि

> वापसी पर उन्हों ने अपने इलाक़े का दौरा शुरू कर दिया और मुश्किल से कोई गाँव रह गया होगा जिस में वह न गए हों।

इस दौरे में उन्हों ने 70 बच्चों को बपतिस्मा दिया और जगह-ब-जगह जमातों को उभारा कि वह अपने फ़रायज़ को पहचानें। वह ख़ानदानी पाकीज़गी का ख़ास ख़याल रखें ताकि उन के घर ख़ुदा के पाक रूह के मस्कन होने के लायक़ हों। वह जमात में बाहमी मुहब्बत के साथ रहें ताकि सब लोग जान लें कि वह मसीह ख़ुदावंद के शागिर्द हैं। साथ साथ वह नजात का पैग़ाम अपने गाँव के हिंदू, मुसलमान, सिक्ख और बुतपरस्त हमसाययों को सुनाया करें। उन्हों ने जिस्मानी कमज़ोरी के बावुजूद अपना दौरा मुक़द्दस हफ़्ते से पहले ख़त्म कर लिया।

ईदे-क़ियामत के बाद पसरूर की जमात ने उन्हें दावत दी कि आप हमारे ख़ादिमों और गाँव के मुबल्लिग़ों और उस्तादों के समर स्कूल में

आ कर जलसे करें ताकि जिन जमातों का पौदा आप ने बीस बरस हुए लगाया था वह ज़्यादा फल ला कर ख़ुदा के जलाल का बाइस हो। एहसानुल्लाह गर्मियों में पसरूर गए और वहाँ दो हफ़्ते क़ियाम करके ऐसी दिल को हिला देने वाली तक़रीरें कीं कि हाज़िरीन की तबीअत का सुकून हिल गया। उन के ज़मीर काँटों की तरह उन के दिलों में चुभने लगे। अपनी मदद आप के नाम-निहाद पासबानों की सरमस्तियाँ ख़त्म हुईं, और उन्हों ने ख़ुदा से अह्द कर लिया कि हम मुख़्लिस और पाक-अमल ज़िंदगियाँ बसर करके नेक-नीयती से ख़ुदा और उस की इंजील की ख़िदमत करेंगे।

जब वह पसरूर से टोबा गए तो उन की तबीअत ज़्यादा निढाल हो गई। लेकिन इस के बावुजूद मुँह-अँधेरे उठने की आदत और मसरूफ़ियात पहले की तरह बराबर जारी रहीं। उन का घर हर वक़्त खुला रहता था, और मुलाज़िमों को ताकीद थी कि किसी शख़्स को आने से न रोकें। तो भी मुलाज़िम दोपहर के वक़्त बाज़औक़ात ज़ुरअत से काम ले कर लोगों को रोक देते थे। अगरचे जब मियाँ साहब को मालूम हो जाता तो वह उन से नाराज़ होते थे। एक मौक़े का ज़िक्र है कि वह किसी गाँव से आए और थकावट से चूर हो कर लेट गए। नींद आ गई। इतने में एक शख़्स आया। मुलाज़िम से कहने लगा, "पासबान साहब से कहो कि मिस्टर ..."

अभी वह इतना ही कहने पाया था कि मुलाज़िम जिस का नाम लद्धू था बिफर कर बोला, "तुम लोग बेचारे बूढ़े को दम लेने नहीं दोगे। इस को ख़त्म करके ही छोड़ोगे। वहाँ बैठ जाओ। और दम लो।"

मुलाज़िम की आवाज़ इतनी ऊँची थी कि मियाँ साहब जाग पड़े उन्हों ने मुलाज़िम को आवाज़ दी। जब वह आया तो उन्हों ने ऊँची बोलने का सबब दरयाफ़्त किया और हुक्म दिया कि उस शख़्स का नाम दरयाफ़्त करो और उसे अंदर भेज दो। बाहर जा कर उस ने नाम दरयाफ़्त किया तो जवाब मिला कि "मिश्टर।"

मुलाज़िम को झिड़क मिल चुकी थी। वह तैश में आ कर कहने लगा, "ओह, मिश्टर तो हम सभी हैं, तुम अपना नाम-पता बताओ।" जब मुलाज़िम उसे अपने साथ अंदर ले गया तो मियाँ साहब ने मुलाक़ाती को खातिरदारी से अपने पास बिठाया और मुलाज़िम को कहने लगे, "लद्धू, हम तुम से इस बात पर ख़फ़ा नहीं हैं।"

लद्धू ने जवाब दिया, "जनाब, मैं भी आप से ख़फ़ा नहीं हूँ। आप ज़रा भी आराम नहीं करते। यह शख़्स एक दो घंटे बैठ सकता था।"

लेकिन जिस्म की ना-तवानी और कमज़ोरी के बावुजूद मियाँ साहब हर मुलाक़ाती से ख़ुशी से मिलते। बसा-औक़ात जमातों के मुआमलात और घरेलू हालात की वजह से वह परेशान होते लेकिन जब कोई शख़्स उन्हें मिलने आता वह उसे देख कर ऐसे ख़ुश हो जाते कि उस का दिल फ़िक्रों के बोझ से हल्का हो जाता और उन के बश्शाश चेहरे को देख कर वह ख़ुश हो जाता था।

ग़रज़ मियाँ साहब की जिस्मानी कमज़ोरी बढ़ती गई। जब मिशन के सेक्रेटरी को ख़बर मिली तो उस ने यह तज्वीज़ की कि वह दो माह के लिए कराची चले जाएँ ताकि वहाँ जा कर सेहतमंद हो जाएँ। कराची की आबो-हवा उन के मुवाफ़िक़ आई। जब वह सितंबर के आख़िर में वापस टोबा आए तो उन की हालत पहले से बहुत बेहतर हो चुकी थी। उन्हों ने फिर आते ही गाँव गाँव का दौरा शुरू कर दिया। जमातों में जा-ब-जा गए। मुबल्लिग़ों के काम को देखा। उस्तादों के स्कूलों और नायट स्कूलों का मुआइना किया। हर कारिंदे को सलाह-मश्वरा दिया ताकि वह ख़ुदावंद के हाथ में बेहतर औज़ार हो और तुनदही से जमात की ख़िदमत करे। इस्तिह्काम पाने वाले उम्मीदवारों का हर गाँव में जा कर इमतहान लिया।

1918 का साल इनफ़्लुएंज़ा का साल था। जब लोग धड़ाधड़ मर रहे थे तो मियाँ साहब निडर हो कर बीमारों के पास जाते। उन के साथ दुआ करते, उन्हें ख़ुदा के पास जाने के लिए तैयार करते, उन्हें अशाए-

रब्बानी देते और उन की बेवाओं और यतीम बच्चों की परवरिश वग़ैरा का इंतज़ाम करते रहे। उस साल अम्वात इस कसरत से हुईं कि जब बिशप डरंट टोबा आए तो इस्तिह्काम के एक सौ से ज़्यादा उम्मीदवारों में से सिर्फ़ 47 पेश हो सके। बक़ि उम्मीदवार जिन की अक्सरियत जवानों की थी इनफ़्लुएंज़ा का शिकार हो चुके थे। बिशप साहब हैरान थे कि जिस्म की कमज़ोरी के बावुजूद मियाँ साहब जवानों की सी हिम्मत और जोश के साथ अपने काम में लगे रहते हैं।

वह ख़ुदावंद की ख़िदमत दिलो-जान से करने के आदी हो चुके थे। वह अपनी तबीअत के हाथों मज्बूर थे। और इस तबीअत का साँचा इतना पुख़्ता हो चुका था कि वह तोड़ा जा सकता था, लेकिन मोड़ा नहीं जा सकता था। बिशप साहब लिखते हैं,

> मुझे एहसानुल्लाह का काम देख कर अज़्हद ख़ुशी हुई है। बूढ़ापन और ज़ईफ़ी के बावुजूद वह अपने काम को इस मेहनत और जाँ-निसारी से करते हैं और उसे इस ख़ूबी से सरअन्जाम देते हैं कि इनसान अश अश करता रह जाता है।

उसी साल डाक्टर दीना नाथ प्रेतू दित्ता उन की मुलाक़ात करने को टोबा आए, क्योंकि उन्हों ने सुना था कि मियाँ साहब की तबीअत ना-साज़ रहती है। वह उन के साथ चंद एक जगहों में गए और ख़ुदा का काम देख कर ख़ुदा की बड़ाई करने लगे जिस ने उन्हें अपनी ख़िदमत के लिए बुलाया है। वह टोबा टेक सिंह के नायट स्कूल का काम देख कर बहुत ख़ुश हुए जिस में साठ बालिग़ईसाइयों को गुरमुखी सिखाई जा रही थी ताकि वह ख़ुदा का कलाम पढ़सकें। दोनों क़दीम दोस्त दुआ के बाद एक दूसरे से जुदा हुए और जाते जाते कह गए, “एहसान, अपनी सेहत का ख़याल रखो। ख़ुदा ने जो जिस्म तुम को दिया है उस पर रहम करो और उस से उस की ताक़त से ज़्यादा काम न लो।”

हक़ीक़त यह है कि एहसानुल्लाह की दिल की धड़कनें उन्हें कहाँ आराम लेने देती थीं। वह ख़ुदा के काम में ब-दस्तूर अपनी ख़ूबसी सरगर्मी और

गर्म-जोशी से मश्ग़ूल रहे। वह न सर्दी का लिहाज़करते थे, न गर्मी का। न दिन का लिहाज़करते थे, न रात का। जिस्म की थकावट की पर्वा किए बैग़ैर ख़ुदावंद का यह आशिक़काम करता गया और पर्वाने की तरह इंजील की शमा के चौगिर्द फ़िदा होता गया। लेकिन साथ ही जिस्म भी रोज़ब-रोज़निढाल होता गया।

चर्च मिशन के सेक्रेटरी उस वक़्त गफ़्फ़े जो उन्हें नारोवाल से जानते थे। 1921 में उन्हों ने मियाँ साहब को शिमला से चालीस मील परे कोटगढ़भेज दिया और कहा, "आप वहाँ क़ियाम करें और वहाँ से टोबा के इलोक़के काम की निगरानी करें। साथ साथ वहाँ के मिस्टर डेविड को प्रीस्ट के ओहदे के लिए तैयार भी कर दें।" चुनाँचे मियाँ साहब ने गर्मियों के महीने कोटगढ़में काटे। वहाँ इबादतों में वह वाज़करते थे जिन की आला रूहानियत दूर दूर से लोगों को कोटगढ़खैंच लाती थी।

जब साधू सुंदर सिंह ने सुना कि मियाँ साहब कोटगढ़आए हुए हैं तो वह उन से मिलने गए और उन के पास दस दिन क़ियाम किया। हम ख़याल कर सकते हैं कि यह दोनों मर्द जिन्हों ने अपनी ज़िंदगियाँ दीवानादार ख़ुदावंद की इंजील की ख़ातिर वक़्फ़कर दी थीं एक दूसरे की मुलाक़ात से किस क़दर महज़ूज़हुए होंगे। वह एक दूसरे के साथ रूहानी यगान्गत में रातों ख़ुदावंद से दुआ करने और उस की तारीफ़-हमद करने में गुज़ार देते थे। इस मुलाक़ात के दौरान साधू जी ने एक इतवार को वहाँ वाज़भी किया। इन दोनों मुक़द्दसों की यह आख़िरी मुलाक़ात थी। इस के बाद वह एक दूसरे से ख़ुदा की हुज़ूरी में आसमान पर मिले।

जब मियाँ साहब कोटगढ़से अक्तूबर में वापस आए तो उन की तबीअत क़दरे सँभल चुकी थी। पहाड़की आबो-हवा ने उन की सेहत को एक हद तक बहाल कर दिया था। वह कोसों चलने के आदी थे, और कोटगढ़में हसबे-आदत मीलों पैदल निकल जाते। धन सिंह साहब और डेविड साहब उन के हमराह होते थे जिन से वह लुतफ़े-मुहब्बत की

बातें किया करते और उन्हें रूहानी बरकात से मालामाल किया करते थे। उन की सोह्बत और पहाड़के क़ियाम ने उन की ख़राबीए-सेहत को बहुत हद तक दुरुस्त कर दिया, और वह टोबा आ कर हसबे-दस्तूर अपने काम में अपने ख़ूसी जोश के साथ मश्ग़ूल हो गए।

जब 1922 का मौसमे-बहार गुज़र गया तो मियाँ साहब की तबीअत मौसमे-गर्मा में ख़राब होनी शुरू हो गई। उन्हों ने कमेटियों के सिलसिले में लाहौर जाना था। इस सिलसिले में उन्हों ने वहाँ के डाक्टरों से मुआइना करवाया। डाक्टरों ने मश्वरा दिया कि वह या तो अपने काम में तन-आसानी इख़्तियार करें या ख़िदमत से फ़ारिग़ हो जाएँ। उन्हों ने जवाब दिया कि इंजील की तबलीग़ और जमात की ख़िदमत और फिर आराम और तन-आसानी! यह दो बातें मुतज़ाद हैं। मुझे मिशन की ख़िदमत से सबुक-दोश होना मंज़ूर है लेकिन मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकता कि इंजील की सी शानदार ख़िदमत में तन-आसानी से काम करूँ जिस में मेहनत की ज़रूरत है।

अह्बाब ने मश्वरा दिया कि आप इस गर्मियों के मौसम को और देख लें और पहाड़चले जाएँ। इस पर भी अगर तबीअत कमज़ोर ही रही तो फ़ारिग़-ख़िदमत हो जाएँ। आप की उम्र भी 65 साल की हो जाएगी।

अगर एहसानुल्लाह की रफ़ीक़ए-हयात उन के साथ होतीं और उन के खाने पीने सोने वग़ैरह की देख-भाल करतीं तो जैसा उन का बदन तनोमंद था और उन की आदात फ़ितरत के मुताबिक़ थीं वह इस उम्र में न सिर्फ़ जवाँ-हिम्मत और जवाँ-बख़्त होते बल्कि जवानों से भी बढ़कर काम करते और फिर भी जिस्म पर कोई बुरा असर न पड़ता। लेकिन घर का आराम उन के नसीब में न था। उन की रफ़ीक़ए-हयात को टोबा आने के बाद जुनून के शदीद दौरे होने लगे। अगरचे उन्हों ने इलाज किया, मगर बेफ़ायदा। उन्हों ने अपनी रज़ामंदी ज़ाहिर की कि उन की रफ़ीक़ए-हयात को मेंटल हस्पताल में दाख़िल किया जाए। लेकिन साथ ही यह कह दिया कि जब जुनून की तशद्दुदाना सूरत में इफ़ाक़ हो मुझे

इत्तिला दी जाए ताकि मैं उन्हें अपने साथ घर ले जाऊँ और उन की ख़िदमत ख़ुद करूँ। चुनाँचे ऐसा ही किया गया। जब उन की बीमारी में इस्लाह की सूरत नज़र आई तो वह उन्हें अपने साथ ले आए। घर में आ कर उन की तबीअत सँभल गई। सब ने ख़ुशी मनाई और ख़ुदा का शुक्र किया। लेकिन यह हालत देरपा न रही, और मर्ज़ पहले से भी ज़्यादा ज़ोर के साथ बढ़ गया यहाँ तक कि उन्हें दुबारा आगरा के मेंटल हस्पताल में भेजना पड़ा जहाँ वह कई साल रहीं।

इस बीमारी का असर मियाँ साहब पर यह हुआ कि उन्हें कभी घर का आराम न मिला। लेकिन उन्हों ने कभी इज़्तिराब का इज़हार न किया। यह क़ल्बी इज़्तिराब हमेशा दिल ही में रहा। गो दिल अश्क-बार था लेकिन आँखें हमेशा ख़ुश्क ही रहीं। वह अपनी तबीअत को ज़ब्त में लाने के आदी हो चुके थे। उन्हों ने इस सूरते-हाल को पूरे सब्र और सुकून से बरदाश्त किया, ऐसा कि उन के वक़ार के दामन पर कभी परेशानी का धब्बा न लगा। वह पौलुस रसूल की तरह कहते थे,

> लेकिन मुझे इन आला इन्किशाफ़ात की वजह से एक काँटा चुभो दिया गया, एक तक्लीफ़देह चीज़ जो मेरे जिस्म में धंसी रहती है ताकि मैं फूल न जाऊँ। इब्लीस का यह पैग़म्बर मेरे मुक्के मारता रहता है ताकि मैं मग़रूर न हो जाऊँ। तीन बार मैं ने ख़ुदावंद से इल्तिजा की कि वह इसे मुझ से दूर करे। लेकिन उस ने मुझे यही जवाब दिया, "मेरा फ़ज़्ल तेरे लिए काफ़ी है, क्योंकि मेरी क़ुदरत का पूरा इज़हार तेरी कमज़ोर हालत ही में होता है।" इस लिए मैं मज़ीद ख़ुशी से अपनी कमज़ोरियों पर फ़ख़्र करूँगा ताकि मसीह की क़ुदरत मुझ पर ठहरी रहे। यही वजह है कि मैं मसीह की ख़ातिर कमज़ोरियों, गालियों, मज्बूरियों, ईज़ारसानियों और परेशानियों में ख़ुश हूँ, क्योंकि जब मैं कमज़ोर होता हूँ तब ही मैं ताक़तवर होता हूँ।

> (2 कुरिन्थियों 12:7-10)

हौसलाशिकन हालात में वह इंजील जलील की तबलीग़ और जमात की ख़िदमत इस इन्हिमाक के साथ करते रहे कि गोया उन की ज़िंदगी में उन की रफ़्तारे-हयात की बीमारी और दीगर मुशकिलातो-मसाइब का सा यह भी नहीं पड़ा। वह पौलुस रसूल की तरह कह सकते थे,

> अगरचे मैं सब लोगों से आज़ाद हूँ फिर भी मैं ने अपने आप को सब का ग़ुलाम बना लिया ताकि ज़्यादा से ज़्यादा लोगों को जीत लूँ। (1 कुरिन्थियों 9:19)

> मैं उन से ज़्यादा मसीह की ख़िदमत करता हूँ। मैं ने उन से कहीं ज़्यादा मेहनत-मशक़्क़त की ...बार बार मरने के खतरों में रहा हूँ। ...मेरे बेशुमार सफ़रों के दौरान मुझे कई तरह के खतरों का सामना करना पड़ा, दरयाओं और डाकुओं का ख़तरा, अपने हमवतनों और ग़ैरयहूदियों के हम्लों का ख़तरा। ...झूटे भाइयों की तरफ़ से भी ख़तरे रहे हैं। मैं ने जाँफ़िशानी से सख़्त मेहनत-मशक़्क़त की है और कई रात जागता रहा हूँ, मैं भूका और प्यासा रहा हूँ, मैं ने बहुत रोज़े रखे हैं। मुझे सर्दी और नंगेपन का तजरिबा हुआ है। और यह उन फ़िक्रों के इलावा है जो मैं कलीसिया की तमाम जमातों के लिए महसूस करता हूँ और जो मुझे दबाती रहती हैं। जब कोई कमज़ोर है तो मैं अपने आप को भी कमज़ोर महसूस करता हूँ। जब किसी को ग़लत राह पर लाया जाता है तो मैं उस के लिए शदीद रंजिश महसूस करता हूँ। अगर मुझे फ़ख़्र करना पड़े तो मैं उन चीज़ों पर फ़ख़्र करूँगा जो मेरी कमज़ोर हालत ज़ाहिर करती हैं। (2 कुरिन्थियों 11:23-30)

लेकिन यह बातें जिस्म पर असर किए बग़ैर नहीं हो सकतीं। उन का मज़बूत और तनावर जिस्म अंदर ही अंदर घुल गया। इस के पेशे-नज़र

उन्हों ने ख़ुदा से दुआ करने के बाद यह फ़ैसला कर लिया कि इस साल के आख़िर में जहाँ तक मिशन का ताल्लुक़ है में अपनी ख़िदमत से सबुक-दोश हो जाऊँगा।

उस साल गर्मियों में वह पालमपुर गए जहाँ से वह सितंबर के महीने में वापस टोबा टेक सिंह चले गए। फ़रीज़ल-ख़िदमत होने से पहले उन्हों ने यकुम नवंबर 1922 से दो माह की रुख़्सत ले कर टोबा टेक सिंह को बाइस साल की ख़िदमत के बाद छोड़ दिया। झंगबार के इलोक़ की जमातों और खासकर टोबा टेक सिंह की जमातों को ऐसा मालूम हुआ कि उन के सर पर से बाप का साया जाता रहा और वह यतीम हो गए हैं। उन्हों ने सब को ख़ुदा के सपुर्द किया, और सब ने उन्हें ख़ुदा के सपुर्द किया।

17 ज़िंदगी के आख़िरी अय्याम

एहसानुल्लाह यकुम जनवरी 1923 से मिशन की ख़िदमत से फ़ारिग़ हो गए, लेकिन इंजील जलील की ख़िदमत से वह न कभी फ़ारिग़ हो सकते थे और न ता-दमे-मर्ग हुए। टोबा टेक सिंह से वह अपने दोस्तों और रिश्तेदारों के घरों में गए। लेकिन जहाँ कहीं गए अपने नजात-दहिंदे का पैग़ाम सुनाते रहे। नीज़जिस ख़दिम को मिले उसे वह अपने मुफ़ीद मश्वरों और रूहानी तजरिबों से मुस्तफ़ीद करते रहे।

उन्हों ने दुनिया की चीज़ोंको जोड़ने और बटोरने का कभी ख़याल भी न किया था। पौलुस रसूल के अलफ़ाज़उन पर लफ़्ज़ब-लफ़्ज़सादिक़ आते ,

> हम ग़रीब हालत में बहुतों को दौलतमंद बना देते हैं। हमारे पास कुछ नहीं है, तो भी हमें सब कुछ हासिल है। (2 कुरिनथियों 6:10)

उन्हों ने इंजील का ख़लिस पैग़ाम हर छोटे बड़ेतक पहुँचाया और उस में हर क़िस्म की आमेज़िश के ख़िलाफ़सदाए-एहतिजाज बुलंद की। मिशन की ख़िदमत से फ़ारिग़होने के बाद वह अपने अह्बाब के हाँ गए, रिश्तेदारों के पास क़ियाम करते रहे, लेकिन जहाँ भी गए अपने जोश को मुतअद्दी करके हर जगह और हर क़िस्म के लोगों में फैलाते गए।

1923 में मैं डीकन के ओहदे पर मामूर हो कर नारोवाल भेजा गया। उन दिनों में वहाँ ताऊन की वबा ज़ोरों पर थी। 1924 में वह मेरे पास आए और चंद हफ़्ते क़ियाम करके मुझे निहायत मुफ़ीद मश्वरे देते रहे। वह यह कह सकते थे

> मुझे मसीह के साथ मस्लूब किया गया और यों मैं ख़ुद ज़िंदा न रहा बल्कि मसीह मुझ में ज़िंदा है।

> (गलतियों 2:19-20)
> क्योंकि मेरे लिए मसीह ज़िंदगी है और मौत नफ़ा का बाइस ...एक तरफ़ मैं कूच करके मसीह के पास होने की आरज़ू रखता हूँ, क्योंकि यह मेरे लिए सब से बेहतर होता। लेकिन दूसरी तरफ़ ज़्यादा ज़रूरी यह है कि मैं आप की ख़ातिर ज़िंदा रहूँ। (फ़िलिप्पियों 1:21-24)

वह जिस्म में कमज़ोर थे,

> लेकिन रब से उम्मीद रखने वाले नई ताक़त पाएँगे और उक़ाब के से पर फैला कर बुलंदियों तक उड़ेंगे। न वह दौड़े हुए थकेंगे, न चलते हुए निढाल हो जाएँगे। (यसायाह 40:31)

वह मेरी रफ़ीक़-ए-हयात को शादी से पहले देहरादून से जानते थे। हम दोनों का अक़्द भी उन्हों ने ही बाँधा था। और वह उन से बेहद उनसो-मुहब्बत रखते थे। अहलिया भी उन का हर तरह से ख़याल रखतीं। जब वह मेरे पास आए तो उन्हें राशे की बीमारी शुरू हो चुकी थी। इबादतगाह में बाक़ायदा इबादत के वक़्त जाते और ग़ैर-मसीहियों को नजात का पैग़ाम सुनाया करते थे। वह मुझे रूहानी तजरिबों से मुस्तफ़ीद किया करके इंजील जलील और ख़ुदावंद की ज़िंदगी से ऐसे निकात और रुमूज़ बताते थे जो मैं ने कभी किसी तफ़्सीर में न पेढ़े थे। हर बहर का साहिल होता है, इस बहर का साहिल कोई नहीं।

अगरचे वह बीमार थे, लेकिन वह दूसरों से अपनी बीमारी का ज़िक्र करके हमदर्दी के कभी तालिब न होते थे। इस के बर-अक्स वह हर वक़्त साबिर, राज़ी-ब-रज़ाए-इलाही और ख़ुश नज़र आते थे। उन्हें ख़ुदा की तरफ़ से अजब इत्मीनान हासिल था, क्योंकि उन की ज़िंदगी हमेशा पाक-बाज़ ज़िंदगी थी। वह पौलुस रसूल के हम-ज़बान हो कर कह सकते थे,

> हम किसी के लिए भी ठोकर का बाइस नहीं बनते ताकि लोग हमारी ख़िदमत में नुक़्स न निकाल सकें।
> (2 कुरिनथियों 6:3)

ये भी ख़ुदा का इंतज़ाम था कि जब मैं डीकन हुआ तो वह मेरी तजरिबाकारी के दिनों में मुझे अपने तजरिबे से मुस्तफ़ीज़ करते रहे। एक दिन में किसी से बातों बातों में कुछ कह गया जिस से शेख़ी की बू टपकती थी। उन्हों ने मुझ से कहा, “लड़के, इधर आ।” और अपने पाँओ को ज़मीन पर सख़्ती से रगड़कर कहने लगे, “जब तक कि तू इस मिट्टी की तरह पाँओ के नीचे पिसना ख़ुशी से क़बूल न करेगा तू ख़ुदा का अच्छा ख़ादिम नहीं बन सकेगा।

> خاک شَو پیش از آنکہ خاک شوی
> ख़ाक बन जा, इस से पहले कि तू ख़ाक बन जाए

हमेशा आजिज़ी से काम लो। तबीअत में ख़ुदावंद मसीह का सा हलम रखो और याद करो कि

> نہد شاخ پُر میوہ سر بر زمیین
> फल से लदी हुई शाख़ अपना सर ज़मीन पर रख देती है।”

एक इतवार की बात है जब मैं इबादतगाह में वाज़ करके घर आया तो वह फ़रमाने लगे, “तू ने आज यह क्या वाज़ किया था? क्या तू ख़याल करता है कि तेरे सामने कॉलेज के लड़के बैठे हैं और तू लेक्चर दे रहा है? वाज़ें में गर्मी और गुदाज़ होनी चाहिए। उन में ज़िंदगी-नवाज़ तास्सुरात होने चाहिऐं। उन में मिसालों पर मिसालें होनी चाहिऐं ताकि वह सादा लोगों के दिलों में असर-आफ़रीन हों। तेरे वाज़ें का रंग पुख़्ता नहीं होता। तू ख़याल करता है कि वाज़ें में नाज़ुक और लतीफ़ तसव्वुरात और आलिमाना ख़यालात होने चाहिऐं जिन में मुनासिब अलफ़ाज़ इस्तेमाल

हों। लेकिन वाज़ें में तो दिल की धड़कनें होनी चाहिऐं। उन में जज़्बात का जोश नहीं चाहिए, क्योंकि आला रूहानियत का वायज़ा सीमाबियत से कोई ताल्लुक़ नहीं है।"

एक दफ़ा मुझे अपने अपरेशन के लिए रुपए की ज़रूरत पड़ी। मैं ने इरादा किया कि मिशन के सेक्रेटरी को लिखूँ। उन्हों ने मना किया और कहा, "बरकत, याद रखो,

> آنکہ شیراں را کُند روباہ مزاج
> احتیاج است، احتیاج است، احتیاج
> जो कुछ शेरों को लोमड़ियों का सा मिज़ाज दिला देती है
> वह ज़रूरत है, ज़रूरत है, ज़रूरत

अगर तुम रुपए की इम्दाद माँग बैठे और उन्हों ने दे भी दी तो तुम्हारी नज़रें उम्र भर नीचे रहेंगी। और तुम अपने वक़ार को हमेशा के लिए खो बैठोगे। अपने अख़राजात और ज़रूरियात को कम कर दो तो तुम को कभी रुपए की कमी न होगी।"

उन का यह सबक़ मैं मुद्दतुल-उम्र नहीं भूला। और मैं ने मिशन के सामने कभी कुछ न माँगा। उन दिनों में वह अक्सर कहा करते थे, "मेरे कूच का वक़्त आ पहुँचा है। मैं अच्छी कुश्ती लड़ चुका। मैं ने दौड़ को ख़त्म कर लिया है।"

एक दफ़ा एक और ख़ादिम ने वाज़ के दौरान चंद एक लोगों को मिम्बर पर से कोसा। उन्हों ने इबादत के बाद उसे अपने पास बुलाया और शफ़क़त से कहा, "मेरे जवान भाई। मिम्बर लोगों को कोसने के लिए नहीं होता। अगर जो तुम ने कहा है सच भी हो फिर भी हक़ को तल्ख़नवाई से बयान करने से मक़सद पूरा नहीं होता। जली-कटी सुनाने से हमेशा पर्हेज़ करो।" फिर अपने दिल पर मुक्का मार कर कहने लगा, "बेटा, पहले यहाँ अपने आप को मुक्के मारो। तो यह मुक्के रू-ब-रू लोगों के दिलों पर लगेंगे। और तुम को किसी के ख़िलाफ़ एक

लफ़्ज़ कहने की भी ज़रूरत न पड़ती। वर्ना लोग तुम को यही कहेंगे कि

> خود را فضیحت، دیگراں را نصیحت۔
> ख़ुद बुरे काम करना और दूसरों को नसीहत करना।"

एक और पासबान मिम्बर पर से अपनी भेड़ों की बुरी तरह ख़बर ले रहे थे। इबादत के बाद उन्हों ने उसे कहा, "बेटा, चरवाहे का काम यह नहीं है कि वह भेड़ों को अपनी लाठी से मारे बल्कि उस का काम यह है कि भेड़ों को चुराए।"

एक दफ़ा एक ख़ादिम ने पूछा, "जनाब, मैं तो सालों से ख़ुदा की ख़िदमत कर रहा हूँ। क्या वजह है कि किसी शख़्स का दिल मेरे वाज़ों से तबदील नहीं हुआ हालाँकि मैं बड़ी कोशिश से उन्हें तैयार करता हूँ?"

उन्हों ने उस से पूछा, "क्या तुम ख़ुद यह कभी ख़याल करते हो कि जब तुम अपना मुँह खोलो तो तुम्हारे कलाम से किसी की ज़िंदगी में तबदीली वाक़े हो जाएगी?"

उस ने जवाब दिया, "नहीं, साहब, मैं यह उम्मीद कभी नहीं करता।"

उन्हों ने कहा, "बस, यही वजह है कि अब तक तुम्हारे ज़रीए किसी के दिल की तबदीली नहीं हुई। विलियम कैरी का मूक़ला याद रखो कि ख़ुदा से बड़ी बड़ी बातों की उम्मीद रखो और उस के लिए बड़ी बड़ी बातों की कोशिश करो।"[1]

जब वह मेरे पास नारोवाल आते तो मुझे कहते कि तहरीरो-तक़रीर से जमात को मग़रिब की फ़िरक़ाबंदियों की क़ुयूद से आज़ाद कराने की कोशिश करो ताकि पंजाब की जमात अपने पाँओ पर खड़ी आज़ादाना ज़िंदगी गुज़ार सके। लेकिन यहाँ मग़रिब के ज़र ने और ज़ाबितों ने ऐसा जकड़ रखा है कि

[1]Expect great things from God; attempt great things for God

> अपनी रिहाई की तमन्ना भी है ना-पाक।

नारोवाल से वह अक्सर गुजराँवाला तशरीफ़ ले जाते और चौदहरी अम्बर साहब के घर में रहते। मिसिज़ अम्बर साहबा जो उन के देरीना दोस्त रहमत मसीह वायज़ की बेटी थीं उन की ख़िदमत में कोई कसर उठा नहीं रखती और हर तरह से उन से बेटी का सा सुलूक करती थीं। मिसिज़ अम्बर का हँसमुख चेहरा उन की तबीअत में बशाशत पैदा कर देता और वह अपने मर्ज़ तक को भूल जाते थे। गुजराँवाला में मिसिज़ अम्बर साहबा के घर में उन के पुराने चेले और रफ़ीक़ उन्हें मिलने के लिए आ जाया करते थे। लब्भू मल भी वहीं मुक़ीम थे। ग़रज़ उस शहर में उन का वक़्त बहुत अच्छी तरह कटता था।

गुजराँवाला के इलावा वह बाबू रम्माल शाह के पास जा कर कई हफ़्ते काट आते और गहना मल साहब से भी मुलाक़ात कर आया करते थे। लेकिन वह अपना अक्सर वक़्त अपने बेटे ग़ुर्बान के पास मुलतान में काटते या मेरे पास नारोवाल आ जाते या गुजराँवाला में मिसिज़ अम्बर साहबा के पास क़ियाम करते थे।

आख़िरी दफ़ा जब वह गुजराँवाला गए तो उन की मुलाक़ात मार्च 1929 में ख़ाला रहमत मसीह से हुई। वह लकथे हैं,

> मियाँ साहब ने आख़िरी अय्याम बहुत ही तक्लीफ़ में गुज़ारे। राशे से तमाम बदन का रूवाँ रूवाँ इस तरह काँपता रहता था जिस तरह सख़्त आंधी में दरख़्त की शाख़ें ख़ुम्बिश करती हैं। हरकत किसी वक़्त भी नहीं ठहरती थी। उन की तक्लीफ़ देख कर मेरे आँसू निकल पड़े। वह न बैठ सकते थे, न खड़े रह सकते थे, न ज़्यादा देर लेट सकते थे। गो वह हर वक़्त बेचैन रहते थे लेकिन उन के मुँह से "हाय, हाय" या दुख की निस्बत शिकायत का एक लफ़्ज़ भी कभी न निकला। अय्यूब की तरह उन्हों ने सब्र से सब कुछ बरदाश्त किया। यह आसमान साफ़ था या तारीक, एहसानुल्लाह

> का ईमान कभी मुतज़लज़ल होने न पाया। वाक़ई ख़ुदा हम को दुखों से कामिल करता है।
>
> जब मैं ने सुना कि उन की वफ़ात हो गई है तो ख़ुदा का शुक्र किया कि उस ने अपने बंदे पर रहम करके दुनिया के जिस्मानी दुखों से आराम बख़्शा। अब वह वहाँ हैं जहाँ न दुख है, न ग़म, जहाँ हमदो-सना और क़ुद्दूस क़ुद्दूस की आवाज़ें हर तरफ़ से आती हैं।

उन के आख़िरी अय्याम अपने बड़े बेटे क़ुरबान के घर मुलतान में गुज़रे। वफ़ात से पहले वह पंद्रह रोज़ बिस्तर पर ही पड़े रहते थे, क्योंकि वह राशे के सबब बहुत कमज़ोर हो गए थे। लेकिन इस के बावुजूद उन का चेहरा सुर्ख़ था और उस पर ब-दस्तूर रौनक, शगुफ़्तगी और शादाबी थी। और वह तंदुरुस्त मालूम होते थे। वह क़ुरबान और उस की बीवी बच्चों से बातें किया करते थे अगरचे आवाज़ क़दरे धीमी हो गई थी। 22 सितंबर ब-रोज़ इतवार उन्हों ने क़ब्ज़ की शिकायत की जिस का फ़ौरन इलाज किया गया, और वह दोपहर के वक़्त हल्की ग़िज़ा खा कर सो गए। नींद की हालत में उन्हें बुख़ार हो गया जो अचानक सख़्त हो गया। अगले रोज़ बुख़ार इस से भी तेज़ हो गया, और उन पर ग़शी तारी हो गई। 23 सितंबर 1929 की रात को साढ़े दस बजे उन की नब्ज़ की रफ़्तार निहायत मद्धम हो गई और ग्यारह बजे उन्हों ने अपने नजात-दहिंदे की आग़ोश में आराम पाया। वफ़ात के वक़्त उन की उम्र तक़रीबन 72 साल की थी।

जब उन की वफ़ात की ख़बर मुख़्तलिफ़ मक़ामों में पहुँची तो पंजाब के तूलो-अर्ज़ में मातम की आवाज़ बुलंद हुई। गंडा मल लिखते हैं,

> जब उन के इंतक़ाल की ख़बर मुझे मिली तो मैं ग़म के मारे खड़ा न हो सका और गिर पड़ा। बेसाख़्ता मेरे मुँह से निकला, "हाय मेरे बाप, मेरे बाप! इस्राईल के रथ और उस के घोड़े! (2 सलातीन 2:11)"

दिल्ली के एस.ए.सी घोष ने लिखा,

> एहसानुल्लाह उस गुरोह में शामिल हो चुके हैं जो खजूर की डालियाँ हाथ में लिए हुए तख़्त और बर्रे के सामने दिन रात उस की तम्जीद में मश्ग़ूल हैं। जब आसमान पर इब्रानियों के ख़त के ग्यारवें बाब की तरमीम-शूदा जिलद निकलेगी तो उस में लिखा होगा "ईमान ही से एहसानुल्लाह ने ..."

एहसानुल्लाह का जिस्म मुलतान के क़ब्रिस्तान में मदफ़ून है, लेकिन एहसानुल्लाह वहाँ मदफ़ून नहीं है। वह ज़िंदा है, और उस के काम उस के पीछे पंजाब की जमात में ज़िंदा हैं। वह सौ गुना और साठ गुना फल ला रहे हैं।

> फिर मैं ने आसमान से एक आवाज़ यह कहती हुई सुनी, "लिख, मुबारक हैं वह मुरदे जो अब से ख़ुदावंद में वफ़ात पाते हैं।"
> "जी हाँ," रूह फ़रमाता है, "वह अपनी मेहनत मशक़्क़त से आराम पाएँगे, क्योंकि उन के नेक काम उन के पीछे हो कर उन के साथ चलेंगे। (मुकाशफ़ा 14:13)